

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

भारत : तथ्य और आंकड़े



प्रकाशन विभाग,
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय,
भारत सरकार ।

ज्येष्ठ १८८३ (जून १९६१)

Facts About India (Hindi)

मूल्य : तीन रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली-६, द्वारा प्रकाशित
तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित ।

विषय-सूची

सामान्य

पृष्ठ

सास्कृतिक

अध्याय १

भारत-भूमि और उसके निवासी

भारत का कुल क्षेत्रफल लगभग १२,५६,७६७ वर्गमील है और लम्बाई-चौडाई की दृष्टि मे यह ससार का सातवा सबसे बडा देश है। सन १९५९ मे भारत की कुल जनसख्या अनुमानत ४० करोड २८ लाख थी, जिसमे जम्मू-कश्मीर, सिक्किम और पाडिचेरी की जनसख्या भी सम्मिलित है। २६ जनवरी, १९५० को भारत को गणतन्त्र घोषित किया गया। इस समय भारतीय सघ मे १५ राज्य तथा ६ सघीय क्षेत्र है।[1] हमारा देश एक त्रिकोण के आकार का है। पर्वतो तथा समुद्रो-द्वारा शेष एशिया मे विच्छिन्न यह एक स्वतन्त्र देश है। इसके उत्तर में हिमालय-पर्वत दक्षिण मे हिन्द-महासागर, पूर्व मे बगाल की खाडी तथा पश्चिम मे अरब-सागर है। पश्चिम से पूर्व तक भारत की सीमा पश्चिम-पाकिस्तान, चीन, वर्मा तथा पूर्व-पाकिस्तान से सलग्न है। भारत के स्थलीय सीमान्त-प्रदेश की लम्बाई ८,४२५ मील तथा इसके समुद्र-तट की लम्बाई ३,५३५ मील है।

भारत भूमध्य-रेखा के उत्तर मे स्थित है और प्राकृतिक तथा भौगोलिक स्थितियो को देखते हुए इसे निम्नलिखित तीन भागो मे बाटा जा सकता है :

(१) **बर्फ से आच्छादित हिमालय-पर्वत का प्रदेश :** इसमे उत्तर-पश्चिम मे कश्मीर से कुलू तक तथा उत्तर-पूर्व मे असम तक फैली हुई उपजाऊ एव सुरम्य घाटिया आती है।

(२) **विन्ध्य-पर्वतमाला के दक्षिण में त्रिभुजाकार दक्षिणी पठार :** इसमे पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट के इलाके आते है।

(३) **सिन्धु-गंगा का मैदान :** इसमे उपर्युक्त दोनो प्रदेशो के बीच का क्षेत्र आता है।

---

[1] **विवरण के लिए अध्याय ५ देखिए।**

हिमालय की मुख्य पर्वतमाला सिन्धु-घाटी से लेकर ब्रह्मपुत्र-घाटी तक फैली हुई है। इसके अनेक दर्रे आल्प्स-पर्वत की चोटियो से भी ऊचे हैं। यद्यपि एशिया के इतिहास को स्वरूप प्रदान करने मे हिमालय का बहुत बडा हाथ रहा है, तथापि भौमिकीय दृष्टि मे इसे अल्पायुवाली पर्वतमालाओ की श्रेणी मे रखा गया है।

सिन्धु-गगा के मैदान का कुछ भाग भारत मे और कुछ भाग पाकिस्तान मे हैं। यह क्षेत्र पश्चिम मे ३०० मील चौडी पट्टी के रूप मे शुरू होकर पूर्व मे घटता-घटता केवल ९० मील चौडा रह जाता है। मानव-सभ्यता के प्राचीन केन्द्र, इस मैदान मे तीन मुख्य नदिया बहती हैं—सिन्धु, गगा तथा ब्रह्मपुत्र। इन नदियो की कुछ सहायक नदिया भी है, जैसे सतलुज और यमुना, जो क्रमश सिन्धु और गगा मे जाकर मिलती हैं। सिन्धु-गगा का मैदान भारत का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है और यहा की जनसख्या बहुत घनी है। पश्चिमी तट और मध्य-भारत के कुछ भाग अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है तथा राजस्थान के कुछ भाग तो लगभग रेगिस्तान ही हैं।

पूर्व से पश्चिम की ओर बहनेवाली दो नदिया, तापी (ताप्ती) और नर्मदा, मैदानी इलाको को दक्षिणी पठार से अलग करती है। दक्षिणी पठार की गणना विश्व के प्राचीनतम भू-भागो में की जाती है, और इसकी चट्टाने बहुत पथरीली है। पश्चिमी तट पर उत्तर मे दक्षिण तक पश्चिमी घाट की पहाडिया फैली हुई है, जो अरब-सागर और दक्षिणी पठार के बीच एक ऊची और सीधी दीवार की भांति स्थित है।

दक्षिण की मुख्य नदियो मे महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी है। तुगभद्रा, कृष्णा की मुख्य सहायक नदी है। हिमालय से निकलनेवाली नदियो मे तो बर्फ का पिघला हुआ पानी आता है, किन्तु दक्षिण की इन नदियो मे बरसाती पानी आता है, इसलिए गर्मी मे ये प्राय सूख जाती है।

जलवायु

भारत के उत्तर मे हिमालय की दुर्लघ्य प्राचीर है, जिसके कारण एशिया से आनेवाली तेज और बर्फीली हवाए भारत मे प्रवेश नही कर

पानी। अत यहा की जलवायु कुछ अन्य बातो पर निर्भर करती है। कर्क-रेखा मध्य-भारत से होकर गुजरती है और भारत को जलवायु की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर देती है। अत:, स्वभावत: ही, उत्तरी भाग समशीतोष्ण और दक्षिणी भाग उष्ण है। मोटे तौर पर, भारत मे निम्नलिखित चार ऋतुए पाई जाती है:

(१) शीत-ऋतु (दिसम्बर से मार्च तक)

(२) ग्रीष्म-ऋतु (अप्रैल-मई)

(३) वर्षा-ऋतु (जून से सितम्बर तक)

(४) दक्षिण-पश्चिमी मानसून की वापसी की ऋतु (अक्तूबर-नवम्बर)

इस वर्गीकरण मे भारत के भिन्न-भिन्न जलवायुवाले क्षेत्रो के अन्तर को सम्मिलित नही किया गया है। दक्षिण-पश्चिमी और पूर्वी भारत स्पष्टत गर्म इलाके है, जहा ग्रीष्म-ऋतु मे उमस होती है और वर्षा-ऋतु भी हमेशा ठडी नही होती।

भारत की जलवायु मुख्य रूप मे मानसून पर निर्भर करती है और ८५ प्रतिशत वर्षा जून और अक्तूबर के बीच दक्षिण-पश्चिमी मानसून मे होती है। मई के अन्त मे वर्षा-ऋतु अपने साथ प्रचण्ड आधी-पानी लाती है। ज्यो-ज्यों ये मानसूनी हवाए तट से स्थल की ओर बढती है, त्यों-त्यो वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। बम्बई मे वार्षिक वर्षा लगभग ७१.२१ इच अर्थात् १,८०९ मिलीमीटर और कलकत्ते मे लगभग ६२.९८ इच अर्थात् १,६०० मिलीमीटर होती है, जब कि नई दिल्ली मे केवल २६.२४ इच अर्थात् ६६६ मिलीमीटर ही होती है।

मध्य तथा उत्तर-भारत मे ग्रीष्म-ऋतु गर्म और शुष्क होती है। जो इलाके पहाडो या समुद्र मे दूर स्थित है, वहा तो बहुत ही भयकर गर्मी पड़ती है। उत्तर-पश्चिमी मैदानो मे धूल-भरे बडे तीव्र अन्धड चलते है। परन्तु उत्तर-भारत में शीत-ऋतु हल्की और सुहावनी होती है। नई दिल्ली मे जनवरी के महीने मे औसत अधिकतम तापमान ७०.५ डिग्री फारेनहीट (अर्थात् २१.४ डिग्री सेंटीग्रेड) के आसपास रहता है।

प्राकृतिक साधन

भारत मे अनेक महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों का विशाल भाण्डार है। ससार के कोयला-उत्पादक देशो मे भारत का स्थान सातवा है और अनुमान है कि ससार के कुल खनिज लोहे का लगभग चौथा भाग भारत के ही गर्भ मे है। काले अभ्रक के उत्पादन मे भारत सबसे अग्रणी है और मैंगनीज के क्षेत्र मे उसका स्थान ससार मे तीसरा है। भारत मे क्रोमाइट, मैग्नेसाइट, क्यानाइट तथा अन्य खनिज पदार्थों की भी भरमार है, किन्तु अलौह धातुओं की कमी है, केवल सोना, ताबा और अल्युमीनियम ही थोडी-बहुत मात्रा मे निकाले जाते हैं। खानों की दृष्टि से दक्षिण-बिहार, दक्षिण-पश्चिमी बगाल तथा उत्तर-उडीसा के प्रदेश सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इल्मेनाइट केरल-तट के बलुहे क्षेत्र मे पाया जाता है। केरल का मोनाजाइट और राजस्थान का फीरोजा, ये दो अत्यन्त महत्वपूर्ण खनिज परमाणु-शक्ति के उत्पादन मे काम आते है। बिहार मे कुछ ऐसे स्थान है, जहा पर्याप्त मात्रा मे यूरेनियम मिलने की सम्भावना है।

देश के तेल-साधनो की खोज-बीन करके उनका विकास किया जा रहा है। असम के डिग्बोई, नहरकटिया तथा मोरान मे तेल निकालने का काम जारी है। पजाब मे ज्वालामुखी नामक स्थान पर तथा जैसलमेर और खभात मे भी तेल निकालने के प्रयत्न हो रहे है। विशाखापत्तनम् मे तेल साफ करने का कारखाना बन कर तैयार हो चुका है और अब देश मे हर साल करीब ५० लाख टन तेल साफ किया जा सकता है। देश मे पन-बिजली की वर्तमान स्थापित क्षमता लगभग १३,६२,००० किलोवाट है और अनुमान है कि लगभग ४ करोड किलोवाट पन-बिजली पैदा की जा सकती है।

यह भी अनुमान लगाया गया है कि सन् १९६१ के अन्त तक भारत मे लगभग ६ करोड टन कोयले, १ २५ करोड टन खनिज लोहे, २० लाख टन खनिज मैंगनीज, २ ३३ करोड टन चूना-पत्थर, १९ ७ लाख टन खडिया मिट्टी तथा १७ ५ लाख टन बाक्साइट का उत्पादन होने लगेगा।

भारत के विभिन्न भागो मे पथरीली चट्टाने भी पाई जाती है, जिनमे इमारती कामो के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। सागवान की लकडी इमारती कामो मे प्रयुक्त होती है। यह लकडी पूर्वी और पश्चिमी घाटो में बहुतायत से पाई जाती है। देश मे आबनूस और बास की भी कमी नही है।

भारत के निवासी

ममार के मबसे घनी जनमख्यावाले देशो मे भारत का स्थान दूसरा है तथा ममार की जनमख्या का लगभग सातवा भाग इसी देश मे रहता है। भारत मे जन-घनत्व यो तो विभिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न है, फिर भी एक वर्गमील मे औसतन २८७ व्यक्ति रहते है। इसमे सिक्किम की जनमख्या तथा क्षेत्रफल को भी सम्मिलित कर लिया गया है। भारत मे एक हजार पुरुषो के पीछे ९४७ स्त्रिया है। सन् १९५१ की जनगणना से पता लगता है कि देश के १७.३ प्रतिशत लोग नगरो और कस्बो मे रहते है, जब कि सन् १९२१ मे यह मख्या केवल ११.४ प्रतिशत ही थी। भारत मे कुल ५,५८,०८८ गाव तथा ३,०१८ नगर है।

भारत के ७० प्रतिशत लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए खेती-बारी पर निर्भर करते है। प्रत्येक १०० भारतीयो मे मे ४७ मुख्यतया भू-स्वामी, ९ मुख्यतया काश्तकार, १३ खेतिहर मजदूर, तथा १ जमीदार है और बाकी ३० व्यक्तियो मे मे १० उद्योगो या कृषि-भिन्न उत्पादन मे ६ व्यापार मे, २ परिवहन मे तथा १२ सरकारी नौकरियो और विविध काम-धधो मे लगे हुए है।

भारत के निवासी विभिन्न धर्मावलम्बी है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार, देश मे ८४.९९ प्रतिशत हिन्दू, ९.९३ प्रतिशत मुसलमान, २.३ प्रतिशत ईसाई, १.७४ प्रतिशत सिख, ०.४५ प्रतिशत जैन ०.०६ प्रतिशत बौद्ध, ०.०३ प्रतिशत पारसी तथा ०.५ प्रतिशत अन्य धर्मावलम्बी (अर्थात् आदिम जातीय तथा गैर-आदिम जातीय) थे।

यो तो, भारत में कुल मिला कर ८४५ भाषाए और बोलिया बोली जाती है, किन्तु भारत के सविधान मे हिन्दी, उर्दू, पजाबी, तेलुगु, मराठी,

तमिल, बगला, गुजराती, कन्नड, मलयालम, उडिया, असमिया, कश्मीरी और सस्कृत—इन १४ मुख्य भाषाओ को मान्यता दी गई है। फिलहाल, अंग्रेजी को विभिन्न प्रदेशो के बीच पत्र-व्यवहार के लिए सरकारी भाषा रखा गया है, किन्तु धीरे-धीरे इसका स्थान हिन्दी ग्रहण करेगी। भारत मे विभिन्न भाषा-भाषी लोगो की सख्या इस प्रकार है — हिन्दी-भाषी (उर्दू, पजाबी और हिन्दुस्तानी बोलनेवालो को सम्मिलित करके) १४ ९९,४४,३११, तेलुगु-भाषी, ३,२९,९९,९१६, मराठी-भाषी २,७०,४९,५२२, तमिल-भाषी २,६५,४६,७६४, बगला-भाषी २,५१,२१,६७४ गुजराती-भाषी १,६३,१०,७७१, कन्नड-भाषी १,४४,७१,७६४, मलयालम-भाषी १,३३,८०,१०९, उडिया-भाषी १,३१,५३,९०९, असमिया-भाषी ४९,८८,२२६, कश्मीरी-भाषी ५,०८६ (इसमे जम्मू-कश्मीर के कश्मीरी-भाषी लोगो की जनसख्या शामिल नही है, क्योकि वहा सन् १९५१ मे जनगणना नही हुई थी), तथा सस्कृत-भाषी ५५५।

भारत मे ७३ नगर ऐसे है जिनकी जनसख्या एक लाख से ऊपर है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार, जनसख्या की दृष्टि से प्रथम दस नगरो के नाम और उनकी जनसख्या इस प्रकार है वृहत्तर कलकत्ता (४५,७८,०७१), वृहत्तर बम्बई (२८,३९,२७०), मद्रास (१४,१६,०५६), दिल्ली (१३,८४,२११), हैदराबाद (१०,८५,७२२), अहमदाबाद (७,९३,८१३), बगलोर (७,७८,९७७), कानपुर (७,०५,३८३), पूना (५ ८८,५४५) तथा लखनऊ (४,९६,८६१)। अनुमान है कि सन् १९५८ मे दिल्ली और उसके उपनगरो की जनसख्या लगभग २७ लाख थी।

अध्याय २

इतिहास

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओ मे से एक है तथा भारत के इतिहास की परम्परा हजारो वर्ष लम्बी और अविच्छिन्न रही है। सन् १९२१-२२ मे मोहेन-जो-दड़ो† (सिन्ध) तथा हड़प्पा (पश्चिम-पजाब) मे हुई खुदाई से ५ हज़ार वर्ष पुरानी उस विकसित नागरिक सभ्यता का पता चला, जिसे 'सिन्धु-घाटी की सभ्यता' कहते है। पुराने जमाने मे मोहेन-जो-दडो एक बडा समृद्ध नगर था, जिसका निर्माण निस्सन्देह एक पूर्व-निर्मित योजना के अनुसार हुआ था। इसके बाद, लगभग तीस स्थानो पर जो खुदाई की गई, उससे भी सिन्धु-घाटी की सभ्यता और सस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

इतिहासकारो का अनुमान है कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता ईसा-पूर्व लगभग तीन हजार से डेढ हजार वर्ष के बीच विकसित हुई होगी। इस नागरिक सभ्यता की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इतने प्राचीन काल मे भी नगर मे गदे पानी की निकासी के लिए नालियो, आदि की बडी अच्छी व्यवस्था थी। वहा खुदाई करने से ईटो का बना एक पक्का तालाब भी मिला है। प्राय प्रत्येक घर में स्नानागार, अग्निकुड, गदा और बरसात का पानी निकालने की मोरिया और कूडा डालने के घिरौने भी मिले है। सिन्धु-घाटी और दजला-फरात-घाटी में प्राप्त अवशेषो से प्रतीत होता है कि सिन्धु-घाटी के निवासी बहुत सुखी और समृद्ध जीवन व्यतीत करते थे तथा दोनो के बीच बडे घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। मकान, आदि भी पक्की ईटो से बनाए जाते थे। इससे प्रतीत होता है कि आज जो इलाका रेगिस्तान बना हुआ है, उसमे किसी

† 'मोहेन-जो-दड़ो' का अर्थ है, 'मृतकों का ढूह'। इस स्थान का यह नाम उसके पुराने खंडहरों के कारण पड़ा।

ज़माने मे नन्दन-कानन थे और वहा इमारती लकडी की कोई कमी नही थी। समाज मे प्रमुख स्थान सम्भवत व्यापारियो और उद्योगपतियो का था, जो उद्योग-धधो मे काम आनेवाला कच्चा माल दूर-दूर से लाते थे और अपना माल—यहा तक कि सूती कपडा भी—पश्चिमी एशिया के देशो को निर्यात करते थे।

सिन्धु-घाटी के निवासी एक प्रकार की चित्र-लिपि का प्रयोग करते थे। परन्तु यह लिपि अभी तक पढी नही जा सकी है। इस घाटी मे जो मुहरे और दूसरी चीजे मिली है, उनसे पता चलता है कि सिन्धु-घाटी के निवासी किसी देवी माता की आराधना करते थे, और सम्भवत शिव की उपासना भी उन्ही लोगो ने आरम्भ की।

सिन्धु-सभ्यता के जनक वास्तव मे कौन थे, इस सम्बन्ध मे विद्वानो के मत भिन्न-भिन्न है। अधिकाश विद्वानो की धारणा है कि सिन्धु-घाटी के निवासी आर्यो से पहले के युग के थे, किन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि वे द्रविड थे। जो भी हो, यह बात निश्चित है कि सिन्धु-सभ्यता का जन्म इसी घाटी मे हुआ और यह काफी दूर-दूर तक फैली। राजस्थान और सौराष्ट्र मे जो खुदाई की गई है, उसमे भी इस बात की पुष्टि होती है। इस प्राचीन सभ्यता का ह्रास और विनाश क्यो और कैसे हुआ, इस सम्बन्ध मे अन्तिम रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

भारतीय आर्य वेद

मगोलिया के पठारो से निकल कर जो जातिया भूमध्य-सागर के पूर्वी तटवर्ती प्रदेशो मे फैली, उनमे से एक आर्य-जाति भी थी। आर्यों ने भारत पर कई बार आक्रमण किए। भारत पर उनका सबसे पहला आक्रमण कब हुआ, इस सम्बन्ध मे ठीक-ठीक कुछ कह सकना कठिन है। कुछ विद्वानो की धारणा है कि आर्य लोग ईसा से लगभग डेढ हजार वर्ष पहले सप्तसिन्धु के प्रदेश मे आकर बसे। सामान्यतया इस युग को 'ऋग्वैदिक काल' कहते है।

ऋग्वैदिक काल मे आर्यों के राज्य की सबसे छोटी इकाई 'गृह' या 'कुल' थी। कई कुलों के संघट्ट का एक 'ग्राम' बनता था। ग्रामो का समूह

'विश' और विशो का समूह 'जन' कहलाता था। जन का मुखिया राजन् (राजा) कहलाता था। समाज तीन वर्गों मे विभक्त था राजन्य अथवा क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा शिल्पी और कृषि। परन्तु आर्य स्वय को भारत के मूल निवासियो, अर्थात् द्रविडो और द्रविडेतर जातियो, से अलग मानते थे। फिर भी, उनमे अन्तर्जातीय विवाह, व्यवसाय-परिवर्तन, आदि निषिद्ध नही था।

ऋग्वैदिक आर्य कृषि मे बडे निपुण थे। वे पशु पालते थे, व्यवसाय करते थे और सम्भवत नौकानयन भी जानते थे।

आर्यो का धर्म बडा सरल था। प्रकृति के जो रूप प्रकाश या ज्ञान देते है, अथवा किसी प्रकार से मानव-जीवन के लिए उपयोगी है उन्ही की कल्पना उन्होने देवताओ के रूप मे की थी। आर्य लोग वरुण, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्म, आदि के उपासक थे। उनके धर्म मे यज्ञ और बलि का विशेष स्थान था।

धीरे-धीरे आर्यो ने अनेक राज्य स्थापित कर लिए, जिनका उल्लेख रामायण और महाभारत तथा प्राचीन पुराणो मे विस्तार से मिलता है। आर्यावर्त अर्थात् गगा के ऊपरी भाग और यमुना के बीच के प्रदेश से निकल कर आर्य लोग बिहार में फैले और इसके साथ ही उन्होने दक्षिण मे भी पैर जमाए। दक्षिणवासी द्रविडो ने वेद तथा सस्कृत-भाषा अगीकार कर ली। दूसरी ओर, आर्य भी द्रविडो के देवी-देवताओ, द्रविड आचार-विचारो तथा रीति-रिवाजो से प्रभावित हुए। तत्कालीन समाज-व्यवस्था मे भी दूरगामी परिवर्तन हुए और वर्ण-व्यवस्था अधिक कठोर तथा स्पष्ट हो गई। परन्तु यहा यह भी उल्लेखनीय है कि अब तक ब्राह्मणो की सत्ता और उनके कर्मकाड के विरुद्ध प्रतिक्रिया शुरू हो गई थी क्योकि उनकी विधि-क्रियाओ का स्वरूप बहुत-कुछ दिखावटी और जटिल हो गया था।

जैन-मत और बौद्ध-मत

कर्मकाड-परक ब्राह्मण-अनुष्ठानो और रक्तरजित यज्ञो की प्रति-क्रिया-स्वरूप जैन-मत और बौद्ध-मत का आविर्भाव हुआ। जैन-मत के

प्रवर्तक महावीर तथा बौद्ध-मत के प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। इन दोनो महा-पुरुषो का जन्म पूर्वी भारत के दो क्षत्रिय-कुलो मे हुआ था। जैन-मत तथा बौद्ध-मत ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया, किन्तु वेदों की प्रामाणिकता को अस्वीकार किया और यज्ञादि मे पशु-बलि की खुल कर भर्त्सना की। जैन-मत ने अहिंसा का कठोरता से पालन किए जाने पर विशेष बल दिया। जैन-साधना मे तपस्या को भी बहुत ऊंचा स्थान दिया गया। बौद्ध-मत ने 'मज्झिम-प्रतिपदा', अर्थात् 'मध्यम मार्ग', का अनुसरण करने तथा 'तन्हा', अर्थात् तृष्णा, का दमन करने का प्रचार किया। महात्मा बुद्ध के उपदेशो और शिक्षाओ की सादगी और सुगमता के कारण बौद्ध-मत का प्रचार न केवल भारत मे, बल्कि आसपास के देशों मे भी हुआ। उसके प्रचार-प्रसार मे सक्रिय बौद्ध-संघो ने बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया।

मगध-साम्राज्य का उदय ईरानी और यूनानी जातिया

प्राचीन भारत मे राजतन्त्र तथा गणतन्त्र, दोनो प्रकार की शासन-पद्धतिया विद्यमान थी। बुद्ध के जीवन-काल मे भी अनेक गणतन्त्र विद्यमान थे, जिनका उल्लेख पाली-ग्रन्थो मे है। परन्तु विदेशियो के प्रबल आक्रमणो के परिणामस्वरूप, धीरे-धीरे देश मे एकीकरण की भावना का विकास होने लगा। ईसा से लगभग ५१८ वर्ष पूर्व फ़ारस के सम्राट् दारयवहु (Darius) ने सिन्धु-घाटी का कुछ क्षेत्र अपने राज्य मे मिला लिया। यद्यपि इस क्षेत्र पर फारस का अधिकार अधिक दिनो तक न रहा, तथापि दोनो सभ्यताओ के सम्पर्क मे 'खरोष्ठी' नामक एक नई लिपि तथा नवीन राजनीतिक विचार-धाराओ का जन्म हुआ। भारत मे बड़े-बड़े साम्राज्यो का उदय सम्भवत फारस के प्रभाव के कारण ही हुआ।

ईसा-पूर्व ३२६ सन् मे सिकन्दर ने उत्तर-भारत पर आक्रमण किया। उस समय तक यूनानी लोग भारतीय दर्शन, उद्योग और वाणिज्य से परिचित हो चुके थे। सिकन्दर इलाके-पर-इलाका जीतता हुआ विपाशा (व्यास) नदी के तट पर आ पहुचा। परन्तु उसकी सेना ने वहा से आगे

बढ कर मगध (वर्तमान बिहार) के शक्तिशाली नद-साम्राज्य पर आक्रमण करने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर विवश होकर सिकन्दर को वहा से लौटना पडा। मार्ग में अनेक छोटी-छोटी स्वतन्त्र जातियो और नगरो के साथ सघर्ष करते हुए वह सिन्धु के मार्ग से लौट गया।

मौर्य-वंश : सम्राट् अशोक

सिकन्दर के लौटते ही भारत में एक अत्यन्त शक्तिशाली मौर्य-साम्राज्य का उदय हुआ, जिसका संस्थापक मगध के नदो का नाश करनेवाला चन्द्रगुप्त मौर्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने न केवल उत्तर-भारत को हस्तगत किया तथा सिल्यूकस निकेटर को (ई० पू० लगभग ३०५ मे) काबुल, हेरात, कन्दहार और बलूचिस्तान, इन चार प्रान्तो का समर्पण करने पर विवश किया, बल्कि सम्भवत: दक्षिण मे भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया। चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोक ने भी बड़े विशाल साम्राज्य पर शासन किया, जिसका विस्तार काबुल नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक तथा श्रीनगर से श्रीरगपट्टम तक था। मौर्यकालीन जीवन तथा शासन-व्यवस्था का बडा विशद वर्णन चाणक्य-विरचित 'अर्थशास्त्र' मे मिलता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त का मन्त्री था। मौर्य-साम्राज्य के पास एक विशाल सेना थी। सम्राट् साम्राज्य का केन्द्र और प्रधान था। वह शासन-कार्य मन्त्रिपरिषद् की सहायता से चलाता था तथा साम्राज्य के विविध अधिकरण अनेक उच्च पदस्थ राजपुरुषो के प्रबन्ध में थे।

चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक की गणना ससार के महान् सम्राटो में की जाती है। वह स्वय तो महान् था ही, उसने अपने देश को भी महानता प्रदान की। अपनी दिग्विजय में उसने कलिंग देश (वर्तमान उडीसा) पर आक्रमण किया, किन्तु युद्ध की वीभत्सता से उसके हृदय पर गहरा आघात पहुचा और अन्तत: खून-खराबे से विरक्त होकर वह बुद्ध-द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धातो का और 'मज्झिम-प्रतिपदा' का अनुगामी हुआ। उसने 'दिग्विजय' के स्थान पर 'धर्मविजय' को अपना ध्येय बना लिया। इसके बाद अशोक ने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागो तथा साम्राज्य से बाहर

श्रीलंका, मध्य-एशिया तथा पड़ोसी यूनानी देशों में भी, बौद्ध-धर्म के प्रचारक भेजे।

नई जातियां नए विचार

परन्तु अशोक के उत्तराधिकारी दुर्बल निकले और मौर्य-साम्राज्य धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होने लगा। दक्षिण तथा उत्तर के प्रान्तों में विद्रोह उठ खड़े हुए। लगभग ३०० वर्ष तक (ईसा-पूर्व लगभग २०० से १०० सन् तक) उत्तर-पश्चिमी भारत में अनेक जातियां आती और बसती रहीं। बारी-बारी से यूनानी, शक, पहलव तथा यूएह्-ची जातियों ने कम्बोज-कन्दहार तथा उसके आसपास के इलाकों पर आक्रमण किए और उन्हें जीत कर वे वहीं बस गईं। धीरे-धीरे ये सब जातियां भारतीय जीवन में घुल-मिल गईं। एक यूनानी राजदूत तो विष्णु का उत्कट भक्त हो गया तथा भारत का महानतम यूनानी सम्राट् भी बौद्ध मतावलम्बी हो गया। यूएह्-ची जाति के एक अनुयायी ने सिकियांग और तुर्फान में बौद्ध-धर्म की महायान-शाखा का प्रचार करने में योग दिया। मध्य-भारत और पश्चिमी भारत के कुछ शक-शासकों ने भी संस्कृत-भाषा और साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। विद्वानों का वे बड़ा सम्मान करते थे।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय सभ्यता भी इन विदेशी प्रभावों से अछूती न रही। भारतीय ललित कलाएं तथा धर्म तो इस संसर्ग से काफी प्रभावित हुआ। प्राचीन ब्राह्मण-मत में मूर्ति-पूजा का अधिक विकास नहीं हुआ था तथा गौतम बुद्ध और उनके अनुयायियों-द्वारा प्रवर्तित धर्म में भी इसका अधिक महत्व नहीं था। किन्तु विदेशी सम्पर्क के कारण बुद्ध की मूर्ति की कल्पना की गई। मुद्रा अर्थात् सिक्के बनाने की कला भी यूनानी और रोमन प्रभावों से उत्कर्ष को प्राप्त हुई।

भारत में यूनानियों के बस जाने से भारत तथा यूनान-रोम के बीच व्यापार-मार्ग भी खुल गया, विशेषकर दक्षिण-भारत और रोम के बीच तो व्यापार खूब फला-फूला। भारत ने अपने राजदूत रोम भेजे तथा भारतीय व्यापारियों ने सिकन्दरिया में भारतीय कलाओं और ज्ञान-

विज्ञान का खूब प्रचार किया। इस दिशा में पश्चिम को भारत की सबसे महत्वपूर्ण देन थी, दशमलव-प्रणाली। भारत के पश्चिम-तटवर्ती कुछ भाग (जैसे भृगुकच्छ) ससार की बडी भारी मंडिया बन गए। ईसा के जन्म से पहले तथा बाद की कुछ शताब्दियो मे सुदूर दक्षिण तथा पूर्वी तट मे उपनिवेशवादी समुद्र-मार्ग से प्रविष्ट होकर वर्तमान मलय, इडोचीन तथा इडोनेशिया जाकर बस गए।

इसी युग मे भारत मे ईसाई मत का भी आविर्भाव हुआ। एक अनुश्रुति मे पता चलता है कि पादरी टामस ने भारत मे ईसाई धर्म का प्रचार किया तथा उनको मद्रास मे दफनाया गया। सम्भवत. सर्वप्रथम ईसाई मिशनरी पश्चिमोत्तर-भारत मे पहली शताब्दी मे आए थे। इसके कुछ ही समय बाद मलबार में सीरियन क्रिश्चियन चर्च की स्थापना हुई।

गुप्त-वंश

मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात् कई शताब्दियो तक भारत में किसी केन्द्रीय सत्ता का अभाव रहा। हा, इस दौरान उत्तर-भारत मे कुषाणो का साम्राज्य स्थापित हुआ तथा दक्षिण मे सातवाहनो ने खूब कीर्ति अर्जित की।

चौथी शताब्दी मे पाटलिपुत्र के गुप्त-वशीय शासक उत्तर-भारत के अधिकाश भाग को सगठित करने मे सफल हुए। गुप्त-वंश के कुछ शासकों ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। वास्तव में, गुप्त-वश के राजत्व-काल मे एक शक्तिशाली साम्राज्य का विस्तार हुआ तथा काव्यकला, ज्योतिषविद्या, धातुविज्ञान, स्थापत्यकला और चित्रकला, आदि की श्रीवृद्धि हुई। इसीलिए, भारतीय इतिहास के इस युग को 'स्वर्ण-युग' कहते है।

सम्राट् समुद्रगुप्त स्वय एक अच्छा कवि, गायक तथा वीणावादक था और शास्त्रो के अनुशीलन मे उसकी बुद्धि अत्यन्त प्रखर थी। ऐसा अनुमान है कि कविकुलगुरु कालिदास का रचना-काल भी यही था, यद्यपि इस महान् रचनाकार के समय के बारे में अभी तक विद्वानो मे काफी मतभेद है। गुप्तकालीन कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट ब्राह्मण-मूर्तिया भी प्राप्त हुई है।

अधिकाश पुराण-साहित्य की रचना भी इसी काल मे हुई। अजन्ता के विश्व-प्रसिद्ध भित्तिचित्र भी इसी युग मे अकित किए गए। गुप्तो के शासन-काल मे सिक्के ढालने की कला भी पूर्ण उत्कर्ष तक पहुची। दिल्ली मे कुतुब-मीनार के निकट का लौह-स्तम्भ (लोहे की कील) उस युग के धातु-विज्ञान के चरमोत्कर्ष का एक ज्वलत प्रमाण है।

समुद्रगुप्त के शासन-काल मे श्रीलका के शासक ने बोधगया मे श्रीलका के तीर्थ-यात्रियो की सुविधा के लिए एक विहार बनवाया। कुछ समय उपरान्त (लगभग ४०५ ई० मे) चीनी यात्री फाह्यान ने भारत की यात्रा की।

हर्षवर्द्धन और पुलकेशिन

भारत मे जितने भी चीनी यात्री आए, उनमे हुएन्-त्साग प्रमुख था। हुएन्-त्साग ने ६२९ तथा ६४५ ईसवी के बीच भारत के विभिन्न स्थानो का भ्रमण किया। इन दिनो उत्तर-भारत मे हर्षवर्द्धन की और दक्षिण में चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय की कीर्ति का डका बज रहा था। हर्षवर्द्धन अपने पाडित्य, दानशीलता और सहिष्णुता के लिए बडा प्रसिद्ध हुआ, यद्यपि बौद्ध-धर्म मे भी उसकी श्रद्धा थी। पुलकेशिन ने हर्षवर्द्धन को नर्मदा से आगे बढने से रोक दिया। इससे पुलकेशिन की ख्याति फारस के बादशाह खुसरो द्वितीय तक पहुची और दोनो ने परस्पर-उपहारो और राजदूतो का आदान-प्रदान किया।

सातवी शताब्दी के मध्य मे, हर्ष की मृत्यु के उपरान्त, कश्मीर के शक्ति-शाली राजवश को छोड कर, उत्तर-भारत मे कोई ऐसा शासक नहीं हुआ, जो इस क्षेत्र मे एकता स्थापित कर सकता। हा, दक्षिण मे अनेक शक्तिशाली राजवश बने रहे, तथा छठी शताब्दी के मध्य से लेकर लगभग ३०० वर्ष तक बादामी के चालुक्यो, काची के पल्लवों तथा मदुरा के पाड्यो मे निरन्तर सघर्ष चलता रहा।

उत्तर-भारत मे आठवी शताब्दी में कुछ नए क्षत्रिय-राजवशो का उदय हुआ। इनमे अरावली-नर्मदा-प्रदेश के गुर्जर-प्रतिहार तथा पूर्वी भारत के पाल-वश प्रमुख थे। आठवी शताब्दी के मध्य मे दक्षिण के

राष्ट्रकटो ने चालुक्यो को उखाड फेका । उपर्युक्त तीनो राजवश यद्यपि उत्तर-भारत को हथियाने के लिए जूझते रहे (८००-१००० ईसवी), तथापि उन्होने ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल के प्रचार-प्रसार में महान् योग दिया। कन्नौज धन-वैभव और समृद्धि का आगार था, इसलिए सभी की सतृष्ण दृष्टि उस पर गडी हुई थी। एक के बाद एक शासक उस पर अधिकार जमाने की चेष्टा करता रहा। धुर दक्षिण में नौ-शक्ति मे अग्रणी चोलो का ध्यान अधिकतर समुद्रपार राज्यो पर ही केन्द्रित रहा। राजराज चोल ने श्रीलका पर आक्रमण किया और उसके पुत्र राजेन्द्र ने मलय, जावा और सुमात्रा के श्रीविजय-साम्राज्य को जीता। उसने बनारस तक धावा किया।

मुसलमानों के आक्रमण

सबसे पहले मुसलमान आक्रमणकारियो, अर्थात् अरबो, ने ७११ ईसवी मे सिन्ध पर आक्रमण किया। प्रतिहारो तथा चित्तौड के गुहिलो ने इन आक्रमणकारियो को आगे बढने से रोका। किन्तु अरब व्यापारियो तथा पारसियो को, जो इस्लाम के प्रसार के साथ फारस से भाग आए थे, पश्चिमी बन्दरगाहों मे राष्ट्रकूटो ने आश्रय दिया। इससे पहले मलबार-तट पर भी मुसलमान उतर चुके थे। प्रतिहार मुख्यतया स्थल-शक्ति के स्वामी थे, किन्तु राष्ट्रकूटो और पालो को नौ-शक्ति भी बनाए रखनी पडती थी। पालो ने मलय-द्वीपो मे अपने उपनिवेश बसाए तथा उनके साथ अपना वाणिज्य-व्यापार भी बढाया।

इसके लगभग ढाई सौ वर्ष पश्चात् हिन्दुकुश के मार्ग से मुसलमानो के आक्रमण का दूसरा दौर शुरू हुआ, जिसके फलस्वरूप उत्तर-भारत मे मुसलमानो का राज्य स्थापित हुआ। सबसे पहला और महत्वपूर्ण आक्रमण महमूद गजनवी का था। महमूद गजनवी ने भारत के नगरो और मन्दिरो की अपार सम्पत्ति लूटने की गरज से भारत-भूमि पर १५ से भी अधिक आक्रमण किए। वह प्रतिहारो की शक्ति को भी कुचलने मे सफल हुआ, जो मुसलमानो के विस्तार में एक रोड़ा बने बैठे थे।

महमूद गजनवी के लगभग २०० साल बाद, मुहम्मद गोरी ने भारत

पर आक्रमण किया। राजपूत राजाओं की फूट का—विशेषकर दिल्ली और अजमेर के शासक पृथ्वीराज तथा कन्नौज के शासक जयचंद राठौर के आपसी कलह का—उसने बडा लाभ उठाया। ये नए आक्रमणकारी, जो मुख्यत तुर्क और अफगान थे, लूट-मार के उद्देश्य मे ही नही, वरन् इससे भी अधिक, उपयुक्त जलवायु मे स्थायी रूप से बसने की नीयत से यहा आए थे। जाबाज सैनिकों को लेकर मुहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन ने ११९२ ईसवी मे थानेश्वर के निकट राजपूतो की शक्ति को कुचल कर रख दिया। फिर, अजमेर, दिल्ली, बनारस तथा ग्वालियर को जीतने के बाद मुहम्मद गोरी ने बगाल तक लगभग सारी गगा-घाटी को रौद डाला। १२०६ ईसवी मे मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् कुतुबुद्दीन ने आक्रमणकारी सेना का नेतृत्व सम्भाला और भारत का सर्वप्रथम मुस्लिम शासक बना।

दिल्ली-सल्तनत

दिल्ली में जिन मुसलमान राजवशो ने शासन किया, उनमे इलबरी, तुर्क खिलजी तुगलक सैयद और लोदी-राजवश प्रमुख थे। खिलजी-सुल्तानो ने मालवा-गुजरात को जीत कर अपने राज्य मे मिला लिया और सुदूर दक्षिण तक आक्रमण किए। परन्तु दिल्ली के सुल्तानो को उत्तर-पश्चिम से होनेवाले आक्रमणो का मुकाबला करने मे सदा व्यस्त रहना पडता था। ये आक्रमणकारी मगोल थे तथा भोजन और स्थान की खोज मे मारे-मारे फिरते थे। भारत मे सर्वप्रथम मगोल-आक्रमण १२२१ ईसवी मे चगेज खा के नेतृत्व मे हुआ। इसके बाद जो आक्रमण हुए, उनका मुख्य उद्देश्य लूट-खसोट था और अक्सर इन आक्रमणकारियो को धन से सन्तुष्ट करके लौटा दिया जाता था। १३९८ ईसवी में मध्य-एशिया को रौंदने के बाद तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। इसके बाद १५२६ ईसवी में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। बाबर का पिता तैमूर-वश का और माता चगेज खा के वश की थी।

मुहम्मद गोरी और उसके बाद के आक्रमणकारियो के साथ आनेवाले तुर्क और अफगान उत्तर-भारत मे ही बस गए। दिल्ली उनका मुख्य केन्द्र

था। उनके शासक, जो सुल्तान कहलाते थे, बहुधा तुर्क ही थे, किन्तु अन्तिम शासक (१६ शताब्दी के आरम्भ मे) पठान थे। ये मुसलमान आक्रमणकारी शक, यूएह्-ची, हूण और दूसरी खानाबदोश जातियो से इस बात मे भिन्न थे कि इनका अपना एक विशिष्ट धर्म था और अक्सर हिन्दुओ के साथ इनका सघर्ष चलता रहता था। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन दोनो जातियो में अधिक सघर्ष नही हुआ और जो सघर्ष हुए भी, वे साम्प्रदायिक कारणो से न होकर मुख्यतया राजनीतिक तथा आर्थिक कारणो से हुए।

इस्लाम के सम्पर्क में आने से पूर्व ही हिन्दू-धर्म मे सुधारवाद की एक लहर चल पडी थी। इस धार्मिक पुनरुत्थान का प्रवर्तन करनेवाले तीन आचार्य थे—शकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य। रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य भक्तिमार्ग के प्रतिष्ठापक थे। इसी भक्ति-आन्दोलन से प्रेरित होकर पहले दक्षिण मे तथा बाद मे उत्तर मे उत्कृष्ट प्रादेशिक साहित्य की रचना हुई।

सुल्तानो की राजधानी भी इस्लामी दर्शन और साहित्य के अध्ययन का केन्द्र बन गई थी और उसको बगदाद और काहिरा के समान ही महत्व दिया जाने लगा था। अमीर खुसरो तथा जियाउद्दीन बरनी-सदृश कवि और विद्वान् दिल्ली-दरबार की शोभा बढाते थे। प्रसिद्ध अफ्रीकी विद्वान् और यात्री इब्नबतूता ने भी आठ वर्ष भारत मे व्यतीत किए।

मुसलमान सुल्तानो, सूबेदारो, आदि ने भारत मे जो इमारते बनवाई, उनमे हिन्दू और अरबी स्थापत्य-कला का मिश्रण स्पष्टत देखने को मिलता है।

मुसलमान विद्वान् और सन्त हिन्दू-दर्शन की ओर भी आकृष्ट हुए तथा वेदान्त और योगदर्शन के प्रभाव मे मुसलमानो मे सूफी मत (मुसलमानी रहस्यवाद) का जन्म हुआ।

इसके विपरीत, हिन्दू-धर्म पर भी इस्लाम-धर्म का पर्याप्त प्रभाव पडा। एक ओर तो कुछ लोग ऐसे थे, जो इस्लाम के धर्म-प्रचार-आन्दोलन के विरुद्ध हिन्दू-धर्म को मजबूत बनाना चाहते थे और दूसरी ओर कुछ ऐसे विद्वान् और सन्त हुए, जिन्होने सब धर्मों की मूलभूत एकता का

प्रचार किया और मोक्ष के लिए भक्ति को सहज मार्ग बतलाया। इन सबमे कबीर (लगभग १४०० ईसवी) तथा गुरु नानक (जन्म १४६६ ईसवी) विशेष उल्लेखनीय है। गुरु नानक ने न केवल धर्मान्धता, अंध-विश्वास तथा समाज की रूढिवादिता पर तीव्र प्रहार किया, बल्कि एक उदार और वर्णहीन समाज की भी नीव रखी। बाद मे यही सिख-सम्प्रदाय कहलाया। सन्त कबीर और गुरु नानक का साहित्य और धर्म, दोनो ही क्षेत्रो मे बडा महत्वपूर्ण स्थान है।

बारहवी शताब्दी के आरम्भ मे, चोल-वश के पतन के पश्चात् मदुरा के पाड्यो, द्वारसमुद्र के होयसलो तथा देवगिरि के यादवो की ताकत बढने लगी। चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे खिलजी तथा तुगलक-सुल्तानो के हाथो यादवो तथा होयसलो के राजवशो का नाश हुआ।

इसी बीच एक अन्य हिन्दू-शक्ति तुगभद्रा के तट पर, विजयनगर के आसपास, उठ खडी हुई। दक्षिण के मुसलमान शासको के साथ निरन्तर सघर्ष के बावजूद, विजयनगर-साम्राज्य अत्यन्त समृद्ध हुआ। परन्तु १५६५ ईसवी मे स्थानीय मुसलमान-राजवशो ने मिल कर विजयनगर-साम्राज्य को नष्ट कर दिया। इस घटना से कुछ ही वर्ष पूर्व, उत्तर-भारत मे अकबर के नेतृत्व मे मुगल पठानो को अतिम रूप मे पराजित कर चुके थे।

वास्को-दि-गामा

विजयनगर-साम्राज्य के पतन के ७० वर्ष पूर्व, दक्षिण मे एक और बडी महत्वपूर्ण घटना घट चुकी थी, अर्थात् भारत तथा यूरोप के बीच सीधा समुद्री मार्ग खुल चुका था। मई १४९८ मे पुर्तगाली बेडे का सरदार वास्को-दि-गामा कालीकट पहुचा। इसके बाद से सारे हिन्द-महासागर पर सशस्त्र यूरोपीय व्यापारियो ने अपना प्रभुत्व जमाना शुरू कर दिया।

अकबर महान्

इधर उत्तर-भारत मे बाबर के पोते अकबर ने मुगल-शक्ति का खूब विस्तार किया और जब १६०५ ईसवी मे उसकी मृत्यु हुई, तब उसका साम्राज्य पश्चिम मे कन्दहार से लेकर पूर्व मे ढाका

तक तथा उत्तर मे श्रीनगर से लेकर दक्षिण में अहमदाबाद तक फैला हुआ था।

अकबर एक महान् योद्धा और विजेता तो था ही, इससे भी बढ कर वह एक कुशल शासक, राजनीतिज्ञ तथा साहित्य और कला का सरक्षक था। टोडरमल, मानसिह तथा अब्दुर्रहीम-सदृश योग्य दरबारियो को उसने बिना किसी धार्मिक पक्षपात के चुना। उनकी सहायता से उसने अपने विजित प्रदेशो का सगठन किया और ऐसी कुशल प्रशासन-पद्धति चलाई, जो पीढियो तक चलती रही। उसके दरबारियो मे सैनिको और राजनीतिज्ञो के अतिरिक्त, विद्वान्, सुकवि और कला-पारखी भी थे, जिनमे प्रत्युत्पन्नमति बीरबल, महान् सगीतज्ञ तानसेन, सूफी कवि फैजी एव कवि और विद्वान् अबुल फजल विशेष प्रसिद्ध है।

अकबर ने अनेक आलीशान इमारते भी बनवाई। इन इमारतो मे भारतीय और अरबी, दोनो शैलियो का सम्मिश्रण दिखाई देता है। अकबर ने ही फतहपुर सीकरी नामक नगर की भी स्थापना की। मुगल-साम्राज्य की राजधानी होने के अतिरिक्त, फतहपुर सीकरी हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय का भी प्रतीक थी। फतहपुर के शाही दरबार में मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई, आदि भिन्न मतावलम्बी एकत्र होते थे और विभिन्न मतो पर विचार-विमर्श चलता था।

अकबर से पूर्व कश्मीर के सुल्तान जैन-उल-आब्दीन (सन् १४२०-७० ईसवी) तथा उत्तर-भारत के पठान शासक शेरशाह (सन् १५३९-४५ ईसवी) ने कट्टर मुसलमान होते हुए भी सार्वजनिक जीवन मे हिन्दू-मुस्लिम का भेद नही माना। विभिन्न धर्मों का समन्वय करने के लिए अकबर ने न केवल गैर-मुसलमानो पर से जजिया हटा दिया, बल्कि अनेक प्रतिभाशाली लोगो के लिए सरकारी नौकरी के दरवाजे भी खोल दिए।

अकबर के उत्तराधिकारी—जहागीर, शाहजहा तथा औरगजेब—सब योग्य और शक्तिशाली शासक थे। जहागीर और शाहजहा को तडक-भडक और शानो-शौकत बहुत पसन्द थी। मुगल-स्थापत्यकला के कुछ उत्कृष्ट नमूने शाहजहा के शासन-काल मे ही निर्मित हुए,

जिनमे ताजमहल तथा दिल्ली का लाल किला विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इसके विपरीत, औरगजेब (मृत्यु सन् १७०७ ईसवी) बडा सयमी जीवन व्यतीत करता था। सैनिक प्रबन्ध मे वह मुगल-साम्राज्य के सस्थापक बाबर और अकबर से किसी भी तरह कम नही था। परन्तु कितनी बडी बिडम्बना है कि मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार भी वही था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उसने धार्मिक पक्षपात की नीति अपनाई, हिन्दुओ पर फिर से जजिया लगा दिया और सिखो के गुरु को मौत के घाट उतारा। राजपूत मुगल-साम्राज्य के आधार-स्तम्भ थे, किन्तु औरगजेब ने उन्हे निकाल बाहर किया। उधर, पश्चिमी घाटो मे मराठा-शक्ति मुगल-साम्राज्य की घातक शत्रु सिद्ध हुई।

मराठा-शक्ति का अभ्युदय

शिवाजी (सन् १६२७-८० ईसवी) के अधीन पश्चिम-भारत के मराठो ने बडा जोर पकडा। औरगजेब के कमजोर उत्तराधिकारियो के शासन-काल मे वे एक शक्तिशाली हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हुए तथा उत्तर और दक्षिण की राजनीति मे, पेशवाओ के कुशल सचालन के अन्तर्गत, उनका बडा दबदबा रहा।

इधर, मुगलो के हाथ से धीरे-धीरे अफगानिस्तान भी निकल गया और शीघ्र ही वह नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली-जैसे लुटेरो का गढ बन गया। सन् १७६१ ईसवी मे पानीपत की ऐतिहासिक रणभूमि मे मराठो और अब्दाली की सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ, जिसमे मराठे हार गए, किन्तु शत्रु-सेना भी भारत पर नियत्रण प्राप्त करने मे सफल न हो सकी। अब मुगल-साम्राज्य दिल्ली के आसपास के कुछ प्रदेशो तक ही सीमित रह गया। उसका प्रभाव बिल्कुल क्षीण हो गया और उसकी प्रभुसत्ता माननेवाले सूबो ने न्यूनाधिक मात्रा मे खुद-मुख्तारी (स्वायत्त-शासन) का ऐलान कर दिया।

महादजी सिधिया (मृत्यु सन् १७९४ ईसवी) के झडे के नीचे

मराठो ने एक बार फिर अपना साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश की, किन्तु इस बार भी निराशा ही उनके हाथ लगी। इसी समय सन् १६०० ईसवी मे स्थापित ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुछ व्यापारियो को भारत मे अपने पैर जमाने का स्वर्ण अवसर मिल गया।

यूरोपीयो का आगमन

यूरोपीय राष्ट्रो मे सबसे पहले पुर्तगालियो ने भारत के साथ सीधा व्यापार आरम्भ किया। उन्होंने तटवर्ती क्षेत्रो में अपनी बस्तिया बसाई। उनके बाद डच, अग्रेज, डेन तथा फ्रासीसी अपने पैर जमाने में सफल हुए। पुर्तगालियो का उद्देश्य व्यापार की अपेक्षा अपने धर्म का प्रचार करना अधिक था। पश्चिमी तट के कुछ स्थानो पर अधिकार जमाने के अलावा, वे और आगे बढने मे सफल न हो सके। इसी प्रकार, डेन और डच भी अपनी गतिविधियो का अधिक विस्तार न कर सके। बाकी रह गए अग्रेज और फ्रासीसी। अब, भारतीय व्यापार को हथियाने के लिए इन दोनो जातियो मे ठन गई। अब तक मुगल-साम्राज्य का पतन हो चुका था और भारतवासियो में राष्ट्रीय भावना का अभाव हो गया था। इन दोनो जातियो ने इस परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया और भारतीय राजाओ और नवाबो के कधे पर बन्दूक रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया।

ब्रिटिश साम्राज्य

जिन व्यक्तियों ने भारत मे अग्रेज़ी साम्राज्य की नीव रखी, उनमें क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्ज़ तथा वेलेज़ली (वेलिगटन के ड्यूक के भाई) प्रमुख थे। फ्रासीसियो ने हैदरअली और मैसूर के सुल्तान की पीठ थपथपाई, परन्तु अठारहवी शताब्दी का अन्त होते-होते फ्रासीसियो की शक्ति क्षीण पड़ गई। जिस समय नेपोलियन का पतन हुआ, उस समय फ्रासीसियो की बस्तिया माही, कराइकल, पाण्डिचेरी, यनम तथा चन्दननगर तक ही सीमित थी। इसके विपरीत, अंग्रेज़ों के अधिकार मे बंगाल, बिहार और उडीसा, वर्तमान उत्तरप्रदेश

के कुछ भाग, मद्रास तथा बम्बई राज्य थे। देश के कुछ अन्य हिस्सो मे भी उनकी प्रभुसत्ता स्थापित हो चुकी थी।

पजाब मे महाराजा रणजीतसिह (मृत्यु सन् १८३६ ईसवी) का शक्तिशाली सिख-साम्राज्य अग्रेज़ो के आगे बढने मे बाधक बना। परन्तु सन् १८४३ ईसवी मे अग्रेजो ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया और सन् १८५० ईसवी तक सिखो के प्रबल विरोध को भी दबा दिया। इस प्रकार, पजाब पर भी अग्रेज़ो का अधिकार हो गया। इसके तुरन्त बाद लोअर बर्मा, नागपुर और अवध, सन् १८७८ ईसवी मे बलूचिस्तान तथा सन् १८८६ ईसवी मे अपर बर्मा पर भी अग्रेजो ने अधिकार कर लिया। (सन् १९३७ ईसवी तक बर्मा भारत का अभिन्न अग था। इसके बाद उसे अलग करके ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत एक अलग इकाई बना दिया गया।) इस प्रकार, जो लोग यहा व्यापार करने की नीयत से आए थे, वही शासक बन बैठे। सन् १८३३ ईसवी मे भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक कार्यों को समाप्त कर दिया गया और इग्लैड के सभी व्यापारियो को भारत के साथ व्यापार करने की खुली छूट दे दी गई।

लगभग इन्ही दिनो ईस्ट इण्डिया कम्पनी-द्वारा स्थापित स्कूलो और कालेजो मे अग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। कम्पनी की सरकार ने समाज-सुधार का भी कुछ काम हाथ में लिया, जिसमें राजा राममोहन राय तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-जैसे भारतीय समाज-सुधारको की प्रेरणा प्रमुख थी।

सन् १८५३-५४ ईसवी मे भारत मे वाष्प-शक्ति आई तथा सूती कपडे की मिले खुलने लगी, रेलो का निर्माण हुआ और बिजली लगने लगी। सचार-साधनो का विकास होने से भारत में धडाधड ब्रिटिश माल भी आने लगा, जिसके परिणामस्वरूप भारत के प्राचीन कला-कौशल को, विशेषकर छोटे उद्योगो और ग्रामोद्योगो को, बहुत बडा धक्का लगा।

सन् १८५७ की क्रांति

लेकिन ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनता का रोष दिन-दिन बढता

जा रहा था और उसने सन् १८५७ मे एक बडी क्रांति का रूप धारण किया। विदेशी शासन के विरुद्ध यह आन्दोलन अधिकतर गंगा-घाटी और मध्य-भारत मे ही सीमित रहा। दिल्ली में कठपुतली-स्वरूप मुगल-सम्राट् को इस क्रांति का प्रतीक बनाया गया। अन्तत अंग्रेज इस विद्रोह को कुचलने में सफल हो गए और कम्पनी के शासन को हटा कर ब्रिटिश सम्राज्ञी ने शासन-भार स्वय सम्भाल लिया। बूढे मुगल-सम्राट् पर ब्रिटिश न्यायालय मे मुकदमा चला और उसे सिंहासनच्युत करके बर्मा मे देश-निकाला दे दिया गया।

ब्रिटिश सम्राज्ञी-द्वारा भारत का शासन सम्भाल लिए जाने के बाद से लेकर सन् १९४७ तक भारत के राजनीतिक ढाचे की दो प्रमुख विशेषताए थी। जिन इलाको को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तथा उसके उत्तराधिकारी भारत-सरकार ने जीत कर अपने शासन मे मिला लिया था, उनको प्रान्तो मे विभक्त करके ब्रिटिश सरकार उन पर प्रत्यक्ष शासन करती थी। बडे प्रान्त गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नर तथा छोटे प्रान्त चीफ कमिश्नर के अधीन होते थे।

इसके विपरीत, जिन रियासतो ने ब्रिटिश शासन का सरक्षण स्वीकार कर लिया, उनको ब्रिटिश प्रभुसत्ता के अन्तर्गत स्थानीय राजवशो के पास ही रहने दिया गया। भारत का गवर्नर-जनरल, जिसे 'वायसराय' या 'ब्रिटिश राजसत्ता का प्रतिनिधि' कहते थे, एजेण्टो के माध्यम से उन पर नियत्रण रखता था।

पहले विश्व-युद्ध के समाप्ति-काल के आसपास ब्रिटिश प्रान्तो की जनता को भी वहा के शासन-प्रबन्ध मे पहले की अपेक्षा अधिक स्थान दिया जाने लगा। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार मे भी कुछ परिवर्तन किए गए।

ब्रिटिश शासन का अन्त

सन् १८८० ईसवी के आसपास ए० ओ० ह्यूम, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता तथा अन्य महानुभावो के नेतृत्व मे स्वराज्य का जो आन्दोलन आरम्भ

हुआ, उसे बाद मे तिलक, गोखले, लाजपतराय और एनी बेसेंट के नेतृत्व मे और अधिक बल मिला। रूस पर जापान की अप्रत्याशित विजय तथा चीन मे क्रांति—इन दो घटनाओ ने यह सिद्ध कर दिया कि एशिया के लोग पिछड़े हुए नही है। इसके अतिरिक्त, बग-भग के विरुद्ध सफल आन्दोलन मे जो साधन अपनाए गए—जैसे सावैधानिक प्रतिरोध, आर्थिक असहयोग तथा क्रांति—उनके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वास्तविक खतरा पैदा कर दिया।

पहले विश्व-युद्ध मे भारत ने मित्र-राष्ट्रो की जो सहायता की थी, उसके पीछे यह आशा काम कर रही थी कि भारतीयो को शीघ्र ही स्वराज प्रदान किया जाएगा। परन्तु युद्ध के बाद जो सुधार किए गए, उनसे ये आशाए पूरी न हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि महात्मा गाधी के नेतृत्व मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अहिसक असहयोग तथा सविनय अवज्ञा-आन्दोलन छेड दिया। सन् १९३५ मे जो सुधार किए गए, उनसे भी भारतीयो की आशाए पूरी नही हुई। एक ओर जहा काग्रेस पूर्ण स्वराज की माग कर रही थी, वहा दूसरी ओर सन् १९४० के आसपास मुस्लिम लीग के नेतृत्व मे एक नया आन्दोलन उठ खडा हुआ जो मुसलमानो के लिए एक अलग राज्य की माग लेकर सामने आया।

स्वतन्त्रता और एकीकरण

उसी समय दूसरा विश्व-युद्ध छिड गया। उस समय भारतीय इतिहास एक बडे नाजुक दौर मे गुजर रहा था। अपनी इच्छा के विरुद्ध भारत को भी इस युद्ध मे घसीटा गया। भारत मे 'सविनय अवज्ञा' तथा 'भारत छोडो'-आन्दोलनो और दक्षिण-पूर्व एशिया मे आजाद हिन्द फौज के निर्माण के परिणामस्वरूप भारत के अन्दर बडे दूरगामी परिवर्तन हुए और अन्त मे विश्व-युद्ध के समाप्त होने पर अग्रेजो को भारत छोड देना पडा।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत स्वतत्र हुआ। इससे एक दिन पहले भारत के कुछ हिस्सो को लेकर पाकिस्तान का जन्म हुआ। इसके साथ ही, भारत की रियासतो मे भी ब्रिटिश शासन का अन्त हो गया।

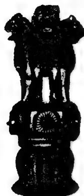
स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल के सद्प्रयत्नो के फलस्वरूप १ जनवरी, १९५० तक भारत की सभी ५५२ रियासतें, जिनकी कुल जनसख्या लगभग ९ करोड थी, भारतीय सघ में मिल गई और उनके शासन को लोकतन्त्रात्मक रूप दे दिया गया। कुछ रियासतो को निकटस्थ भारतीय प्रान्तो के साथ मिला दिया गया, कुछ को रियासती सघो के अन्तर्गत रखा गया तथा बाकी को केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत मुख्य ग्रायुक्त (चीफ कमिश्नर)-द्वारा शासित राज्य बना दिया गया।

भारत का नया सविधान नवम्बर, १९४९ तक बन कर तैयार हो गया और २६ जनवरी, १९५० को उसे लागू कर दिया गया। नए सविधान के अन्तर्गत सब वयस्को, अर्थात् बालिग व्यक्तियो, को मताधिकार दिया गया। वयस्क मताधिकार पर आधारित पहला आम चुनाव अक्तूबर १९५१ तथा फरवरी १९५२ के बीच हुआ। चुनाव मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को केन्द्र तथा अधिकाश राज्यो मे बहुमत प्राप्त हुआ। दूसरा आम चुनाव सन १९५७ के आरम्भ में हुआ।

भारत सयुक्त राष्ट्र-सघ और उसकी अन्य सस्थाओ तथा राष्ट्र-मण्डल का भी सदस्य है। भारत की विदेश-नीति का मूलाधार है शाति तथा तटस्थता, अर्थात् किसी भी गुट मे शामिल न होना।

देश का द्रुत गति से आर्थिक विकास करने के निमित्त योजनाए बनाने के लिए मार्च १९५० मे भारत-सरकार ने योजना-आयोग की स्थापना की। अप्रैल १९५१ मे पहली पचवर्षीय योजना आरम्भ हुई, जो काफी सफल रही। दूसरी पचवर्षीय योजना सन् १९५६ से चालू है। तीसरी पचवर्षीय योजना (१९६१-६६) की भी प्रारम्भिक रूपरेखा प्रकाशित कर दी गई है।

१ नवम्बर, १९५६ को भारत के विभिन्न राज्यो का पुनर्गठन किया गया। फिर, सन् १९६० के आरम्भ मे बम्बई राज्य का विभाजन करके गुजरात और महाराष्ट्र नामक दो राज्य बना दिए गए। इस प्रकार, इस समय देश में १५ राज्य और ६ केन्द्र-शासित क्षेत्र है। अभी हाल मे पूर्वोत्तर सीमा-क्षेत्र के नागा-प्रदेश मे भी 'नागालैंड' नामक एक नए राज्य के निर्माण का निश्चय किया गया है।



अध्याय ३

संविधान

भारत स्वतन्त्र तो १५ अगस्त, १९४७ को ही हो गया था, परन्तु भारत का सविधान २६ जनवरी, १९५० में लागू हुआ, जिसके अनुसार भारत 'सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' बना। सविधान का प्रारूप एक 'सविधान-सभा' ने तैयार किया, जिसका प्रथम अधिवेशन ९ दिसम्बर, १९४६ को हुआ था। सविधान-सभा ने २६ नवम्बर, १९४९ को सविधान को अन्तिम रूप दिया। नए सविधान में ३९५ अनुच्छेद तथा ८ अनुसूचिया है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष, अर्थात् असाम्प्रदायिक राज्य है। सविधान मे कहा गया है कि धर्म, जाति, वर्ण या लिग के आधार पर नागरिको मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही किया जाएगा। सविधान की प्रस्तावना मे यह भी कहा गया है कि सभी नागरिको को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म,

और उपासना की स्वतंत्रता, एव प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए प्रयत्न किया जाएगा ।

मूल अधिकार

भारत के सविधान मे मानवीय अधिकारो की विस्तार से चर्चा की गई है । सविधान मे प्रत्येक नागरिक को स्वतत्रता, समता, तथा धर्म, सम्पत्ति, सस्कृति और शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारो का आश्वासन दिया गया है । इसके अतिरिक्त, सविधान मे उल्लिखित अधिकारो की रक्षा के लिए कोई भी नागरिक सर्वोच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटा सकता है । सविधान मे कुछ निदेशो का भी उल्लेख है, जिन्हें 'राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त' कहते है। इन निदेशक सिद्धान्तो के अनुसार, राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और सरक्षण के द्वारा लोक-कल्याण को प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा, जिससे राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रो मे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का पालन हो।

पृथक् अधिकार-सूचियां

चूकि सभी १५ राज्यो तथा ६ केन्द्र-शासित क्षेत्रो* पर एक ही सविधान लागू होता है, इसलिए सविधान में राज्यो तथा केन्द्र की शक्तियो और विशेषाधिकारो की गणना अलग-अलग सूचियो में स्पष्ट रूप से कर दी गई है । इन सूचियो को 'राज्यीय सूची', 'सघीय सूची' तथा 'समवर्ती सूची' कहते है।

सविधान में भारतीय राष्ट्र की अखण्डता को अक्षुण्ण रखने पर विशेष बल दिया गया है । साथ ही, भारतीय जनता के आचार-विचार की विविधता को भी दृष्टिगत रखा गया है । भारतीय सघ अटूट है, इसलिए किसी भी राज्य को सघ से अलग होने का अधिकार नही है । इसके अतिरिक्त,

---

*विवरण के लिए अध्याय ५ देखिए ।

सविधान ने यह व्यवस्था भी की है कि संकटकालीन परिस्थितियो मे केन्द्रीय सरकार किसी भी राज्य का शासन अपने हाथ मे ले सकती है । ऐसी स्थिति मे ससद् कानून, आदि बनाने के उन सब अधिकारो का प्रयोग कर सकती है, जो आम तौर पर राज्यो मे निहित है।

भारत के सविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसका लचीलापन है । सविधान मे सशोधन करने की प्रणाली बडी सरल है।

मताधिकार

भारतीय गणतत्र की सरकार जनता की सरकार है । केन्द्र तथा राज्यो मे जनता के ही प्रतिनिधि शासन चलाते है। हमारे सविधान में समान नागरिकता की व्यवस्था है। सघीय सविधानो की दुहरी नागरिकता की पद्धति को भारतीय सविधान मे नही अपनाया गया है । सभी वयस्क नागरिको को मत देने का अधिकार है । अनुमान लगाया गया है कि भारत मे जितने लोगो को मत देने का अधिकार है, वह विश्व की कुल जनसख्या का लगभग बारहवा भाग, ब्रिटेन की जनसख्या का चार-गुना तथा अमेरिका की जनसख्या से ढाई करोड अधिक है ।

संघीय सरकार

भारत ने लोकतत्रीय मन्त्रिपरिषद् की प्रणाली अपनाई है । केन्द्रीय सरकार मे सबसे ऊपर राष्ट्रपति होता है । राष्ट्रपति का चुनाव पाच वर्षों के लिए परोक्ष विधि से एक निर्वाचकमण्डल करता है, जिसमें ससद् के दोनो सदनो तथा राज्यो के विधानमण्डलो के निर्वाचित सदस्य होते है ।

भारतीय सघ के उपराष्ट्रपति का चुनाव ससद् के दोनो सदनो की सयुक्त बैठक में किया जाता है ।

सघ की वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद् है, जो प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में कार्य करती है । मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप मे लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है ।

संसद्

केन्द्रीय विधानमण्डल को 'ससद्' कहते है । इसके दो सदन है—राज्यसभा तथा लोकसभा । लोकसभा के सदस्यों की अधिकतम सख्या ५२० निश्चित की गई है । इन सदस्यो का चुनाव देश-भर के निर्वाचन-क्षेत्रों से सीधे किया जाता है । आम तौर पर लोकसभा का कार्यकाल ५ वर्ष से अधिक नही होता । लोकसभा के कार्य-सचालन-अधिकारी को 'अध्यक्ष' अथवा 'स्पीकर' कहते है।

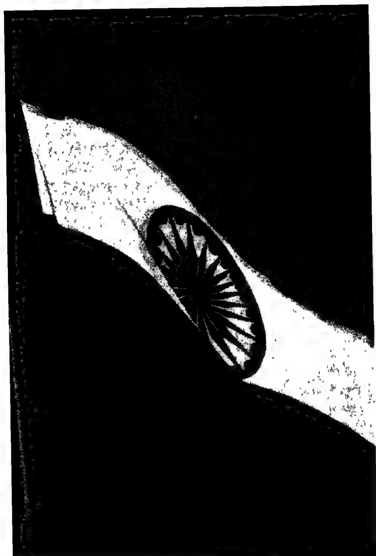
राज्यसभा एक स्थायी निकाय या सगठन है । इसके लिए चुनाव परोक्ष विधि से किया जाता है । इसके अलावा, एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते है । राज्यसभा के सदस्यो की अधिकतम सख्या २५० है, जिनमें से बारह सदस्यो को राष्ट्रपति कला, साहित्य, विज्ञान और समाज-सेवा, आदि के क्षेत्रो में उनकी ख्याति या अन्य विशेषताओं के कारण निर्दिष्ट या नामजद करता है । भारतीय संघ का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन 'सभापति' या 'चेयरमैन' होता है ।

राज्य-सरकारें

राज्यो मे भी शासन-पद्धति केन्द्रीय शासन-पद्धति के ही समान है । सब प्राधिकार राज्यपाल (जम्मू-कश्मीर में सदर-ए-रियासत) मे निहित होते है तथा मुख्य मन्त्री के नेतृत्व मे मन्त्रिपरिषद् राज्य का शासन चलाती है ।

आंध्रप्रदेश, बिहार, जम्मू-कश्मीर, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा पश्चिम-बगाल के विधानमण्डल में दो-दो सदन है । बाकी राज्यो के विधानमण्डल एक सदनवाले है । उपर्युक्त ६ राज्यो के दूसरे सदन को विधान-परिषद् कहते है । पहले सदन को विधान-सभा कहते है ।

राज्यों मे विधान-सभा के लिए चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है । विधान-सभा के सदस्यों की कुल संख्या ५०० से अधिक तथा ६० से कम नहीं होनी चाहिए । विधान-परिषद् एक स्थायी निकाय है, जिसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण कर लेते



राष्ट्रीय झंडा

है। विधान-परिषद् के लिए एक-तिहाई सदस्यो का चुनाव राज्य की विधान-सभा करती है तथा बाकी सदस्यो का चुनाव नगरपालिकाए, जिला-बोर्डो के सदस्य तथा रजिस्टर-शुदा अध्यापक और स्नातक करते है।

जम्मू-कश्मीर के मामले में ससद् को सघीय सूची और समवर्ती सूची के केवल उन्ही विषयो पर कानून बनाने का अधिकार है, जिनके बारे मे राष्ट्रपति, राज्य की सरकार से सलाह-मशविरा करके, यह घोषित कर दे कि वे 'प्रवेश विलेख' (इस्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन) में निर्दिष्ट बातो के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त, इन सूचियो के उन विषयो पर भी ससद् कानून बना सकती है, जिनके बारे में राज्य-सरकार तथा भारत-सरकार परस्पर-सहमति प्रकट करे। सविधान (जम्मू-कश्मीर आदेश, १९५४ का कार्यान्वियन) के अन्तर्गत, समुचित परिवर्तनो के साथ भारतीय सविधान के खण्ड १, २, ३, ५ तथा ११ से २२ जम्मू-कश्मीर पर भी लागू होते है। देश के अन्य भागो की तरह अब जम्मू-कश्मीर राज्य भी सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के न्यायाधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है। केन्द्र तथा जम्मू-कश्मीर राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्ध तथा कर-निर्धारण की व्यवस्था वैसी ही है, जैसी केन्द्र तथा अन्य राज्य-सरकारो के बीच।

भारत के सविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि देश के पिछडे वर्गों को कुछ सरक्षण प्रदान किए गए है। उदाहरण के लिए, ससद् तथा राज्यो के विधानमण्डल मे उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे गए हैं तथा उन्हे सरकारी नौकरी मे प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षा की भी पर्याप्त सुविधाए उन्हें प्राप्त है।

सन् १९५० मे सविधान लागू हुआ था। तब से अब तक उसमे ९ बार सशोधन किया जा चुका है। अन्तिम सशोधन बम्बई राज्य का विभाजन करके महाराष्ट्र और गुजरात नामक दो राज्य बनाने के निमित्त किया गया।

राष्ट्र के प्रतीक

राष्ट्रीय चिह्न

भारत का राष्ट्रीय चिह्न उस सिंह-स्तम्भ की अनुकृति है, जिसकी स्थापना सम्राट् अशोक ने सारनाथ मे की थी। इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यो को सर्वप्रथम अष्टाग-मार्ग की दीक्षा दी थी। भारत के राष्ट्रीय चिह्न मे तीन सिंह (चौथा सिंह दृष्टिगोचर नही होता) एक चौकोर पत्थर पर एक-दूसरे की ओर पीठ किए बैठे है और पत्थर पर धर्मचक्र बना हुआ है। राष्ट्रीय चिह्न के नीचे देवनागरी लिपि मे मुण्डकोपनिषद् का सूत्र 'सत्यमेव जयते' अंकित है, जिसका अर्थ होना है—'सत्य की ही विजय होती है।'

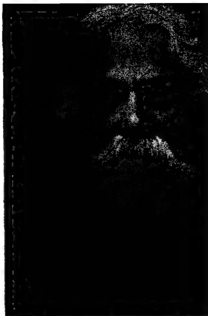
राष्ट्रीय झंडा

भारत का राष्ट्रीय झडा तीन बराबर आयताकार पट्टियों से बना है तथा तिरगा है। ऊपर की पट्टी केसरिया रग की, बीच की पट्टी सफेद रग की तथा नीचे की पट्टी गहरे हरे रंग की है। झडे के बीच की सफेद पट्टी पर सारनाथ के सिंह-स्तम्भवाले धर्मचक्र की अनुकृति है। यह धर्मचक्र झडे के दोनो ओर बना हुआ है और इसकी चौडाई श्वेत पट्टी-जितनी है। इस चक्र मे २४ आरे है और इसका रग गाढा नीला है।

तिरगे झडे का इतिहास सन् १९२१ से आरम्भ होता है। इसी वर्ष बेजवाडा (वर्तमान विजयवाडा) मे अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति की एक बैठक हुई थी, जिसमे एक आंध्रवासी युवक ने महात्मा गांधी को एक झडा भेंट किया था। उस झडे में केवल दो रग थे—लाल और हरा। ये दोनो रग भारत के दो प्रमुख सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करते थे। तब महात्मा गांधी ने सुझाव दिया था कि भारत के शेष सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सफेद पट्टी तथा प्रगति का सूचक चर्खा भी इसमे जोड़ दिया जाए।

२२ जुलाई, १९४७ को संविधान-सभा ने इस तिरगे झडे को भारत का राष्ट्रीय झडा अंगीकार कर लिया, किन्तु चर्खे के स्थान पर अशोक

का धर्मचक्र रख दिया। उस समय प्रधान मन्त्री ने कहा था—"यह धर्मचक्र भारत की प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है।"



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत के उपराष्ट्रपति तथा प्रसिद्ध दार्शनिक, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने झंडे के इन रंगो का दार्शनिक विवेचन किया है। उनके अनुसार, केसरिया रंग त्याग अथवा निस्पृहता का प्रतीक है। बीच का सफेद रंग प्रकाश है, जो सत्य का मार्ग है और आचरण के क्षेत्र में हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। हरा रंग भूमि के प्रति हमारे सम्बन्ध का सूचक है, अर्थात् इस भूतल पर वनस्पति-जगत् के साथ हमारे सम्बन्ध का सूचक है, जिस पर सभी प्राणियों का जीवन निर्भर करता है। बीच में जो चक्र है, वह धर्म-शासन का है और शक्ति के साथ-साथ शांतिपूर्ण परिवर्तन का भी प्रतीक है।

राष्ट्रीय गीत

भारत की संविधान-सभा ने २४ जनवरी, १६५० को कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर-द्वारा रचित गीत 'जन-गण-मन' को राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकार किया।

महात्मा गांधी ने 'जन-गण-मन' को एक 'भक्तिपरक स्तोत्र' की संज्ञा दी थी। यह गीत सर्वप्रथम जनवरी १६१२ में 'तत्वबोधिनी पत्रिका' में प्रकाशित हुआ था, जिसका सम्पादन स्वयं कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर करते थे। इससे पूर्व यह गीत २७ दिसम्बर, १६११ को कांग्रेस

के अधिवेशन मे गाया गया था। कवि ने स्वय सन् १९१९ मे 'दि मारनिग साग आफ इण्डिया' शीर्षक से इसका अंग्रेजी-रूपान्तर भी किया था।

संविधान-सभा ने यह भी निर्णय किया कि श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी-लिखित 'वंदेमातरम्' को भी राष्ट्रीय गीत के ही समान दर्जा दिया जाए। स्वतंत्रता-संग्राम मे 'वंदेमातरम्' जन-जन का प्रेरणा-स्रोत था। वास्तव मे, यह बंकिमचन्द्र चटर्जी के सन् १८८२ मे प्रकाशित 'आनन्द-मठ' नामक उपन्यास मे छपा था। राजनीतिक मच मे यह गाना सर्वप्रथम सन् १८९६ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन मे गाया गया था और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसकी संगीत-रचना की थी।

अध्याय ४

न्यायपालिका

सर्वोच्च न्यायालय

भारत-भर मे एक स्वतंत्र तथा सुसगठित न्याय-प्रणाली लागू है। भारतीय न्यायपालिका की सर्वोपरि सत्ता सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) है, जिसमे एक मुख्य न्यायाधिपति (चीफ जस्टिस) तथा अधिक-से-अधिक दस अन्य न्यायाधीश (जज) होते है।

सर्वोच्च न्यायालय आम तौर पर नई दिल्ली मे बैठता है। सविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को दूसरे सभी न्यायालयो और न्याया-धिकरणो (ट्रिब्यूनलो) के मुकाबले अधिक अपीली अधिकार प्रदान किए है तथा देश मे उच्चतम न्यायिक सगठन के रूप मे इसकी स्थिति को अधिक सुदृढ बनाने के उद्देश्य से उच्च न्यायालयो (हाई कोर्टो) को तथा इन न्यायालयो मे न्यायाधीश नियुक्त करने तथा उनको पद से हटाने का अधिकार भी केन्द्र को सौप दिया है। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय का वास्तविक गौरव इस बात मे है कि वह सविधान का सरक्षक है तथा सविधान की जो व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय करेगा, वही प्रामाणिक और मान्य होगी। इस हैसियत से सर्वोच्च न्यायालय का कर्तव्य न केवल केन्द्र तथा राज्यो के विवादो का न्यायपूर्वक निर्णय करना है, बल्कि वह भारत के नागरिको की स्वतत्रता का रक्षक भी है।

मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। अन्य न्याया-धीशो की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करता है, किन्तु उनकी नियुक्ति मे पहले राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति का परामर्श ले लेना है। मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधीशो का कार्यकाल ६५ वर्ष की अवस्था तक होता है।

जहा तक सर्वोच्च न्यायालय के सविधान की व्याख्या करने के अधिकारो का सम्बन्ध है, भारत के सविधान ने अमेरिकी प्रणाली तथा

अंग्रेजी प्रणाली के बीच का मार्ग अपनाया है। सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि देश मे न्याय की समुचित व्यवस्था हो रही है तथा किसी भी नागरिक को न्याय से वंचित नही रखा जाता। सर्वोच्च न्यायालय जो भी कानून बनाएगा, भारत की सीमा मे स्थित प्रत्येक न्यायालय को उसका पालन करना होगा।

सर्वोच्च न्यायालय को सीधे मुकदमे लेने तथा अपील सुनने का भी अधिकार है। वह किसी राज्य अथवा राज्यो और भारत-सरकार के बीच अथवा राज्यो के बीच के परस्पर-विवादो की सुनवाई कर सकता है। मूल अधिकारो का पालन करवाना भी सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र मे है। दूसरे शब्दो मे, भारत का कोई भी नागरिक अपने मूल अधिकारो की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय को कुछ आज्ञापत्र, जिन्हे सविधान की भाषा मे 'लेख' या 'रिट' कहते है, जारी करने का भी अधिकार दिया गया है। ये लेख है बन्दी-प्रत्यक्षीकरण लेख, परमादेश लेख, प्रतिषेध लेख, अधिकार-पृच्छा लेख, तथा उत्प्रेषण लेख। उच्च न्यायालयो-द्वारा सुनवाई किए गए ऐसे किसी भी मामले के सम्बन्ध मे सर्वोच्च न्यायालय अपील सुन सकता है, जिसमे सविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई प्रश्न उठ खडा हुआ हो। सर्वोच्च न्यायालय कुछ दीवानी मामलों मे भी अपील सुन सकता है, बशर्तेकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मामला विवादास्पद है, या दावे की रकम बीस हजार से कम नही है, या यह कि इस मामले की अपील सर्वोच्च न्यायालय मे की जा सकती है। फौजदारी मामलो मे भी केवल उसी दशा मे सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की जा सकती है, यदि उच्च न्यायालय ने (१) किसी अपील मे किसी अभियुक्त को मुक्त करने का आदेश रद्द करके उसे मृत्यु-दण्ड सुना दिया हो, या (२) अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय से किसी मामले को अपने हाथ मे ले लिया हो और ऐसे मुकदमे मे अभियुक्त को अपराधी करार देकर उसे मृत्यु-दण्ड सुना दिया हो, या (३) सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिए किसी मामले को प्रमाणित कर दिया हो।

इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय परामर्श देने का भी कर्तव्य

निभाता है । राष्ट्रपति किसी भी कानूनी प्रश्न को या सार्वजनिक महत्व के किसी भी मामले को सर्वोच्च न्यायालय के पास उसकी सलाह के लिए भेज सकता है।

संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय अपना प्रत्येक निर्णय खुली अदालत में देगा तथा किसी भी मामले की सुनवाई के समय उपस्थित न्यायाधीशों की बहुसंख्या का एकमत होना नितान्त आवश्यक है। यदि किसी मामले में किसी न्यायाधीश का अपने सहयोगियों से मतभेद हो, तो वह विपरीत मत भी व्यक्त कर सकता है।

उच्च न्यायालय

प्रत्येक राज्य के न्याय-प्रशासन में सबसे ऊपर एक उच्च न्यायालय होता है । राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् इस समय देश में १४ उच्च न्यायालय हैं। नए गुजरात राज्य के लिए उच्च न्यायालय बनाने की भी व्यवस्था की गई है। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है । अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करने से पहले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का भी परामर्श लिया जाता है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश साठ वर्ष की अवस्था तक अपने पद पर रहते हैं ।

राज्य के विधानमण्डल को उच्च न्यायालयों की रचना तथा संगठन में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं है । यह अधिकार संसद् में निहित है। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने का अधिकार भी संसद् को ही प्राप्त है ।

उच्च न्यायालयों को (१) मूल अधिकार लागू करवाने के लिए लेख (रिट) जारी करने, (२) राज्य के समस्त न्यायालयों पर निगरानी रखने (किन्तु इनमें वे न्यायालय शामिल नहीं है, जिनकी रचना सशस्त्र सेनाओं से सम्बन्धित किसी कानून-द्वारा या उसके अन्तर्गत की गई हो); तथा (३) अधीनस्थ न्यायालयों से वे मामले अपने हाथ में ले लेने का अधिकार है, जिनमें संविधान की व्याख्या का प्रश्न उठ खड़ा हुआ हो।

अधीनस्थ न्यायालय

कुछ स्थानीय विभिन्नता के अलावा, अधीनस्थ न्यायालयो का ढाचा और उनके कर्तव्य देश-भर मे न्यूनाधिक समान है। प्रत्येक राज्य कई जिलो मे बटा होता है और प्रत्येक जिला प्रमुख दीवानी अदालत के न्यायाधिकार-क्षेत्र मे होता है, जिसकी अध्यक्षता जिला-न्यायाधीश (डिस्ट्रिक्ट जज) करता है। उसके नीचे दीवानी न्यायाधिकारियों के विभिन्न वर्ग होते है।

जिला-न्यायाधीशो की नियुक्ति सम्बन्धित उच्च न्यायालय के साथ परामर्श करके राज्य का राज्यपाल करता है। जिला-न्यायाधीशों की तरक्की तथा उनको कहा-कहा नियुक्त किया जाए, ये सब बाते भी उच्च न्यायालय के परामर्श से ही तय की जाती है। राज्य की न्याय-सेवा मे जिला-न्यायाधीशो को छोड कर अन्य व्यक्तियो की नियुक्ति विहित नियमो के अनुसार राज्यपाल-द्वारा की जाती है तथा इस कार्य मे राज्यपाल राज्य के लोक-सेवा-आयोग और उच्च न्यायालय का परामर्श लेता है।

'भूमि-अधिग्रहण-अधिनियम' तथा 'वन-अधिनियम' के अन्तर्गत जो मामले आते है, उनके बारे मे विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों या न्यायाधिकरणो के निर्णय के विरुद्ध अपील उपयुक्त दीवानी अदालतो मे की जा सकती है।

जो अधिकारी जिला-न्यायालय मे दीवानी मुकदमो की सुनवाई करता है, वही उस जिले मे फौजदारी मुकदमे सुनने के लिए सेशन डिवीजन का भी न्यायाधीश होता है। सेशन कोर्ट आम तौर पर गम्भीर अपराधो पर विचार करती है और केवल उसी दशा मे कोई मामला अपने हाथ मे लेती है, जब मजिस्ट्रेट प्रारम्भिक जाच-पडताल करके किसी मामले को सेशन के सुपुर्द कर दे। सेशन कोर्ट मे ज्यूरी की भी व्यवस्था है।

कुछ मामलो मे निवारक न्यायाधिकार का प्रयोग करने तथा सेशन कोर्ट मे सुने जानेवाले अपराधो के मुकदमो को छोड कर बाकी अपराधो की सुनवाई करने का काम विभिन्न वर्गों के मजिस्ट्रेटो के सुपुर्द किया

जाता है तथा जिला-मजिस्ट्रेट उन पर सामान्य निरीक्षण और नियत्रण रखता है ।

गावो मे छोटे-मोटे दीवानी और फौजदारी मामलो की सुनवाई न्याय-पचायते करती है ।

देश मे आधारभूत फौजदारी कानून 'भारतीय दण्ड-सहिता' है, जिसकी रचना लार्ड मैकाले ने की थी । व्यक्तिगत कानून धार्मिक विशेषाज्ञाओ तथा देश के विभिन्न भागो मे प्रचलित परम्परागत प्रथाओ-द्वारा भी शासित है । इसी प्रकार, दीवानी कानून पर भी कुछ तो दण्ड-सहिता लागू होती है तथा कुछ प्रथागत है । हाल के वर्षो मे कानून मे कुछ महत्वपूर्ण सुधार हुए है, जिनका मुख्य ध्येय देश मे कुछ वर्णो या जातियो की असमर्थताओ को दूर करना तथा स्त्रियो की स्थिति को ऊचा उठाना है ।

न्यायपालिका की स्वतत्रता

न्यायपालिका को एक स्वतन्त्र हैसियत देने के लिए भारतीय सविधान मे निदेशक सिद्धान्तो के अलावा कुछ विशेष व्यवस्थाए भी है । सर्वोच्च न्यायालय की स्वतत्रता बनाए रखने के उद्देश्य से भारत के मुख्य न्यायाधिपति को सर्वोच्च न्यायालय मे कर्मचारी नियुक्त करने तथा उनकी सेवा की दशाओ के बारे मे नियम, आदि बनाने का भी अधिकार दिया गया है । सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासन-सम्बन्धी व्यय की व्यवस्था, जिनमे न्यायालय के अधिकारियो तथा अन्य कर्मचारियो के वेतन भत्ते तथा पेंशन, आदि भी शामिल है, भारत की 'समेकित निधि' मे से की जाती है तथा न्यायालय जो फीस या शुल्क तथा अन्य धन लेता है, वह भी उसी निधि मे जमा किया जाता है। सविधान मे यह भी कहा गया है कि सेवा-निवृत्त होने के बाद न्यायाधीश निचली अदालतो मे वकालत नही कर सकते । उच्च न्यायालयो की स्वतत्रता को अक्षुण्ण बनाने के लिए भी सविधान मे इसी प्रकार के कुछ सरक्षणो की व्यवस्था है ।

सविधान के 'निदेशक सिद्धान्तो' के अनुसार विभिन्न राज्यो मे न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया गया है।

विधि-आयोग

न्याय-प्रणाली की समीक्षा करने, उसमे सुधार की सम्भावनाएं बनाने और न्याय को शीघ्रतापूर्ण और कम खर्चीला बनाने के लिए सुझाव देने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने ५ अगस्त, १९५५ को भारत के महान्यायवादी (एटर्नी-जनरल) श्री एम० सी० सीतलवाद की अध्यक्षता में एक विधि-आयोग की स्थापना की थी। आयोग से कहा गया था कि वह विभिन्न कानूनो तथा केन्द्र के महत्वपूर्ण और सामान्य रूप से लागू होनेवाले अधिनियमो की परीक्षा करके उनमे सशोधन-परिवर्द्धन करने के लिए सुझाव दे।

विधि-आयोग ने १६ सितम्बर, १९५५ मे अपना कार्य आरम्भ किया। इसे दो भागो मे विभक्त कर दिया गया था। एक विभाग ने न्याय-प्रशासन मे सुधार से सम्बन्धित कार्य सम्भाला तथा दूसरे विभाग ने अनुविहित कानूनो के पुनरीक्षण का कार्य हाथ मे लिया। न्याय-प्रशासन मे सुधार-सम्बन्धी कार्य पूरा करके विधि-आयोग ने ३० सितम्बर, १९५८ को अपनी रिपोर्ट पेश की, जिसे २५ फरवरी, १९५९ को ससद् मे पेश किया गया। आयोग की सिफारिशे विचाराधीन हैं।

अनुविहित कानूनो के पुनरीक्षण का काम जारी रखने के लिए २० दिसम्बर, १९५८ को आयोग का पुनर्गठन किया गया। केन्द्र के सामान्य तथा महत्वपूर्ण अधिनियमो की परीक्षा करना, उनमे परिवर्तन करने के लिए उपाय सुझाना, आदि आयोग के विचारणीय विषय है।

अध्याय ५

राज्यों का पुनर्गठन

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने अनेक क्षेत्रो में बडी महत्वपूर्ण सफलताए प्राप्त की। इनमे से राज्यो का एकीकरण और पुनर्गठन एक ऐसी सफलता थी, जिसकी बराबरी करनेवाले उदाहरण इतिहास मे बहुत कम मिलेंगे।

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत देश मे १६ प्रात तथा राजा-महाराजाओ और नवाबो की ५५० रियासते थी। इन रियासतों मे बडी विभिन्नता थी। आकार मे वे बराबर नही थी—उनका क्षेत्रफल एक वर्गमील से लेकर अस्सी हजार वर्गमील तक था। आर्थिक साधनो और विकास की दृष्टि से भी उनमें बडी असमानता थी। अग्रेजो का नियंत्रण भी किसी रियासत पर अधिक, तो किसी पर कम था। इतना ही नही, अग्रेजो के सीधे शासन के अन्तर्गत जो प्रान्त थे, उनकी भी रचना का आधार न तो ऐतिहासिक था और न प्रशासनिक सुविधा। उनकी रचना मुख्यत सैनिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक दृष्टियो से की गई थी।

शुरू से ही हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की यह मान्यता थी कि 'ब्रिटिश' भारत तथा 'भारतीय' भारत (यानी देशी रियासते) के रूप मे भारत का पृथक्करण सर्वथा कृत्रिम है। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रान्तो की सीमा जिन कारणो को प्रमुख मान कर निश्चित की गई थी, उनके विरुद्ध जनता मे असन्तोष दिन-दिन बढता जा रहा था। बग-भग के निश्चय से तो इसने बहुत ही उग्र रूप धारण किया। अत. सन् १६२० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि प्रान्तो का पुनर्गठन भाषा के आधार पर होना चाहिए।

सन १६४७ में भारत तथा पाकिस्तान को राजसत्ता सौप दी गई। इसके साथ ही 'देशी रियासतों' के राजा-महाराजाओ तथा नवाबो पर से भी ब्रिटिश प्रभुसत्ता समाप्त हो गई। कुछ शासको ने इसका अर्थ यह

लगाया कि वे अपने-अपने क्षेत्र मे सर्वप्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र शासक हो सकते है। परन्तु ऐतिहासिक आवश्यकताओ का तकाजा था कि वे या तो भारत के साथ या पाकिस्तान के साथ मिल जाती। इन रियासतो को भारतीय सघ मे मिलाने के उद्देश्य से 'विलय-अधिकारपत्र' की कल्पना की गई, जिसमे यह व्यवस्था थी कि ये रियासते भारतीय सघ मे शामिल होने के बाद अपने प्रतिरक्षा, विदेशी-सम्बन्ध तथा सचार-साधन-सम्बन्धी अधिकार केन्द्रीय सरकार को सौप देगी।

राजनीतिक दृष्टि से भारत की एकता के प्रमुख निर्माता थे तत्कालीन उप-प्रधान मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल, जिन्होने रियासतो को चेतावनी दी कि यदि देश मे राजनीतिक एकता स्थापित न हुई, तो देश-भर मे अराजकता और अव्यवस्था का बोलबाला हो जाएगा। सौभाग्य से रियासतो के शासको ने दूरदर्शिता और राजनीतिक जागरण का परिचय दिया तथा जनवरी १९४८ तक, अर्थात् आजादी मिलने के छ महीने के भीतर ही, हैदराबाद और जूनागढ को छोड कर भारत की सभी रियासते भारतीय सघ मे शामिल हो गई। जनवरी १९४९ मे जूनागढ भी नए सौराष्ट्र राज्य का अग बन गया, परन्तु दक्षिणी पठार के मध्य मे स्थित हैदराबाद रियासत विलय का निर्णय तत्काल न कर सकी। बात यह थी कि रियासत मे मुट्ठी-भर भारत-विरोधी रजाकार विप्लवकारी कार्यशील थे। उन्होने रियासत की जनता पर जुल्म ढाने शुरू किए, जिससे रियासत-भर मे भारी आतक छा गया। आखिर, मजबूर होकर, भारत-सरकार को पुलिस-कार्रवाई करनी पडी। फलत पाच दिनो के अन्दर ही रियासत मे सामान्य सावैधानिक स्थिति पुन स्थापित हो गई। अब निज़ाम हैदराबाद को स्वेच्छा से निर्णय करने का अवसर मिला और उन्होने भारत में मिलने का निर्णय किया।

जब सब रियासते राष्ट्रीय झडे के नीचे एकत्र हो गई, तब केन्द्रीय राज्य-मन्त्रालय ने राज्यो के ढाचे मे सुधार करने की योजना बनानी शुरू की। सबसे पहले आर्थिक और प्रशासनिक दृष्टि से समर्थ इकाइयो का एकीकरण किया गया। इसके लिए (क) कुछ रियासतो को निकटस्थ प्रान्तो के साथ मिला दिया गया, (ख) कुछ रियासतो को मिला कर उनके सघ

बना दिए गए, तथा (ग) बाकी रियासतो को केन्द्रीय सरकार के प्रशासन मे ले लिया गया। परन्तु जम्मू-कश्मीर, मैसूर तथा हैदराबाद रियासतो को पृथक् इकाइयो के रूप में ही रहने दिया गया।

इसके बाद इन रियासतो मे लोकतात्रिक सस्थाओ की स्थापना आरम्भ हुई। पहले एक या दो रियासतो को छोड़ कर बाकी सब रियासतो मे स्वेच्छाचारी शासक ही शासन करते थे। २६ जनवरी, १६५० के तुरन्त बाद, सब राज्यो मे लोकप्रिय सरकारे बनी, तथा पहले आम चुनावो मे राज्यो की जनता ने विभिन्न विधानमण्डलों मे अपने-अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे।

राज्यो मे असमानता

इस प्रकार, विभिन्न रियासतो का एकीकरण तो हो गया, परन्तु भारत की विभिन्न इकाइयो के समन्वित रूप से विकास की समस्या बाकी ही रह गई। अतएव भारत के सावैधानिक ढाचे मे इन इकाइयो को ठीक ढग से जमाने की खातिर सक्रमणकालीन उपाय करने पडे। इसमे ब्रिटिश शासनकाल के भारतीय प्रान्तो में जो असमानता पहले से ही विद्यमान थी, वह और भी बढ गई। इसी कारण २६ जनवरी, १६५० को लागू सविधान के अनुसार भारतीय सघ के राज्यो को तीन वर्गों मे बाटा गया — 'क' भाग के राज्य, 'ख' भाग के राज्य तथा 'ग' भाग के राज्य। 'क' भाग के ६ राज्यो में भूतपूर्व गवर्नरो-द्वारा शासित प्रान्त, 'ख' भाग के ८ राज्यो मे रियासतो के ५ संघ और जम्मू-कश्मीर, मैसूर और हैदराबाद रियासते, तथा 'ग' भाग के १० राज्यो मे भूतपूर्व केन्द्र-शासित क्षेत्र और रियासते शामिल की गई।

पुनर्गठन का आधार

इसी बीच यह माग जोर पकडने लगी कि राज्यो का पुनर्गठन किया जाए। अतः सविधान-सभा ने भाषावार प्रान्त-आयोग (धर-आयोग) की स्थापना की। काग्रेस ने भी तीन व्यक्तियो की एक समिति (जवाहरलाल-वल्लभभाई-पट्टाभि समिति) नियुक्त की। इन दोनो निकायों ने इस

समस्या का अध्ययन करके यह मत प्रकट किया कि किसी राज्य की सीमा निर्धारित करते समय भाषा ही नही, वरन् देश की सुरक्षा, एकता तथा आर्थिक समृद्धि का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। परन्तु तेलुगुभाषी जनता के लिए यह बात लागू न हो सकी और सन् १९५३ मे आध्र को एक अलग राज्य बना दिया गया।

परन्तु पहली पचवर्षीय योजना आरम्भ होने के साथ ही इस बात की आवश्यकता गम्भीरतापूर्वक अनुभव की जाने लगी कि देश मे सुदृढ तथा आर्थिक दृष्टि से समर्थ इकाइया बनाना नितान्त आवश्यक है। उधर, कुछ सघटन बराबर इस बात पर जोर देते आ रहे थे कि भाषा के आधार पर प्रान्तो का पुनर्गठन होना चाहिए। अब यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि राज्यो के पुनर्गठन मे अधिक विलम्ब हुआ, तो देश-भर मे असन्तोष की लहर फैल जाएगी। अतएव दिसम्बर १९५३ मे भारत-सरकार ने श्री फजल अली की अध्यक्षता मे एक राज्य-पुनर्गठन-आयोग की स्थापना की। श्री हृदयनाथ कुजरू तथा श्री के० एम० पणिक्कर इसके सदस्य थे। आयोग ने १,५२,२५२ ज्ञापनो का अध्ययन और १०४ स्थानो का दौरा किया तथा ९,००० से अधिक व्यक्तियो से बातचीत की। अन्तत सितम्बर १९५५ मे आयोग ने अपनी रिपोर्ट पेश की।

आयोग की रिपोर्ट मे राज्यो के पुनर्गठन की एक योजना रखी गई, जिसके अनुसार भारतीय सघ की सघटक इकाइयो को 'राज्यो' तथा 'क्षेत्रों' मे विभक्त करने का सुझाव दिया गया। इस सम्बन्ध मे आयोग ने भारत की एकता और सुरक्षा, भाषायी और सास्कृतिक एकरूपता, वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक सुदृढता तथा पचवर्षीय योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने की आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा।

इस राज्य-पुनर्गठन-आयोग ने निम्नलिखित राज्य बनाने का प्रस्ताव रखा असम, आध्र, उडीसा, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, केरल, जम्मू-कश्मीर, पजाब, पश्चिम-बगाल, बम्बई, बिहार, मद्रास, मध्यप्रदेश, राजस्थान, विदर्भ तथा हैदराबाद। इसके अतिरिक्त, आयोग ने अदमान और निकोबार द्वीपसमूह, दिल्ली तथा मणिपुर को केन्द्र-शासित क्षेत्र बनाने की सिफारिश की।

पुनर्गठन की नई योजना

आयोग की रिपोर्ट के विषय मे जनता के विचार जानने के उद्देश्य से सरकार ने १० अक्तूबर, १९५५ को उसे प्रकाशित कर दिया। लगभग १,२२,१५० ज्ञापन तथा अभ्यावेदन प्राप्त हुए एवं रिपोर्ट पर सभी राज्यो के विधानमण्डलो तथा लोकसभा और राज्यसभा में बहस हुई। १६ जनवरी, १९५६ को केन्द्रीय सरकार ने आयोग की अधिकाश सिफारिशो पर अपना निर्णय प्रकाशित कर दिया। कुछ मामलो मे ये निर्णय आयोग की सिफारिशो से भिन्न थे तथा सरकार ने पृथक् महाराष्ट्र (विदर्भ-सहित) और गुजरात राज्य बनाने तथा बम्बई नगर को केन्द्र-शासित क्षेत्र बनाने का प्रस्ताव किया। काफी विचार-विमर्श तथा बातचीत के बाद अन्तत बम्बई को द्विभाषी राज्य बनाने का निर्णय किया गया, जिसमे कच्छ, सौराष्ट्र, हैदराबाद और मध्यप्रदेश के मराठी-भाषी इलाके, तथा कन्नड-क्षेत्र को छोड कर भूतपूर्व सारा बम्बई राज्य शामिल करने का प्रस्ताव किया गया। हैदराबाद राज्य के तेलुगु-भाषी क्षेत्रों को आध्र मे मिला दिया गया। भारत-सरकार के निर्णयो को तीन विधेयको के रूप मे राज्यों के विधानमण्डलो के पास उनके विचार जानने के लिए भेजा गया। बाद मे ससद् ने उन पर विचार किया तथा कुछ सशोधनो के साथ सितम्बर १९५६ मे स्वीकार कर लिया।

पुनर्गठन की सारी योजना १ नवम्बर, १९५६ से लागू हुई, जो निम्नलिखित तीन अधिनियमो पर आधारित थी 'राज्य-पुनर्गठन-आयोग अधिनियम, १९५६', 'बिहार और पश्चिम-बगाल (क्षेत्रो का हस्तातरण) अधिनियम, १९५६', तथा 'सविधान (सातवा सशोधन) अधिनियम, १९५६'।

इनके अनुसार, भारतीय सघ में १४ राज्यो (असम, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, केरल, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, पश्चिम-बंगाल, बम्बई, बिहार, मद्रास, मध्यप्रदेश, मैसूर और राजस्थान) तथा ६ क्षेत्रो (अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह; दिल्ली, मणिपुर; लक्षद्वीप, मिनिकाय और अमीनदीवी द्वीपसमूह, हिमाचलप्रदेश तथा त्रिपुरा) का निर्माण किया

गया। देश की ६८ प्रतिशत से भी अधिक जनसख्या नए राज्यो के तथा २ प्रतिशत से कम जनसख्या क्षेत्रो के अन्तर्गत आई।

इस ढंग से राज्यो का पुनर्गठन करने से तीन लाभ हुए . एक तो राज्यो के क्षेत्रफल मे वद्धि हो गई, दूसरे 'क' भाग तथा 'ख' भाग के राज्यो के बीच का अन्तर मिट गया, और तीसरे, 'ग' भाग के राज्य समाप्त कर दिए गए। इस नई रूप-रचना की एक नवीन बात यह भी थी कि ५ क्षेत्रीय परिषदो की स्थापना कर दी गई।

लेकिन राज्यो का यह पुनर्गठन ही अन्तिम सिद्ध नही हुआ। बाद में बम्बई राज्य का विभाजन करके महाराष्ट्र और गुजरात नामक दो राज्य बनाने का निश्चय किया गया। इस उद्देश्य से २८ मार्च, १९६० को लोकसभा मे बम्बई-पुनर्गठन-विधेयक पेश किया गया, जो कालान्तर मे स्वीकृत हुआ। फलत अब भारतीय सघ मे १५ राज्य तथा ६ सघीय क्षेत्र हैं, जिनके क्षेत्रफल, जनसख्या, आदि का विवरण (अस्थायी) नीचे की तालिका मे दिया गया है :

तालिका-संख्या १

भारत के राज्य तथा संघीय क्षेत्र

राज्य/क्षेत्र	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या	राजधानी/ मुख्यालय
राज्य			
असम	८४,८९९	९०,४३,७०७	शिलाग
आध्रप्रदेश	१,०६,०५२	३,१२,६०,१३३	हैदराबाद
उडीसा	६०,१६२	१,४६,४५,९४६	भुवनेश्वर
उत्तरप्रदेश	१,१३,४५२	६,३२,१५,७४२	लखनऊ
केरल	१५,००३	१,३५,४९,११८	त्रिवेन्द्रम
गुजरात	(अनुपलब्ध)	१,६०,८८,४०७ (अनुमानित)	अहमदाबाद
जम्मू-कश्मीर	८६,०२४	४४,१०,०००	श्रीनगर

राज्य/क्षेत्र	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या	राजधानी/ मुख्यालय
पंजाब	४७,०८४	१,६१,३४,८९०	चंडीगढ़
पश्चिम-बंगाल	३३,९२८	२,६३,०२,३८६	कलकत्ता
बिहार	६७,१९८	३,८७,८३,७७८	पटना
मद्रास	५०,१३२	२,९९,७४,९३६	मद्रास
मध्यप्रदेश	१,७१,२१०	२,६०,७१,६३७	भोपाल
महाराष्ट्र	(अनुपलब्ध)	३,२१,७६,८१४ (अनुमानित)	बम्बई
मैसूर	७४,१२२	१,९४,०१,१९३	बंगलोर
राजस्थान	१,३२,१५०	१,५९,७०,७७४	जयपुर
संघीय क्षेत्र			
अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह	३,२१५	३०,९७१	पोर्ट ब्लेयर
दिल्ली	५७३	१७,४४,०७२	दिल्ली
मणिपुर	८,६२८	५,७७,६३५	इम्फाल
लक्षद्वीप, मिनि-काय और अमीनदीवी द्वीपसमूह	११	२१,०३५	कोज़ीकोड
हिमाचलप्रदेश	१०,८८०	११,०९,४६६	शिमला
त्रिपुरा	४,०३६	६,३९,०२९	अगरतला
कुल	१२,५९,७९७	३६,११,५१,६६९	

अल्पसंख्यकों के लिए सरक्षण

राज्य-पुनर्गठन-आयोग ने इस बात पर विशेष बल दिया था कि भारत की राष्ट्रीयता का वास्तविक आधार भारतीय संघ है, न कि

उसके संघटक राज्य। इस एकता को और भी सुदृढ़ करने के उद्देश्य से राज्य-पुनर्गठन-आयोग ने भाषायी अल्पसख्यकों के लिए कुछ सरक्षण देने का प्रस्ताव रखा था। सरकार ने उन्हे भी स्वीकार कर लिया। प्रारम्भिक स्तर पर मातृभाषा मे शिक्षा के अधिकार को सावैधानिक मान्यता प्रदान की गई है तथा राज्य-सरकारो को परामर्श दिया गया है कि वे कतिपय सरकारी कार्यों के लिए अल्पसख्यको की भाषाओ का प्रयोग करने की व्यवस्था करे तथा माध्यमिक शिक्षा और राज्य-सेवाओ में नियुक्ति के लिए भाषायी अल्पसख्यको को उदारतापूर्वक सुविधाए प्रदान करे। 'सविधान (सातवा सशोधन) अधिनियम, १९५६' मे भी भाषायी अल्पसख्यको के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त करने की व्यवस्था है। यह अधिकारी अल्पसख्यको को दिए गए सरक्षणो के सम्बन्ध मे रिपोर्ट दिया करेगा। इन रिपोर्टों को ससद् के दोनो सदनो मे रखा जाएगा तथा सम्बन्धित राज्य-सरकारो को भी इनसे अवगत कराया जाएगा। आयोग ने असैनिक सेवाओ तथा न्यायपालिका मे एकता तथा एकरूपता लाने के लिए भी कुछ सिफारिशे की थी।

अध्याय ६

आम चुनाव

भारत के नए सविधान ने प्रत्येक वयस्क अथवा बालिग व्यक्ति को मत देने का अधिकार प्रदान किया है। यह अधिकार लगभग १६ करोड भारतीयो को प्राप्त हुआ है और इनमे लगभग ४५ प्रतिशत स्त्रिया है। सन् १६५० मे गणतत्र बनने के बाद भारत मे दो आम चुनाव हो चुके है।

पहला आम चुनाव

पहला आम चुनाव अक्तूबर १६५१ तथा फरवरी १६५२ के बीच हुआ। इस चुनाव की विशालता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि राज्यसभा, लोकसभा, राज्यो की विधान-सभाओ तथा निर्वाचन-मण्डलो के लिए मतदाताओ को ४,०६६ प्रतिनिधि चुनने थे तथा ३,२६४ निर्वाचन-क्षेत्रो मे १,३२,५६० चुनाव-केन्द्र तथा उनमे १,६६,०८४ मतदान-केन्द्र थे। इनमे से २,४३८ एक-सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र थे, ६६४ निर्वाचन-क्षेत्रो ने दो-दो सदस्य चुने; तथा दो निर्वाचन-क्षेत्रो ने तीन-तीन सदस्यो का चुनाव किया। एक से अधिक सदस्यवाले स्थानो की कल्पना सविधान के उस उपबन्ध को कार्यरूप देने के उद्देश्य से की गई है, जिसके अनुसार अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित आदिम जातियो के लिए प्रत्येक राज्य मे उनकी जनसख्या के अनुपात मे स्थान सुरक्षित रखे जाने चाहिए।

पहले चुनाव में कुल १८,६१३ उम्मीदवारो ने चुनाव लडा, जिनमे से १,८७४ लोकसभा के लिए खडे हुए। संसद् के चुनावो में १० करोड ५६ लाख मत डाले गए। सूची मे दर्ज मतदाताओ में से लगभग ५१ प्रतिशत ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। तिरुवांकुर-कोचीन राज्य में तो यह प्रतिशत लगभग ७० ८ था। लोकसभा के ४६६ स्थानो

मे से काग्रेस-दल ने ३६४, किसान-मजदूर-प्रजा-दल ने ६, समाजवादी दल ने १२, साम्यवादी दल ने १६ तथा जनसघ ने ३ स्थान प्राप्त किए।

दूसरा चुनाव

दूसरा आम चुनाव ४ फरवरी, १६५७ तथा २६ मार्च, १६५७ के बीच हुआ। लगभग १६ करोड ३० लाख मतदाताओ को लोकसभा के ४६४ सदस्य तथा राज्यो की विधान-सभाओ के २,६०६ प्रतिनिधि चुनने थे।

२० मार्च, १६६० को लोकसभा मे राजनीतिक दलो की स्थिति इस प्रकार थी काग्रेस-दल—३६७, प्रजा-समाजवादी दल—१६, साम्यवादी दल—२७, जनसघ—३, अन्य दल—४१ तथा स्वतत्र—३६। ३१ दिसम्बर, १६५६ को राज्यो की विधान-सभाओ के कुल ३,१७४ स्थानो पर राजनीतिक दलो की स्थिति इस प्रकार थी काग्रेस-दल—२,०२१, प्रजा-समाजवादी दल—२१५, साम्यवादी दल—१४३, जन सघ—४७, अन्य दल तथा स्वतत्र—७३५। १३ स्थान रिक्त थे।

मतदान-केन्द्र का एक दृश्य



दूसरे आम चुनाव की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि लोक-सभा मे २७ तथा राज्यो की विधान-सभाओ मे १९५ महिलाए भी चुनी गई। केवल बिहार की विधान-सभा मे ही ३२ सदस्याए थी। पहले आम चुनाव मे ११५ महिलाए सफल हुई थी।

भारत मे चुनाव कराने का काम चुनाव-आयोग के जिम्मे है। यह आयोग कार्यपालिका से स्वतत्र है। भारत के चुनाव-सम्बन्धी कानून ऐसे है कि सरकार-द्वारा चुनावों मे हस्तक्षेप किए जाने या गैर-कानूनी दबाव डाले जाने की कोई आशंका नही है। चुनाव-सम्बन्धी जो विवाद उठते है, उनको चुनाव-न्यायाधिकरणो (इलेक्शन ट्रिब्यूनलो) के सामने रखा जाता है। सन् १९५२ के आम चुनाव के बाद चुनाव-न्यायाधिकरणो ने ३१४ चुनाव-याचिकाए (पेटीशने) सुनी, २७ उम्मीदवार भ्रष्ट आचरण के लिए दोषी पाए गए तथा न्यायाधिकरणो ने ७ सफल उम्मीद-वारो को अपदस्थ किया।

अध्याय ७

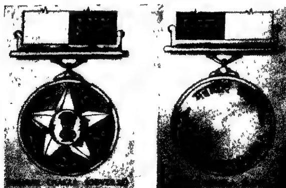
प्रतिरक्षा

भारत की घोषित नीति के अनुसार, भारतीय सशस्त्र सेनाओ का प्रमुख कर्तव्य बाहरी आक्रमणो तथा भीतरी तोड-फोड से देश की रक्षा करना है।

सशस्त्र सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति भारत का राष्ट्रपति है तथा सेनाओ का प्रशासन और उनके प्रयोग पर नियंत्रण रखने का दायित्व प्रतिरक्षा-मन्त्रालय तथा सेनाओ के तीन मुख्यालयो पर है।

स्थल-सेना

भारत की सशस्त्र सेनाओ में स्थल-सेना का बडा विशिष्ट स्थान है। इसे युद्ध-कौशल की वह परम्परा विरासत मे मिली है, जिसने दो विश्व-महायुद्धो मे महान् कीर्ति अर्जित की थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व



महावीर चक्र (सामने और पीछे का भाग)

भारतीय स्थल-सेना ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं का एक बड़ा महत्व-पूर्ण तथा बलिष्ठ अंग थी।

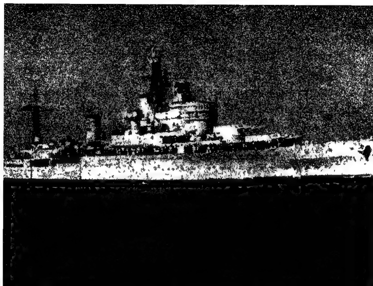
इधर स्वतंत्रता मिलने के साथ ही देश पर अनेक मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े। इनसे जूझने के लिए स्थल-सेना को भी मैदान में उतरना पड़ा। दूसरी ओर, भारत-विभाजन के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान, दोनों तरफ से शरणार्थियों का तांता बंध गया। स्थल-सेना ने भारत-पाकिस्तान-सीमा पर सुचारु रूप से शरणार्थियों के आने-जाने की व्यवस्था की। इतना ही नहीं, चूंकि विभाजन के बाद ब्रिटिश कर्मचारी स्वदेश लौट गए थे और पाकिस्तान जाने के इच्छुक अनेक सैनिक अधिकारी तथा जवान पाकिस्तान चले गए थे, इसलिए समस्त स्थल-सेना का पुनर्गठन करना पड़ा। निस्सन्देह, यह एक बड़ा भारी काम था।

अभी ये सब काम पूरे भी नहीं हो पाए थे कि सहसा जम्मू-कश्मीर रियासत पर पाकिस्तानी आक्रमणकारियों ने हमला बोल दिया। भारत की स्थल-सेना और वायु-सेना ने उन्हें मुहतोड़ जवाब दिया। कश्मीर के युद्ध में स्थल-सेना ने बहादुरी के जो जौहर दिखाए, वे सर्वविदित हैं। स्थल-सेना ने टैंकों में बर्फीले और दलदली रास्तों तथा ऊबड़-खाबड़ पर्वतों में मार्ग बना कर १२,००० फुट तक की ऊंचाई पर स्थित जोजीला दर्रे में युद्ध किया एवं आक्रमणकारियों के दांत खट्टे कर दिए।

स्थल-सेना की तीन कमानें हैं: दक्षिणी कमान, पूर्वी कमान तथा पश्चिमी कमान। प्रत्येक कमान का मुख्य अधिकारी लेफ्टिनेंट-जनरल के पद का एक जनरल अफसर कमांडिंग-इन-चीफ होता है।

जल-सेना

स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय भारतीय जल-सेना की स्थिति बहुत ही दुर्बल थी। वस्तुतः वह ब्रिटिश जल-सेना का एक अंग-मात्र थी। १४ अगस्त, १९४७ को यह छोटी-सी जल-सेना और घट गई। इसका करीब एक-तिहाई हिस्सा और तीन बड़े महत्वपूर्ण प्रशिक्षण-प्रतिष्ठान पाकिस्तान में चले गए। जो जल-सेना बाकी रह गई, वह भारत की लगभग साढ़े



भारतीय जल-सेना का जहाज 'दिल्ली'

तीन हजार मील लम्बी तट-सीमा की रक्षा करने के लिए सर्वथा अपर्याप्त थी।

भारत की जल-सेना ने अपने विस्तार-कार्यक्रम का पहला चरण पूरा कर लिया है। हमारे बेडे में इस समय 'आई०एन०एस० मैसूर' (८,७०० टन), 'आई०एन०एस०दिल्ली' (७,०३० टन) तथा अनेक विध्वंसक जहाज, जंगी जहाज और सुरंगें साफ करनेवाले जहाज हैं। इनके अतिरिक्त, एक वायुयान-वाही जहाज भी इसमें जोड़ा जा रहा है।

जल-सेनाध्यक्ष के अधीन ४ सकार्य और प्रशासनिक कमाने हैं।

वायु-सेना

सेना के तीनों अंगों में भारतीय वायु-सेना ही सबसे नई है। वायु-सेना ने अपनी रजत-जयन्ती सन् १९५८ में मनाई। भारत-विभाजन से, स्थल-सेना तथा जल-सेना की भांति ही, वायु-सेना पर भी बडा बुरा असर पडा। भारत में शाही वायु-सेना (रायल एयर फोर्स) की यूनिटों

के चले जाने से, जिसके कर्मचारी अंग्रेज थे, अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। इसके अतिरिक्त, वायु-सेना के अधिकाश स्थायी केन्द्र भी, जो उत्तर-पश्चिम-भारत मे स्थित थे, विभाजन के बाद पाकिस्तान के हिस्से मे चले गए।

सन् १९४७ मे पश्चिम-पाकिस्तान से शरणार्थियो को निकाल कर लाने मे भारतीय उडाको ने स्थल-सेना का हाथ बटाया। इसी बीच, जम्मू-कश्मीर में युद्ध का बिगुल बज उठा और उडान की प्रतिकूल दशाओ तथा पर्वतीय प्रदेश की कठिनाइयो के बावजूद, भारतीय वायु-सेना ने बडी बहादुरी से इन मुसीबतो का सामना किया। घिरे हुए अकेले पूँछ नगर मे से ही उसने लगभग ३५,००० शरणार्थियो को निकाल कर सुरक्षित स्थानो पर पहुचाया। लेह की ओर उडान भरते हुए डकोटा विमानो को २०,००० फुट और कभी-कभी इससे भी अधिक ऊंचाई पर उडना पडा।

भारतीय वायु-सेना के कुछ जवान



इसके अतिरिक्त, भारतीय वायु-सेना ने दैवी विपत्तियों में भी कई बार जनता की बड़ी सहायता की। असम, उडीसा, पश्चिम-बंगाल, पंजाब, दिल्ली तथा श्रीलंका में बाढ-पीड़ितों के लिए सामान पहुंचा कर भी वायु-सेना ने बड़ी कीर्ति अर्जित की।

वायु-सेना के मुख्यालय के अन्तर्गत ३ मुख्य कमानें हैं सकार्य (आपरेशनल) कमान, प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) कमान तथा संधारण (मेण्टेनेन्स) कमान, जो क्रमश पालम, बंगलोर और कानपुर में स्थित हैं।

शान्ति-स्थापना में सेनाओं का योगदान

विगत कुछ वर्षों में भारत की प्रतिरक्षा-सेनाओं को देश से बाहर भी कई असामान्य कार्यों के लिए जाना पड़ा।

सबसे पहले हमारी सेनाएं कोरिया गई। कोरिया में बन्दियों को लौटाने के लिए निष्पक्ष राष्ट्रों का जो आयोग बना, भारत उसका अध्यक्ष बनाया गया। भारत ने इस आयोग के प्रस्तावों को कार्यान्वित करवाने के लिए अभिरक्षक (कस्टोडियन) सेना भी भेजी। कोरिया में भारतीय अधिकारियों और जवानों ने बड़ी योग्यतापूर्वक अपना कर्तव्य निभाया। २० जुलाई, १९५४ को जेनेवा में सम्पन्न युद्ध-विराम-समझौते के अन्तर्गत स्थापित 'वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया में अधीक्षण और नियंत्रण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आयोग' का अध्यक्ष बनने के लिए भी भारत को निमंत्रण मिला। सितम्बर १९५४ में लगभग ६०० अधिकारी तथा जवान हिन्दचीन गए। यह काम अभी तक जारी है। मिस्र में स्वेज-नहर-क्षेत्र से जब ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनाएं हटीं, तब संयुक्त राष्ट्र-संघ की आपतकालीन सेना में भारतीय सेना भी सम्मिलित की गई। इसके अतिरिक्त, भारतीय सेना ने सन् १९५८ में लेबनान में भी संयुक्त राष्ट्र-संघ के पर्यवेक्षक-दल में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। अभी कांगो के उपद्रवों को शान्त करने में भारतीय सेनाएं बड़ी प्रशंसनीय भूमिका निभा रही हैं।

प्रशिक्षण

भारत की स्थल तथा वायु-सेनाएं प्रशिक्षण के क्षेत्र में स्वावलम्बी हैं। भारतीय जल-सेना भी इस दिशा में स्वावलम्बी बनने के लिए प्रयत्नशील है।

सैनिक अधिकारियो को प्रशिक्षण देने के लिए सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र पूना के निकट खडकवासला मे राष्ट्रीय प्रतिरक्षा-अकादेमी (नेशनल डिफेन्स अकादेमी) है, जहा कैडेटो को तीन साल तक सयुक्त प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके बाद विशिष्ट प्रशिक्षण पाने के लिए वे अपनी-अपनी सेना के कालेजो मे जाते हैं। आशा है कि उपर्युक्त अकादेमी में शीघ्र ही १,५०० कैडेटो को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था हो जाएगी। अन्तर्सेवा के आधार पर वर्तमान अधिकारियो को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था वेलिंगटन (मद्रास राज्य) के प्रतिरक्षा-सेवा-कर्मचारी-कालेज (डिफेन्स सर्विसेज स्टाफ कालेज) मे है। खडकवासला अकादेमी के स्थल-सेना के कैडेट देहरादून के सेना-कालेज (मिलिटरी कालेज) मे जाया करेगे, जहा उन्हे कमीशन देने से पहले एक वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाएगा। वायु-सेना के लिए दो कालेज हैं एक बेगमपेट (हैदराबाद) मे तथा दूसरा जोधपुर मे। जल-सेना के सभी अधिकारियो तथा जवानो को कोचीन, बम्बई तथा विशाखापत्तनम् के केन्द्रो मे प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस वर्ष (सन् १६६० मे) नई दिल्ली मे एक राष्ट्रीय प्रतिरक्षा-कालेज की स्थापना की गई है, जहा स्थल, जल तथा वायु-सेना के वरिष्ठ अधिकारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

भारत ने प्रतिरक्षा-सम्बन्धी साज-सामान मे स्वावलम्बी बनने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। इस काम की देख-रेख 'प्रतिरक्षा-उत्पादन बोर्ड' करता है। हाल ही मे एक 'अनुसधान और विकास-विभाग' की भी स्थापना की गई है। 'प्रतिरक्षा-विज्ञान-सघटन' इसी विभाग का एक अग है।



कवायद करते हुए क्षेत्रीय सेना के कुछ जवान

क्षेत्रीय सेना

भारत मे एक क्षेत्रीय सेना भी है, जिसमे तोपखाना, पदाति तथा इजीनियरी, सिग्नल, चिकित्सा तथा मेकैनिकल यूनिटे है। क्षेत्रीय सेना नियमित सेनाओ की सहायता करने के लिए तैयार की गई है और सकटकालीन परिस्थितियो मे वह आन्तरिक सुरक्षा का कार्य सम्भाला करेगी। देश मे एक 'लोक-सहायक-सेना' भी है। लोक-सहायक-सेना ने पाच वर्षों मे करीब ५ लाख लोगो को सैनिक प्रशिक्षण देने की योजना बनाई है। राष्ट्रीय सैन्य-शिक्षार्थी दल (नेशनल कैडेट कोर) की रचना देश मे नेतृत्व और अनुशासन की भावना का विकास करने के उद्देश्य से की गई है। १ जनवरी, १६६० को इस दल मे २,४०,६६३ सैन्य-शिक्षार्थी थे। सहायक सैन्य-शिक्षार्थी दल छात्र-छात्राओ को सैनिक प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से बनाया गया है। सन् १६५६ के अन्त मे इसमें ६,२०,२५२ सैन्य-शिक्षार्थी थे ।

अध्याय १

आर्थिक ढांचा

भारत की अर्थ-व्यवस्था कृषिप्रधान है। देश की लगभग आधी राष्ट्रीय आय कृषि से ही प्राप्त होती है। अनुमान है कि कृषि तथा इससे सम्बद्ध व्यवसायों में लगभग तीन-चौथाई श्रमिक काम करते हैं। सन् १९४८-४९ में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय २४६.९ रु० थी, जो सन् १९५६-५७ में बढ़ कर २९१.४ रु० हो गई। राष्ट्रीय योजना का ध्येय ही यह है कि देश में विकास की गति को तेज करने के साथ-साथ कृषि-उपज में भी वृद्धि की जाए। पिछले कुछ वर्षों से शुद्ध पूंजी-विनियोग में भी वृद्धि हो रही है। परन्तु इसके बावजूद सन् १९५५-५६ में यह पूंजी-विनियोग राष्ट्रीय आय का केवल ७.३ प्रतिशत ही था।

राष्ट्रीय आय का विधिवत् निर्धारण तथा समाज के विभिन्न वर्गों में इसका वितरण करने का प्रयास स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ही आरम्भ हुआ। इसकी आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई कि वैज्ञानिक कर-प्रणाली तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों की रचना के लिए ऐसा करना आवश्यक था। अगस्त १९४९ में 'राष्ट्रीय आय-समिति' नियुक्त की गई थी, जिसकी पहली रिपोर्ट अप्रैल १९५१ में तथा अन्तिम रिपोर्ट फरवरी १९५४ में प्रकाशित की गई।

योजना से पहले की अवधि

अगले पृष्ठ की तालिका में चालू तथा स्थिर मूल्यों के अनुसार योजना से पहले की (सन १९४८-४९ से १९५०-५१ तक की) अवधि में भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति वार्षिक आय का विवरण दिया गया है :

तालिका-संख्या २

राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय

वर्ष	राष्ट्रीय आय		प्रति व्यक्ति आय	
	चालू मूल्यों के अनुसार (करोड़ रु०)	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार (करोड़ रु०)	चालू मूल्यों के अनुसार (रु०)	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार (रु०)
१९४८-४९	८,६५०	८,६५०	२४६ ९	२४६ ९
१९४९-५०	९,०१०	८,८२०	२५३ ९	२४८ ६
१९५०-५१	९,५३०	८,८५०	२६५ २	२४६ ३

इन आकडो मे स्पष्ट है कि यद्यपि प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय के नाममात्र मूल्यो मे (कीमतो के स्तर की गति को हिसाब मे न लेते हुए) सन् १९४८-४९ तथा सन् १९५०-५१ की अवधि मे क्रमश ७ और १० प्रतिशत की वृद्धि हुई, तथापि इनके वास्तविक मूल्य (मुद्रा के मूल्य मे परिवर्तन को हिसाब मे लेते हुए) न्यूनाधिक स्थिर रहे।

सन् १९५१ के बाद

अप्रैल १९५१ मे पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के साथ, कई दशाब्दियो के पश्चात् पहली बार राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। सन् १९५१-५२ मे स्थिर मूल्यो (मूल्यो के स्तर में परिवर्तनो को हिसाब न लेते हुए) तथा चालू मूल्यो (मूल्यो में परिवर्तनो को हिसाब मे लेते हुए) के अनुसार राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय का विवरण इस प्रकार है

तालिका-संख्या ३

राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय (१९५७-५८ तक)

वर्ष	चालू मूल्यों के अनुसार राष्ट्रीय आय करोड (रु०)	चालू मूल्यों के अनुसार प्रति व्यक्ति आय (रु०)	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार राष्ट्रीय आय (करोड रु०)	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार प्रति व्यक्ति आय (रु०)
१९५०-५१	९,५३०	२६४.०	९,१००	२५०.१
१९५२-५३	९,८२०	२६६.४	९,४६०	२५६.६
१९५३-५४	१०,४८०	२८०.३	१०,०३०	२६८.७
१९५४-५५	९,६१०	२५४.२	१०,२८०	२७१.९
१९५५-५६	९,९८०	२६०.६	१०,४८०	२७३.६
१९५६-५७	११,३१०	२९१.५	११,०००	२८३.५
१९५७-५८ (प्रारम्भिक)	११,३९०	२८६.१	१०,८३०	२७५.६

ऊपर के विवरण मे द्रष्टव्य है कि सन् १९५०-५१, अर्थात् योजना मे पहले के वर्ष तथा सन् १९५५-५६, अर्थात् पहली योजना के पाचवे वर्ष के बीच, भारत की राष्ट्रीय आय ९,५३० करोड रु० से बढ कर ९,९८० करोड रु० हो गई और यह वृद्धि भी उस हालत में हुई, जब

कि इस अवधि में सामान्य मूल्यों के स्तर में काफी गिरावट आई। यद्यपि इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय के नाममात्र मूल्यों में गिरावट आई (२६५ २ रु० से २६० ६ रु०), तथापि मूल्यों के स्तर में परिवर्तनों की व्यवस्था के बाद भी, प्रति व्यक्ति आय २८६ ३ रु० से बढ़ कर २७३ ६ रु० हो गई (सन १९४८-४९ की कीमतों के अनुसार)। सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार सन् १९५०-५१ तथा सन १९५५-५६ के बीच कुल राष्ट्रीय आय ८,८५० करोड़ रु० में बढ़ कर १०,४८० करोड़ रु० हो गई। इस प्रकार, इस अवधि में जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि होने के बावजूद पांच वर्षों के भीतर प्रति व्यक्ति आय में लगभग ९ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् १९४८-४९ को आधार-वर्ष मानते हुए, स्थिर मूल्यों के अनुसार, भारत की राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय के सूचनांक इस प्रकार है

तालिका-संख्या ४

राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय का सूचनांक

वर्ष	राष्ट्रीय आय		प्रति व्यक्ति आय	
	चालू मूल्यों के अनुसार	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार	चालू मूल्यों के अनुसार	सन् १९४८-४९ के मूल्यों के अनुसार
१९५०-५१	११० ७	१०२ ३	१०७ ४	९९ ८
१९५६-५७	१३० ८	१२७ २	११८ १	११४ ८
१९५७-५८ (प्रारम्भिक)	१३१ ३	१२५ ७	११७ १	१११ ६

राष्ट्रीय आय के प्रमुख व्यवसायगत स्रोत

नीचे की तालिका में विभिन्न वर्षों में चालू मूल्यों के अनुसार मुख्य व्यवसायों से प्राप्त भारत की राष्ट्रीय आय का विवरण दिया गया है

तालिका-संख्या ५

राष्ट्रीय आय के व्यवसायगत स्रोत

(करोड़ रु०)

व्यवसाय	१९४८-४९	१९५०-५१	१९५६-५७	१९५७-५८ प्रारम्भिक
१ कृषि	४,२५०	४,८९०	५,५२०	५,३३०
२ खनन निर्माण-मूलक और छोटे उद्योग	१,४८०	१,५३०	२,०००	२,०९०
३ वाणिज्य, परिवहन और संचार-साधन	१,६००	१,६९०	१,९६०	२,०२०
४ अन्य सेवाए	१,३४०	१,४४०	१,८२०	१,९२०
कुल राष्ट्रीय आय	८,६७०	९,५५०	११,३००	११,३६०
विदेशो से शुद्ध आय	–२०	–२०	१०	—
शुद्ध राष्ट्रीय आय	८,६५०	९,५३०	११,३१०	११,३६०

प्रमुख व्यवसायगत स्रोतो से होनेवाली राष्ट्रीय आय का प्रतिशत इस प्रकार है

तालिका-संख्या ६

राष्ट्रीय आय मे विभिन्न व्यवसायों का प्रतिशत

व्यवसाय	१९४८-४९	१९५०-५१	१९५६-५७	१९५८-५७ (प्रारम्भिक)
कृषि	४९ ७	५१ ३	४८ ८	४६ ९
खनन, निर्माणमूलक तथा छोटे उद्योग	१७ १	१६ १	१७ ७	१८ ४
वाणिज्य, परिवहन तथा सचार-साधन	१८ ८	१७ ५	१७ ३	१७ ८
अन्य सेवाए	१५ ८	१५ १	१६ २	१६ ९

इन आकडो से स्पष्ट है कि कुल राष्ट्रीय आय में निर्माणमूलक उद्योगो तथा अन्य सेवाओ के योगदान मे वृद्धि होने के बावजूद, अब भी कृषि से ही सबसे अधिक आय होती है। इसलिए आगामी योजनाओ मे भी देश का उद्योगीकरण करने पर विशेष बल दिए जाने की बडी आवश्यकता है ।

जीविकोपार्जन का स्वरूप

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार ३५ ६६ करोड की जनसख्या मे से (जम्मू-कश्मीर तथा असम के 'ख' भाग के आदिम जातीय क्षेत्रो के अलावा, पजाब के ३ लाख व्यक्तियो को छोड कर) २१ ४३ करोड व्यक्ति (६० १ प्रतिशत) 'गैर-कमाऊ आश्रित' थे, जिनमे मुख्यत महिलाए तथा बच्चे थे। शेष जनसख्या मे से ३ ७९ करोड व्यक्ति

(१० ६ प्रतिशत) 'कमाऊ आश्रित' तथा १० ४४ करोड व्यक्ति (२६.३ प्रतिशत) स्वावलम्बी थे।

प्रत्येक १०० भारतीयो (आश्रित-सहित) में से ४७ मुख्यत. भूमिधर किसान, ६ मुख्यत काश्तकार, १३ भूमिहीन मजदूर तथा १ जमीदार था। उद्योगो अथवा कृषि-भिन्न व्यवसायो में १०, वाणिज्य मे ६, परिवहन मे २ तथा विविध व्यवसायों मे १२ व्यक्ति लगे हुए थे।

अनुमान है कि सन् १६५०-५१ में ३५.६३ करोड की कुल जन-सख्या मे से १४.३२ करोड व्यक्ति काम मे लगे हुए थे। इनमें से १०.३६ करोड (अर्थात् ७२ ४ प्रतिशत) कृषि में, १.५३ करोड (अर्थात् १०.६ प्रतिशत) खनन और हस्तशिल्प-उद्योगो मे, १ ११ करोड (अर्थात् ७ ७ प्रतिशत) वाणिज्य, परिवहन और संचार-साधनो मे तथा १.३३ करोड (अर्थात् ६ ३ प्रतिशत) अन्य कामो मे लगे हुए थे।

कृषि-उपज से आय

सन् १६५०-५१ मे देश मे कुल कृषि-उपज ४,८६६ करोड रु० मूल्य की तथा वास्तविक कृषि-उपज ४,११२ करोड रु० मूल्य की हुई।

मुख्य उद्योगो से आय

सन् १६५० मे राष्ट्रीय आय मे विभिन्न निर्माणमूलक उद्योगो का योगदान ५१३.४ करोड रु० आका गया था। इस अवधि मे बैको तथा बीमे से ६५ १२ करोड रु० की आय हुई थी।

व्यवसायो तथा अन्य क्षेत्रो से आय

इस मद मे सन १६५०-५१ मे ४६८ करोड रु० की आय हुई। इसमे से ११६ करोड रु० चिकित्सा और स्वास्थ्य-सेवाओ से, ६६ करोड रु० शिक्षा-सेवाओ से, ६६ करोड रु० साहित्य, कला और विज्ञान आदि से, ३२ करोड रु० विभिन्न सेवाओ से, ४७ करोड रु० धार्मिक और दातव्य सेवाओं से तथा ३७ करोड रु० स्वच्छता-सेवाओं से प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त, गृह-सेवाओ से १३० करोड़ रु० तथा गृह-सम्पत्ति आदि से ४०८ ३ करोड रु० की आय हुई।

प्रति व्यक्ति उत्पादन

सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, सन् १९५०-५१ मे रोजगार मे लगे प्रत्येक व्यक्ति के शुद्ध उत्पादन का मूल्य ९७० रु० आका गया था।

बेरोजगारी

अनुमान है कि सन् १९५९ मे रोजगार-केन्द्रो मे विभिन्न काम ढूढने-वाले लोगो की सख्या १४,२१,००० थी।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप

अक्तूबर १९५० मे मार्च १९५१ के राष्ट्रीय नमूना-सर्वेक्षण के अनुसार भारत के प्रत्येक ग्रामीण परिवार मे औसतन ५ २१ व्यक्ति थे, जिनमे से २८ १ प्रतिशत कमाऊ, १६ ६ प्रतिशत कमाऊ आश्रित तथा ५५ ३ प्रतिशत गैर-कमाऊ आश्रित थे। ग्रामीण क्षेत्रो मे वार्षिक उपभोक्ता-व्यय की राशि सन् १९४९-५० मे २२० रु० प्रति व्यक्ति थी, जब कि सम्पूर्ण देश मे प्रति व्यक्ति आय का अनुमान २५३ ९ रु० था।

भू-स्वामित्व का स्वरूप

जुलाई १९५४ मे मार्च १९५५ के राष्ट्रीय नमूना-सर्वेक्षण के अनुसार, भारत के ग्रामीण परिवारो की सख्या लगभग ६ ५ करोड थी, जिनके पास लगभग ३१ करोड एकड भूमि थी। लगभग डेढ करोड परिवारो के पास कोई भूमि नही थी, एक-चौथाई के पास १ एकड से भी कम तथा तीन-चौथाई के पास ५ एकड से कम भूमि थी। दूसरी ओर, लगभग १/८ ग्रामीण परिवारो के पास १० एकड से अधिक, १ प्रतिशत के पास ४० एकड से अधिक, एक लाख के पास १०० एकड से अधिक और कुछ हजार परिवारों के पास २५० एकड से अधिक भूमि थी। इसके अतिरिक्त, ९० प्रतिशत ग्रामीण परिवार व्यक्तिगत रूप से खेती करते थे, १० प्रतिशत परिवारो के पास परस्पर-सयुक्त अधिकार में भूमि

थी, ६ प्रतिशत परिवार सयुक्त रूप से खेती करते थे और ४ प्रतिशत परिवार सयुक्त अथवा व्यक्तिगत रूप मे खेती करते थे।

उपभोक्ता-व्यय का स्वरूप

अगस्त-नवम्बर १९५१ में प्रति व्यक्ति औसत मासिक उपभोक्ता-व्यय गावों मे २४ २२ रु०, कस्बो में ३१ ५५ रु०, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई और मद्रास में ५४ ८२ रु० तथा सम्पूर्ण देश मे २५ ७० रु० था।

मूल्य

पिछले कुछ वर्षों में भारत मे थोक मूल्यो के सामान्य सूचनाक मे वृद्धि ही परिलक्षित हुई है। खाद्य-वस्तुओ, शराब और तम्बाकू, ईधन-शक्ति, बिजली और वाहक-तेलो, तथा औद्योगिक कच्चे माल के थोक मूल्यो का सामान्य सूचनाक सन् १९५४-५५ मे ९७ ५, १९५५-५६ मे ९२ ५, १९५६-५७ मे १०५ ३, १९५७-५८ मे १०८ ४, १९५८-५९ मे ११२ ९ तथा जनवरी १९६० मे ११९ था।

दिसम्बर १९५८ से दिसम्बर १९५९ की अवधि मे अखिल भारतीय श्रमिक-वर्ग के उपभोक्ता-मूल्य के सूचनाक मे २ ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। सन् १९५०-५१ मे यह सूचनाक १०१, १९५५-५६ में ९६, १९५६-५७ मे १०७, १९५७-५८ मे ११२ तथा १९५८-५९ मे ११८ थे।

अध्याय २

पंचवर्षीय योजनाएं

स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनेक वर्ष पहले से ही भारतीय जनता यह अनुभव करने लगी थी कि देश की गरीबी को दूर करने का केवल एक तरीका है, और वह यह कि योजनाएं बना कर उनके अनुसार काम किया जाए। पर जब देश स्वतंत्र हुआ, तब एक साथ हमें अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। विश्वयुद्ध तथा देश-विभाजन के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी। देश में चीजें भी दुर्लभ थी, जिसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति का जन्म हुआ, अर्थात् चीजों की कीमतें बढ़ी और रुपये का मूल्य कम हो गया। दूसरी ओर, स्वतंत्रता के आगमन से जन-मानस में अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठाने की आकांक्षा और भी बलवती हो उठी। इन परिस्थितियों में, भारत-सरकार ने राष्ट्र के समस्त ससाधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करने के उद्देश्य से योजना बनाने के लिए एक 'योजना-आयोग' स्थापित करने का विचार किया। देश की नई सरकार ने यह बखूबी समझ लिया था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का एकमात्र साधन योजनानुसार काम करना है।

इस प्रकार, मार्च १९५० में योजना-आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग की स्थापना का मुख्य उद्देश्य देश में विकास-कार्य आरम्भ करना था, जिससे लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाया जा सके तथा उन्हें सुखी-समृद्ध जीवन बिताने के नए अवसर प्रदान किए जा सके।

पहली पंचवर्षीय योजना

पहली पंचवर्षीय योजना का मसविदा जुलाई १९५१ में प्रकाशित हुआ तथा दिसम्बर १९५२ में संसद् ने उसे स्वीकृति प्रदान की। परन्तु योजना, वास्तव में, अप्रैल १९५१ में ही शुरू हो चुकी थी। यह योजना

आगामी योजनाओं की एक कडी थी, जिनकी सफलता से सन् १६७७ तक भारत की प्रति व्यक्ति आय दुगुनी हो जाएगी। पहली पचवर्षीय योजना का उद्देश्य भारत की अर्थ-व्यवस्था की नीव को मज़बूत करके उसे स्थिर तथा सुदृढ बनाना था। इस उद्देश्य से उसमें कृषि-विकास तथा बहूद्देश्यीय परियोजनाओं पर विशेष बल दिया गया।

पूंजी-विनियोग

आरम्भ मे पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २,०६६ करोड रु० खर्च करने का विचार था। परन्तु सन् १६५३ मे यह अनुभव किया गया कि देश में रोजगार की स्थिति दिन-दिन बिगडती जा रही है और इस स्थिति का पूरी शक्ति से मुकाबला किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य मे पहली पचवर्षीय योजना मे कुछ और कार्यक्रम जोड दिए गए तथा व्यय की रकम बढा कर २,३५६ करोड रु० कर दी गई।

पहली पचवर्षीय योजना मे सिंचाई और बिजली-उत्पादन के साथ-साथ कृषि-विकास तथा परिवहन और सचार-व्यवस्था के विकास को भी ऊंची प्राथमिकता दी गई। इस कारण उद्योगो पर पूंजी लगाने के लिए सरकार के हाथ बध गए। इसलिए यह क्षेत्र उद्योगपतियो के उपक्रम और समाधनो पर छोड दिया गया।

पहली पचवर्षीय योजना मे वास्तविक व्यय इस प्रकार हुआ कृषि और सामुदायिक विकास—२६६ करोड रु० (१४.८ प्रतिशत), सिंचाई और बिजली—५८५ करोड रु० (२६.१ प्रतिशत), उद्योग और खाने--१०० करोड रु० (५ प्रतिशत), परिवहन और सचार-- ५३२ करोड रु० (२६.४ प्रतिशत), समाज-सेवाए—४२३ करोड रु० (२१ प्रतिशत) तथा विविध कार्य--७४ करोड रु० (३.७ प्रतिशत)। अनुमान है कि वास्तविक व्यय १,६६० करोड रु० हुआ। ये आकडे पाचो वर्षों के संशोधित अनुमानो पर आधारित है।

लक्ष्य तथा सफलताएं

पहली पचवर्षीय योजना के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उद्देश्य बहुत-कुछ प्राप्त कर लिए गए। देश के उत्पादन मे वृद्धि हुई तथा

अर्थव्यवस्था मे दृढता आई, मुद्रास्फीति का भी अन्त हुआ। पहली योजना के अन्त मे मूल्य-स्तर, योजना लागू होने से पूर्व के मूल्य-स्तर से १५ प्रतिशत कम था।

राष्ट्रीय आय (स्थिर मूल्यो के अनुसार) मे १८ ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई—सन् १९५०-५१ मे ८,८५० करोड रु० मे बढ कर सन् १९५५-५६ मे यह राशि १०,४८० करोड रु० (सशोधित आकडे) हो गई। यह वृद्धि आशा से भी अधिक थी। इस काल मे प्रति व्यक्ति आय भी २४६ रु० से बढ कर २७४ रु० (सशोधित आकडे) हो गई। इसी प्रकार, प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा मे भी लगभग ८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय के प्रतिशत-रूप मे, अर्थ-व्यवस्था मे विनियोग की दर मे, जो सन् १९५०-५१ मे ५ प्रतिशत थी, योजना के अन्तिम वर्ष मे ७ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई।

विभिन्न क्षेत्रो के लक्ष्यो तथा सफलताओ का ब्योरा अगले पृष्ठ की तालिका मे दिया गया है

तालिका-संख्या ७

पहली योजना के लक्ष्य तथा सफलताएं

मदें	१९५०-५१	१९५५-५६ तक वृद्धि (योजना के लक्ष्य)	१९५५-५६ (सफलताएं)	१९५०-५१ की तुलना में १९५५-५६ में हुई वृद्धि
१	२	३	४	५
कृषि-उत्पादन				
खाद्यान्न (लाख टन)	५४०†	७६	६४९	+१०९
कपास (लाख गाठें)	२९ ७	१२ ६	४०	+१० ३
पटसन (लाख गाठें)	३३	२० ९	४२	+९
गुड के रूप में गन्ना (लाख टन)	५६ २	७	५८ ६	+२ ४
तेलहन (लाख टन)	५० ८	४	५६ ६	+५ ६

† आधार-वर्ष १९४९-५०

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
बिजली (स्थापित क्षमता)				
(लाख किलोवाट)	२३	१३	३४	+११
सिंचाई (लाख एकड़)	५१०	१६७	६५०	+१४०
औद्योगिक उत्पादन				
तैयार इस्पात (लाख टन)	९.८	६.७	१२.८	+३
कच्चा लोहा (लाख टन)	१५.७	१२.६	१७.९	+२.२
सीमेंट (लाख टन)	२६.९	२१.१	४५.९	+१९
अमोनियम सल्फेट (हजार टन)	४६.३	४०४	३९४	+३४७.७
रेलवे इंजिन (संख्या)	३	१७०	१७९	+१७६
पटसन से बनी वस्तुएं (हजार टन)	८२४	३७६	१,०५४	+२३०
मिल का बना वस्त्र (लाख गज)	३७,१८०	९,८२०	५१,०२०	+१३,८४०
दो पहिए की साइकिलें (हजार)	९७	४३३	५१३	+४१६
परिवहन				
जहाजरानी (लाख टन)	३.९	२.२	४.८	+०.९
राष्ट्रीय राजपथ (हजार मील)	१२.३	०.६	१२.९	+०.६

१	२	३	४	५
राज्यीय सड़कें (हजार मील)	—	—	—	—
पक्की	९७ ५	—	१२१ ६	+२४ १
कच्ची	१५१	—	१९५ १	+४४ १
स्वास्थ्य				
अस्पतालों में शय्याएं (हजार)	११३	१२	१३६‡	—
दवाखाने तथा अस्पताल (नागरिक तथा ग्रामीण)	८,६००	१,४००	९,८०६‡	—
शिक्षा				
प्राथमिक स्कूल (हजार)	२०९ ७	—	२८०	+७० ३
प्राथमिक स्कूलों और कक्षाओं के विद्यार्थी (लाख)	१८६ ८	१०१ २	२४८ १	+६१ ३
६-११ वय-वर्ग में स्कूल जानेवाले बच्चों का प्रतिशत	४१ २	१८ ८	५१ १	+९ ९
बुनियादी स्कूल (संख्या)	१,७५१	—	१५,८००	+१४,०४९
बुनियादी स्कूलों के विद्यार्थी (लाख)	१ ८५	—	११	+९ १५

‡ सन् १९५४-५५ के आंकड़े (सन् १९५५-५६ के आंकड़े अनुपलब्ध)

दूसरी पचवर्षीय योजना

दूसरी पचवर्षीय योजना (अप्रैल १९५६ से मार्च १९६१ तक) १५ मई, १९५६ को ससद् मे प्रस्तुत की गई। इस योजना के मुख्य उद्देश्य ये हैं : (१) राष्ट्रीय आय मे २५ प्रतिशत वृद्धि, (२) उद्योगो, विशेषकर मूलभूत और भारी उद्योगो के विकास के साथ द्रुत गति से उद्योगीकरण, (३) रोजगार के अवसरो मे वृद्धि, तथा (४) आय और सम्पत्ति की असमानता कम करके धन का समान वितरण।

व्यय

दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे केन्द्र तथा राज्य-सरकारो-द्वारा विकास-कार्यों पर ४,८०० करोड रु० व्यय करने का प्रस्ताव है। इसमे स्थानीय विकास-कार्यों को कार्यान्वित करने मे जनता का योगदान सम्मिलित नही है। विकास के मुख्य शीर्षको के अनुसार, दोनो पचवर्षीय योजनाओ का व्यय-विभाजन अगले पृष्ठ की तालिका मे दिखाया गया है

तालिका-संख्या ८

पंचवर्षीय योजनाओं का व्यय-विभाजन

(करोड़ रु०)

मुख्य शीर्षक	पहली पंचवर्षीय योजना		दूसरी पंचवर्षीय योजना	
	कुल व्यवस्था	प्रतिशत	कुल व्यवस्था	प्रतिशत
कृषि और सामुदायिक विकास	३५७	१५ १	५६८	११ ८
सिंचाई और बिजली	६६१	२८ १	९१३	१९ ०
उद्योग और खाने	१७९	७ ६	८९०	१८ ५
परिवहन और संचार	५५७	२३ ६	१,३८५	२८ ९
समाज-सेवाएं	५३३	२२ ६	९४५	१९ ७
विविध	६९	३	९९	२ १
जोड़	२,३५६	१०० ०	४,८००	१०० ०

इस तालिका से स्पष्ट है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे उद्योगो और खानो, परिवहन तथा सचार पर विशेष बल दिया गया। इस योजना मे लगभग आधा व्यय तो इन्ही मदो पर होगा, जब कि पहली पचवर्षीय योजना मे कुल व्यय का तीसरा हिस्सा ही इनके लिए रखा गया था। यदि बिजली को भी औद्योगिक विकास मे शामिल कर लिया जाए, तो यह व्यय कुल व्यय का ५६ प्रतिशत बैठेगा। उद्योगो तथा खानो पर व्यय लगभग ४०० प्रतिशत अधिक रखा गया है। कृषि और सामुदायिक विकास पर व्यय लगभग १२ प्रतिशत है, जब कि पहली पचवर्षीय योजना मे यह लगभग १५ प्रतिशत था।

दूसरी पचवर्षीय योजना पर होनेवाले ४,८०० करोड रु० के कुल व्यय मे से २,५५९ करोड रु० का भार केन्द्रीय सरकार तथा २,२४१ करोड रु० का भार राज्य-सरकारे वहन करेगी। कुल व्यय मे से ३,८०० करोड रु० का उपयोग विनियोग के लिए तथा १,००० करोड रु० का उपयोग चालू विकास-व्यय के लिए किया जाएगा।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे लगभग २,४०० करोड रु० की पूजी गैर-सरकारी क्षेत्र मे लगाई जाएगी। इस रकम मे से ५७५ करोड रु० उद्योगो और खानो पर, १२५ करोड रु० बगानो, परिवहन (रेलो को छोड कर) और बिजली-प्रतिष्ठानो पर, १,००० करोड रु० निर्माण-कार्यों पर, ३०० करोड रु० कृषि, ग्रामोद्योगो और लघु उद्योगो पर तथा ४०० करोड रु० स्टाक मे लगाया जाएगा।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे मूल उद्योगो के विकास पर विशेष बल देने का निश्चय किया गया है। दस-दस लाख टन सिल्लियो की क्षमतावाले तीन नए इस्पात के कारखाने लगाए जा रहे है, जिससे देश मे इस्पात का कुल उत्पादन प्रति वर्ष ४३ लाख टन हो जाएगा। सरकारी क्षेत्र मे तीन उर्वरक-कारखाने भी बनाए जाएगे। सीमेट का उत्पादन सन् १९५५-५६ के ४३ लाख टन से बढा कर १ ३ करोड टन तथा कोयले का उत्पादन ३ ८ करोड टन से बढा कर ६ करोड टन किया जाएगा। रेल-इजिनो की निर्माण-सख्या सन् १९५५-५६ मे १७५ थी, दूसरी पचवर्षीय योजना की समाप्ति तक ४०० इजिन प्रतिवर्ष बनने लगेगे।

कृषि-क्षेत्र के लिए लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किए गए थे—खाद्यान्न: ७.५ करोड़ टन, कपास ५५ लाख गाठें, पटसन ५० लाख गाठें, गुड़ ७१ लाख टन, तथा तेलहन ७६ लाख टन। दूसरी पचवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने के फलस्वरूप जो अनुभव प्राप्त हुए, उनके प्रकाश मे कृषि-उपज के लक्ष्य बढ़ा दिए गए हैं। सशोधित लक्ष्य इस प्रकार है—खाद्यान्न ८.०५ करोड़ टन, कपास ६५ लाख गाठें, पटसन ५५ लाख गाठें, गुड़ ७८ लाख टन, तथा तेलहन ७६ लाख टन।

वित्तीय साधन

दूसरी पचवर्षीय योजना के लिए आवश्यक धन निम्नलिखित स्रोतो से जुटाया जाएगा :

तालिका-संख्या ६

दूसरी पंचवर्षीय योजना के वित्तीय साधन

(करोड़ रु०)

१ चालू राजस्व से बचत	८००
२ जनता से ऋण	१,२००
३ बजट-सम्बन्धी अन्य स्रोत	४००
४ विदेशी स्रोत	८००
५ घाटे की अर्थ-व्यवस्था	१,२००
६ देशीय साधनो से पूरा किया जानेवाला अन्तर	४००
कुल	४,८००

विदेशी मुद्रा की स्थिति

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रो से आयात मे वृद्धि के फलस्वरूप दूसरी पचवर्षीय योजना के आरम्भ से ही देश की भुगतान की स्थिति

पर दबाव रहा है। इस स्थिति मे सुधार लाने के उद्देश्य से आयात मे कमी करके निर्यात बढाने की नीति अपनाई गई है।

रोजगार

अनुमान है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे ८० लाख लोगो को रोजगार मिल जाएगा। इसके अतिरिक्त, यह भी आशा है कि कृषि और सिंचाई, आदि से सम्बन्धित कार्यों मे भी लगभग १६ लाख लोगो को पूरे समय का रोजगार मिलेगा। ग्रामोद्योगो और लघु उद्योगो के लिए विकास-कार्यक्रम चलाने मे भी लोगो को रोजगार मिलेगा। परन्तु यह समस्या पूरी तौर से अगली योजनाओ मे ही जाकर हल हो सकेगी।

दूसरी पचवर्षीय योजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य समतावादी समाज की स्थापना करना है, जिसमे राष्ट्र-निर्माण के कार्यों मे धनी लोगो से और अधिक त्याग करने के लिए कहा जाएगा तथा समाज के गरीब वर्गो को अधिक सामाजिक सेवाए तथा सुविधाए प्रदान की जाएगी। योजना का उद्देश्य कर, आदि लगा कर असमानताओ को कम करना है। इसके साथ ही, योजना मे इस बात पर भी बल दिया गया है कि आय का अधिक समान वितरण करने के लिए कदम उठाए जाए।

योजना पर पुनर्विचार

दूसरी पचवर्षीय योजना आरम्भ होने के समय से मूल्यों मे वृद्धि होने के फलस्वरूप योजना का व्यय बढ जाना निश्चित था, किन्तु राष्ट्रीय विकास-परिषद् ने मई १९५८ मे निश्चय किया कि योजना के लिए वित्तीय दृष्टि से कुल व्यय ४,८०० करोड रु० ही रहना चाहिए। इसके उपरान्त, साधनो का लेखा-जोखा करके योजना के व्यय को दो भागो मे बाटने का निश्चय किया गया। योजना के पहले भाग को क्रियान्वित करने के लिए ४,५०० करोड रु० की आवश्यकता पडेगी, और इसमे आवश्यक परियोजनाए ही सम्मिलित रहेगी। शेष परियोजनाए दूसरे भाग मे रहेगी, जो साधनो की उपलब्धि को ध्यान मे रख कर क्रियान्वित की जाएगी। योजना के पहले भागवाले व्यय मे से केन्द्र २,५१२ करोड रु० का तथा राज्य १,९८८ करोड रु० का भार वहन करेगे।

सन् १९५६-६० की अवधि में दूसरी पचवर्षीय योजना पर कुल ३,६६० रु० का व्यय हुआ। आशा है कि पाच वर्षों में कुल खर्च ४,५०० करोड रु० से अधिक नही, तो उसके आसपास अवश्य पहुंच जाएगा।

तीसरी पचवर्षीय योजना

तीसरी पचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा प्रकाशित हो गई है। इस योजना में (सन् १९५०-५१ को आधार-वर्ष मानते हुए) राष्ट्रीय आय को दुगुना किया जाएगा तथा कृषि-उपज और खाद्यान्न की आवश्यकताओं, भारी मशीनों के निर्माण और बुनियादी साधनों—जैसे, इस्पात, ईंधन और बिजली—का विकास करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा। योजना के अन्य मुख्य उद्देश्यों में लघु उद्योगों, ग्रामोद्योगों और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का द्रुत और स्वस्थ विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रों और औद्योगिक केन्द्रों में स्वस्थ सम्बन्धों की स्थापना उल्लेखनीय है। प्रारम्भिक रूपरेखा के अनुसार, तीसरी पचवर्षीय योजना में लगभग १०,२०० करोड रु० के खर्च का अनुमान लगाया गया है, जिसमें से सरकारी क्षेत्र में ६,२०० करोड रु० तथा गैर-सरकारी क्षेत्र में ४,००० करोड रु० खर्च किए जाएंगे।

अध्याय ३

सामुदायिक विकास

भारत मे सामुदायिक विकास-कार्यक्रम का इतिहास सन् १९४६ मे आरम्भ होता है, जब सेवाग्राम के अलावा बम्बई मे सर्वोदय-केन्द्रो मद्रास मे फिरका-विकास-योजना तथा उत्तरप्रदेश के इटावा और गोरखपुर मे मार्गदर्शक परियोजनाओ के अन्तर्गत गहन ग्राम-विकास-सम्बन्धी प्रयोग किए गए। इन कार्यों की सफलता से प्रेरित होकर ही योजना-आयोग ने पहली पचवर्षीय योजना के एक अग के रूप मे सामुदायिक विकास-कार्यक्रम बनाने का निश्चय किया तथा उसके लिए ९० करोड रु० की व्यवस्था की।

उद्देश्य

सामुदायिक विकास-आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लगभग ५ ६० ००० गावो मे रहनेवाली जनता के लिए स्वाधीनता तथा आर्थिक उत्थान को फलदायक बनाना है। प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे, यह एक मक क्रान्ति है, जो ग्रामीण भारत का रूप बदल देगी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सबसे अधिक प्राथमिकता कृषि को दी गई है तथा सडको, स्कूलो, मकानो, दवाखानो, स्वास्थ्य-केन्द्रो, पशु-चिकित्सालयो, प्रदर्शन-फार्मो, लघु उद्योग-केन्द्रो और ग्राम्य मनोरजन-स्थलो की ओर अधिक व्यवस्था की जाएगी। इसके अतिरिक्त, विशेष बल इस बात पर दिया जाएगा कि ग्रामीण जनता अपनी उन्नति के लिए स्वय आगे आकर काम करे, न कि सरकार का मुह ताकती बैठी रहे। वास्तव मे, इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य गाव के प्रत्येक निवासी मे आत्म-विश्वास तथा उपक्रम की भावना का विकास करना है। गाव मे सामूहिक चिन्तन और मिल-जुल कर काम करने की भावना को प्रोत्साहन देने के लिए ग्राम-पंचायते, सहकारी समितिया, विकास-मडल, आदि-जैसी जन-सस्थाए स्थापित की जा रही है।

सरकार केवल प्रशासनिक कर्मचारियों की व्यवस्था करती है तथा संगठन के व्यय का कुछ हिस्सा प्रदान करती है। मुख्य रूप से यह 'अपनी मदद आप करने' का कार्यक्रम है, जिसमें जनता सक्रिय रुचि लेगी और अपनी सामर्थ्य के अनुसार योग देकर इसे सफल बनाएगी। कार्यक्रम के विभिन्न स्तरों पर जनता के प्रतिनिधियों का सहयोग प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त, योजनाएं बनाने तथा कार्यक्रमों को कार्यरूप देने के लिए ग्राम-पंचायतों की भी सहायता ली जाती है। ग्राम-योजनाओं पर खंड-स्तर, जिला-स्तर तथा राज्य-स्तर की सलाहकार समितियां विचार करती हैं। इन समितियों में जनता के भी प्रतिनिधि होते हैं।

प्रगति

सामुदायिक विकास-कार्यक्रम पहले-पहल २ अक्तूबर, १९५२ को ५५ परियोजना-क्षेत्रों में आरम्भ किया गया था। हर परियोजना के अन्तर्गत ४०० वर्गमील क्षेत्रफल में फैले हुए लगभग तीन सौ गांव रखे जाते थे, जिनकी कुल आबादी लगभग २ लाख होती थी। परियोजना-क्षेत्र को तीन विकास-खंडों में बांट दिया जाता था। प्रत्येक खंड में पांच-पांच गांवों की कुछ इकाइयां होती थीं और हर इकाई के लिए एक ग्रामसेवक नियुक्त किया जाता था।

इन ५५ परियोजनाओं का बड़ा अच्छा स्वागत हुआ। अतः सरकार ने इस प्रयोग का विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी करने का निश्चय किया। पर देश के पास इतने साधन नहीं थे कि यह काम एक साथ बहुत-से इलाकों में आरम्भ किया जा सकता। इसलिए राष्ट्रीय विस्तार-सेवा के अन्तर्गत २ अक्तूबर, १९५३ को एक सीमित कार्यक्रम आरम्भ किया गया। ऐसा करने का उद्देश्य यह था कि विकास की एक अवधि के बाद इनमें से कुछ विस्तार-खंडों को ऐसे सामुदायिक विकास-खंडों में बदल दिया जाए, जिनमें अधिक तेजी से काम किया जा सके। पहली पंचवर्षीय योजना में मार्च १९५६ के अन्त तक लगभग एक-चौथाई ग्रामीण जनता के लिए यह कार्यक्रम चालू कर देने का लक्ष्य रखा गया था।

यह लक्ष्य न्यूनाधिक पूरा कर लिया गया। पहली पचवर्षीय योजना के अन्त मे ५५७ सामुदायिक विकास-खड तथा ६०३ राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खड थे, जिनके अन्तर्गत लगभग १,५७,००० गाव तथा ८ ८८ करोड की जनसख्या आती थी।

दूसरी पचवर्षीय योजना बनाते समय यह कल्पना की गई कि सन् १९६१ तक भारत का एक-एक गाव राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-योजना के अन्तर्गत आ जाए। (परन्तु अब अनुमान है कि अक्तूबर १९६३ तक ही सम्पूर्ण देश इस कार्यक्रम के अन्तगत आ सकेगा।) इसके अतिरिक्त, गहन सामुदायिक विकास-खडो के माध्यम से लगभग ४० प्रतिशत इलाके का विकास करने का भी विचार था। कुल मिला कर ३,८०० अतिरिक्त विस्तार-सेवा-खड बनाने तथा इनमे से १,१२० को सामुदायिक परियोजना-खडो मे बदलने की योजना थी। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ग्राम-विकास-कार्यक्रम के लिए २०० करोड रु० की व्यवस्था की गई, जबकि पहली पचवर्षीय योजना मे इस कार्यक्रम पर कुल ४२ ४ करोड रु० व्यय हुए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सामुदायिक परियोजनाओ के लिए साधन जनता और सरकार दोनो मिल कर जुटाती है। इस कार्यक्रम मे एक प्रतिबन्ध यह है कि हर परियोजना-क्षेत्र के लिए जनता अपनी इच्छा से धन और श्रम के रूप मे योग दे। इसके अलावा, परियोजनाओ का कुछ खर्च केन्द्र और राज्य-सरकारे भी उठाती है।

अप्रैल १९५८ से पूर्व सामुदायिक विकास-कार्य के तीन चरण होते थे। पहला चरण आम तौर पर तीन साल तक चलता था और इस अवधि मे ४ लाख रु० के बजट मे एक सीमित विकास-कार्यक्रम चलाया जाता था। इसके बाद, दूसरे चरण मे आवश्यक कर्मचारियो तथा ८ लाख रु० की व्यवस्था की जाती थी। फिर, तीसरे चरण के लिए हर साल ३० हजार रु० की व्यवस्था की जाती थी। किन्तु सन् १९५८ मे एक उच्च-स्तरीय समिति की सिफारिश के अनुसार, सरकार ने इस प्रणाली को समाप्त करने तथा इसके बदले दस साल का एक निरन्तर विकास-कार्यक्रम चलाने का निश्चय किया। इस नई प्रणाली के अनुसार, प्रत्येक

खड में भरपूर विकास-कार्य पूरा हो चुकने के बाद, दूसरा चरण आरम्भ होता है, जिसमे अगले ५½ वर्ष तक अपेक्षाकृत कम व्यय किया जाता है। पहला चरण आरम्भ होने से पूर्व प्रत्येक खड को 'पूर्व-विस्तार-अवस्था' में से गुजरना पडता है, जिसमे कार्यक्रम को मात्र कृषि-विकास तक ही सीमित रखा जाता है।

सन् १९५९ मे सरकार ने जन-संस्थाओ को विकास-कार्यक्रमो की योजना बनाने तथा उन्हे कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी, अधिकार तथा साधन, आदि सौपने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार, कुछ राज्यो मे पचायती राज का श्रीगणेश किया जा चुका है तथा जिला-स्तर पर अनुविहित जिला-परिषदे, खड-स्तर पर खड-पचायत-समितिया तथा ग्राम-स्तर पर ग्राम-पचायते स्थापित की जा रही है।

सामुदायिक विकास-कार्यक्रम को असली जामा पहनाने मे पचायत, सहकारी समिति तथा गाव की पाठशाला—ये तीनो बुनियादी संस्थाओ के रूप मे काम करेगी।

अमेरिका तथा वहा का फोर्ड-फाउडेशन (अमेरिका की एक दानशील संस्था) ये दोनो ही भारत के गावो का उत्थान करने के विशाल यज्ञ मे काफी सहायता प्रदान कर रहे है। सन १९५२ मे आरम्भ की गई ५५ परियोजनाओ के लिए अमेरिका ने लगभग ७२ लाख डालर, अर्थात् लगभग ३ ४२ करोड रु०, मूल्य का साज-सामान दिया। इसके बाद अमेरिकी सरकार ने दो किस्तो मे ५५.८ लाख डालर अर्थात् लगभग २ ६६ करोड रु०, की एक और रकम दी। इसके अतिरिक्त, इस कार्यक्रम को कार्यरूप देने के लिए कुछ विशेषज्ञो की सेवाए भी उपलब्ध हुई। फोर्ड-फाउडेशन परियोजनाओ के हजारो कर्मचारियो को प्रशिक्षण भी प्रदान कर रहा है। ग्राम-विकास के लिए मार्गदर्शक परियोजनाए चलाने मे भी इस संस्था ने भारत की काफी सहायता की है।

संगठन

केन्द्र मे सामुदायिक विकास-कार्यक्रम का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सामुदायिक विकास और सहकारिता-मन्त्रालय पर है, किन्तु आधारभूत

नीति-सम्बधी प्रश्न एक केन्द्रीय समिति के सम्मुख रखे जाते है । इस समिति मे योजना-आयोग के सदस्य, खाद्य और कृषि-मन्त्री तथा सामुदायिक विकास और सहकारिता-मन्त्री है । प्रधान मन्त्री समिति की अध्यक्षता करते है ।

राज्यो मे इस कार्यक्रम के लिए राज्यीय विकास-समितिया है, इन समितियो मे मुख्य मन्त्री (अध्यक्ष), विकास-मन्त्री तथा विकास-आयुक्त (सचिव) होते है ।

जिलो मे अनुविहित जिला-परिषदे है । इनमे जनता के प्रतिनिधि—यथा, खड-पचायत-समितियों के अध्यक्ष तथा जिले के ससत्सदस्य और विधान-मण्डल के सदस्य—होते है ।

खड-स्तर पर कार्यक्रम की देख-रेख खड-पचायत-समिति करती है, जिसमे निर्वाचित सरपच, तथा महिलाओ, पिछडे वर्गो और अनुसूचित जातियो के प्रतिनिधि होते है । खड-विकास-अधिकारी तथा कृषि, सहकारिता, पशुपालन, आदि क्षेत्रो के विशेषज्ञ ८ विस्तार-अधिकारी पचायत-समिति के निदेशानुसार काम करते है । इसके अतिरिक्त, युवक-मडल, कृषक-मडल, महिला-मडल, आदि भी अपने-अपने क्षेत्र मे पचायत का हाथ बटाते है । ग्रामसेवक बहुधधी विस्तार-कर्मचारी के रूप मे काम करता है और उसके अधीन १० गाव होते है ।

जिन राज्यो मे अभी पचायती राज स्थापित नही हुआ है, उनमे खड-विकास-समितिया है, जो अपने-अपने क्षेत्र मे विकास-योजनाओ के आयोजन, आरम्भ स्वीकृति तथा कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होती है ।

प्रशिक्षण

इस समय देश मे ६१ विस्तार-प्रशिक्षण-केन्द्र है, जहा ग्रामसेवको को प्रशिक्षण दिया जाता है । सितम्बर १६५६ तक ३६,५७७ ग्राम-सेवको को प्रशिक्षण दिया गया । ग्राम-सेविकाओ के प्रशिक्षण के लिए ३५ केन्द्र, समाज-शिक्षा-सगठनकर्ताओ के लिए १३ केन्द्र, मुख्य सेविकाओ के लिए २ केन्द्र, तथा खड-विकास अधिकारियो के लिए ८ केन्द्र है । इसके

अतिरिक्त, सहकारिता से सम्बन्धित खड-विस्तार-अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिए ८ केन्द्र, स्वास्थ्य-कर्मचारियो के लिए ३ केन्द्र, सहायक दाइयो आदि के लिए ६६ केन्द्र, स्वास्थ्य-निरीक्षिकाओ के लिए ९ केन्द्र तथा धात्रियो के प्रशिक्षण के लिए ६ केन्द्र है।

प्रशिक्षण-सस्थाओ के मुख्याध्यापको, अन्य सशिक्षको तथा जिला-पचायत-अधिकारियो के प्रशिक्षणार्थ राजपुर (देहरादून) मे एक प्रशिक्षण-सस्थान खोल दिया गया है। मसूरी मे एक केन्द्रीय सामुदायिक विकास-सस्थान भी स्थापित कर दिया गया है।

३१ मार्च, १९५९ तक लगभग १९ लाख ग्राम-सहायको को प्रशिक्षण दिया गया।

सफलताए

सामुदायिक विकास-कार्यक्रम की प्रगति से योजना के उद्देश्यो की सिद्धि मे बडा योग मिला है। सयुक्त राष्ट्र-सघ के एक मिशन ने इस कार्यक्रम को 'वर्तमान काल मे एशिया मे आर्थिक विकास तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग' की सज्ञा दी थी। कई देशो ने इस कार्यक्रम का अध्ययन करने के लिए अपने-अपने प्रेक्षक भेजे, जो भारत के गावो मे होनेवाले महान् परिवर्तनो से बडे प्रभावित हुए। इस कार्यक्रम ने जनता का दृष्टिकोण ही बदल दिया है। ग्रामीणो मे एक नए उत्साह और विश्वास की भावना का सचार हुआ है। इसके अतिरिक्त, भौतिक क्षेत्र मे भी बडी उल्लेखनीय सफलताए मिली है।

कृषि-विकास के कार्यक्रम के अन्तर्गत किसानो को सुधरे हुए कृषि-औजारो का इस्तेमाल सिखाने तथा उन्नत बीज और खाद बाटने की व्यवस्था की जाती है।

सन् १९५९ के आरम्भ मे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत २,५४८ खड, ३,३९,५१८ गाव तथा लगभग १७ ३ करोड की जनसख्या थी।

१ अप्रैल, १९५९ तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ४,७८,२८,०२० मन उर्वरको, २,०५,१६,००० मन उन्नत बीज, ५५,३०७ उन्नत पशुओ और ८,००,७७२ पक्षियो का वितरण किया गया, ६६,९३,०००

कृषि-प्रदर्शन किए गए, १,५१,७५१ कुओं का निर्माण किया गया और २,२४,३७६ कुओं की मरम्मत की गई, १,२२,०३७ वयस्क शिक्षा-केन्द्र स्थापित किए गए और ३४,६८ ००० वयस्कों को साक्षर बनाया गया, तथा लगभग ६८,४२३ मील लम्बी कच्ची सडकों का निर्माण किया गया ।

स्पष्ट है कि ये सब सफलताएं हरगिज न मिलती, यदि जनता खुशी से इन कार्यों में हाथ न बटाती । मार्च १९५६ तक सरकार ने सामुदायिक विकास-कार्यक्रम पर लगभग १४० ८६ करोड़ रु० व्यय किए । इसकी तुलना में जनता ने लगभग ७४ ५६ करोड़ रु० का योगदान दिया । दूसरे शब्दों में जनता का योगदान सरकारी खर्च के ५० प्रतिशत से कुछ अधिक ही था ।

अध्याय ४

कृषि

यद्यपि भारत औद्योगिक दृष्टि से दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है, तथापि देश की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या अब भी अपनी जीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर करती है तथा देश की लगभग आधी राष्ट्रीय आय कृषि से ही प्राप्त होती है।

देश का कुल क्षेत्रफल लगभग ८०.६३ करोड़ एकड़ है। सन् १९५६-५७ के आंकड़ों के अनुसार, उस वर्ष १२.६१ करोड़ एकड़ भूमि में जंगल और ६.७७ करोड़ एकड़ भूमि में चरागाह, वृक्ष, कुंज आदि थे तथा ५.८५ करोड़ एकड़ भूमि बंजर थी। इसके अतिरिक्त, ११.६२ करोड़ एकड़ भूमि कृषि के लिए उपलब्ध नहीं थी। कुल ३६.८५ करोड़ एकड़ भूमि में ही कृषि होती थी। इस तरह कृषि करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से १.३ एकड़ से भी कम भूमि आती है, यद्यपि एक खेत का औसत क्षेत्रफल लगभग ७.५ एकड़ है। हाल के वर्षों में लगभग सभी राज्यों में चकबन्दी करने के प्रयत्न किए गए हैं, किन्तु इस दिशा में अभी काफी काम करना बाकी है।

भारत में कृषि की दो प्रमुख विशेषताएं हैं: पहली एक तो, विभिन्न प्रकार की फसलें होती हैं, और दूसरी बात यह कि अनाज की फसलों को अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। अनाज की फसलें कुल कृषि-योग्य भूमि के लगभग ८० प्रतिशत भाग में बोई जाती हैं।

भारत में मुख्य फसलें दो हैं: खरीफ और रबी। चावल, जुआर, बाजरा, मकई, कपास, गन्ना, तिल और मूंगफली खरीफ की, तथा गेहूं, जौ, चना, अलसी, राई और सरसों रबी की मुख्य फसलें हैं।

पहली पंचवर्षीय योजना

सन् १९५१-५२ में जब पहली पंचवर्षीय योजना आरम्भ हुई,

तब भारत के सामने अनाज और आवश्यक कच्चे माल की भीषण कमी थी। इसलिए, सबसे अधिक जोर कृषि-विकास तथा बहुद्देश्यीय नदी-घाटी-परियोजनाओं पर ही दिया गया। प्रस्तावित खर्च में से लगभग १५ प्रतिशत कृषि और सामुदायिक विकास के लिए तथा १६ प्रतिशत बहुद्देश्यीय एवं सिंचाई-परियोजनाओं के लिए रखा गया था। अनाज, गन्ना, तेलहन, कपास, पटसन तथा ऐसी ही दूसरी व्यापारिक अर्थात् नकदी फसलों की उपज बढ़ाने पर भी खास जोर दिया गया था। देश-विभाजन से कपास और पटसन की पैदावार को सख्त धक्का लगा था, क्योंकि इनकी अधिकांश मिलें तो भारत में रहीं, पर कपास और पटसन पैदा करनेवाले मुख्य इलाके पाकिस्तान में चले गए। पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि से सम्बन्धित दूसरे क्षेत्रों—जैसे, हाट-व्यवस्था, मछलीपालन, पशुपालन, भूमि-संरक्षण तथा वनों—में सुधार करने की भी व्यवस्था की गई।

अनाज की फसलें

पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बड़ी उल्लेखनीय सफलताएं मिलीं। कृषि-उपज का सामान्य सूचनांक सन् १९५०-५१ में ९५.६ था, सन् १९५२-५३ में वह १०२, सन् १९५३-५४ में ११४, सन् १९५५-५६ में ११६.९, तथा सन् १९५६-५७ में १२३.९ तक जा पहुंचा। सन् १९४९-५० में ५.४ करोड़ टन अनाज पैदा हुआ था (चावल २.३२ करोड़ टन, गेहूं ६३ लाख टन, अन्य अनाज १.६५ करोड़ टन तथा दालें ८० लाख टन)। योजना-अवधि के अन्त में ६.१६ करोड़ टन अनाज पैदा करने का लक्ष्य निश्चित किया गया था। परन्तु योजना के तीसरे वर्ष में ही लक्ष्य से भी लगभग ७१ लाख टन अधिक पैदावार हुई। आगे के वर्षों में, यद्यपि उपज में थोड़ी-बहुत कमी हुई, तथापि सन् १९५४-५५ और १९५५-५६ में योजना के लक्ष्य से क्रमशः ५० लाख तथा ३६ लाख टन अधिक ही उपज हुई।

लेकिन, अनाज की पैदावार बढ़ने के बावजूद भारत को बाहर से अनाज मंगाना पड़ता है, ताकि जनता को अधिक अनाज उपलब्ध

कराया जा सके तथा कीमतें स्थिर रहें। भारत ने सन् १९५१ में ४७.२५ लाख टन, १९५३ में २० लाख टन, १९५५ में ७ लाख टन, १९५६ में १४.२ लाख टन, तथा १९५७ में ३५.८२ लाख टन अनाज विदेशों से मंगाया।

व्यापारिक फसलें

तेलहन, कपास, पटसन तथा गन्ने-जैसी व्यापारिक फसलों की पैदावार में भी उत्साहजनक वृद्धि हुई है। सन् १९५०-५१ में लगभग ५.६१ करोड़ टन गन्ना, ५१ लाख टन तेलहन, २९ लाख गांठें कपास तथा ३३ लाख गांठें पटसन पैदा हुई। सन् १९५५-५६ तक पैदावार और भी बढ़ी और ५.९ करोड़ टन गन्ना, ५५ लाख टन तेलहन, ४० लाख गांठें कपास तथा ४१ लाख गांठें पटसन पैदा हुई।

पैदावार की वृद्धि में कई बातों का हाथ रहा। वर्षा समय पर और खूब हुई। इसके अतिरिक्त, केन्द्र ने तथा राज्यों के कृषि, सहकारिता, सिंचाई तथा स्वास्थ्य-विभागों ने भी सहायता प्रदान की। सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवा ने भी ग्रामीणों में नई जागृति पैदा करने में बड़ा उपयोगी कार्य किया।

'अधिक अन्न उपजाओ'-कार्यक्रमों के अन्तर्गत सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार, उर्वरक, खाद और उन्नत बीज का प्रयोग, परती भूमि का पुनरुद्धार तथा कृषि करने के तरीकों में सामान्य सुधार किया गया। योजना चालू होने से पहले कुल २,७५,००० टन अमोनियम सल्फेट का उपयोग किया जाता था, जो बढ़ते-बढ़ते सन् १९५७ में ७,२०,००० टन तक जा पहुंचा। केन्द्रीय ट्रैक्टर-संघटन ने लगभग १७ लाख एकड़ भूमि को खेती-योग्य बनाया। लगभग १६ लाख एकड़ भूमि में जापानी ढंग से धान की खेती भी शुरू की गई।

लघु सिंचाई के कार्यक्रम में, सन् १९५७-५८ के लिए २८,००० कुओं तथा ३२० तालाबों की मरम्मत करने की योजना बनाई गई थी। इसके अतिरिक्त, नवम्बर १९५७ तक २,६५० नलकूप (ट्यूब-वेल) पूरे किए गए। केवल सन् १९५६-५७ के वर्ष में ही २५१ नई

सहकारी हाट-व्यवस्था-समितियां रजिस्टर की गईं। पैदावार की बिक्री के लिए नियमित मंडियों, जिसों का वर्गीकरण और मानकीकरण तथा अनाज-भंडारों और गोदामों की व्यवस्था करने की भी अधिक सुविधाएं दी गईं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना

दूसरी पंचवर्षीय योजना तथा पहली पंचवर्षीय योजना में मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत निर्धारित रकम का विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है

तालिका-संख्या १०

पहली तथा दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में व्यय-विभाजन

मुख्य शीर्षक	पहली पंचवर्षीय योजना		दूसरी पंचवर्षीय योजना	
	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत
कृषि	१९६	८१ ७	१७०	४९ ९
पशुपालन	२२	९ २	५६	१६ ४
वन और भूमि-संरक्षण	१०	४ २	४७	१३ ८
मछलीपालन	४	१ ६	१२	३ ५
सहकारिता	७	२ ९	४७	१३ ८
विविध	१	० ४	९	२ ६
जोड़	२४०	१०० ०	३४१	१०० ०

उपर्युक्त व्यय के अतिरिक्त, राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास-कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी कृषि-विकास के लिए कुछ व्यवस्था की गई है। इस शीर्षक के अन्तर्गत २०० करोड़ रु० की रकम में से ५ ५ करोड़ रु० कृषि-विकास के लिए रखे गए हैं।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे अतिरिक्त उपज के जो लक्ष्य रखे गए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :

तालिका-संख्या ११

दूसरी योजना में अतिरिक्त उपज के लक्ष्य

फसलें	सन् १९५५-५६ में अनुमानित उपज	सन् १९६०-६१ तक उपज का संशोधित लक्ष्य	संशोधित उपज के सूचनांक में प्रतिशत वृद्धि
अनाज (लाख टन)	६५०	८०५	२३ ८
तेलहन (लाख टन)	५५	७६	३८ २
गन्ना (गुड) (लाख टन)	५८	७८	३४.५
कपास (लाख गाठे)	४२	६५	५४ ८
पटसन (लाख गाठे)	४०	५५	३७ ५
अन्य फसले	—	—	२२ ४
सब फसले	—	—	२७ १

कृषि-अनुसधान

कृषि-उपज मे अनुसधान तथा विस्तार-कार्यों का बडा महत्व है । इस सम्बन्ध मे, भारतीय कृषि-अनुसधान-परिषद् अनुसधान का समन्वय करती है । सन् १९५१ में इस परिषद् का पुनर्गठन किया गया । अनुसंधान का उद्देश्य अनुसधानकर्ताओ और किसानो के बीच की दूरी को पाटना है । अनुसंधान-कार्य कुछ सस्थाओ मे हो रहा है, जिनमें भारतीय कृषि-अनुसंधान-सस्थान, दिल्ली, केन्द्रीय चावल-अनुसधान-संस्थान, कटक; केन्द्रीय आलू-अनुसंधान-संस्थान, शिमला; केन्द्रीय वनस्पति-उत्पादन-केन्द्र, कुलू, वन-अनुसंधान-सस्थान, देहरादून;

भारतीय पशु-चिकित्सा-अनुसंधान-संस्थान, इज्ज़तनगर; भारतीय दुग्धशाला-अनुसंधान-संस्थान, बंगलोर, तथा भारतीय लाख-अनुसंधान-संस्थान, नमकुम प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त, २२ कृषि-कालेज भी हैं,जिनमें विशिष्ट विषयों पर अनुसंधान किया जाता है। इसी तरह, ८ केन्द्रीय जिस-समितियां भी हैं, जो विशिष्ट जिंसों—जैसे, कपास, पटसन, तेलहन, गन्ना, नारियल, सुपारी, लाख तथा तम्बाकू—सम्बन्धी अनुसंधान-कार्य करती हैं।

ये अनुसंधान-संस्थान भूमि की उर्वरता बढ़ाने तथा बीज की किस्म सुधारने के लिए प्रयोग भी करते हैं। इन्होंने फसलों की कुछ ऐसी किस्मों की खोज की है, जिनमें कीड़े-मकोड़े, बीमारियां, आदि नहीं लगती। उदाहरण के लिए, भारतीय कृषि-अनुसंधान-संस्थान ने गेहूं की कुछ ऐसी किस्मों की खोज की है जिनकी पैदावार खूब होती है और जिनमें कीड़े-मकोड़े और बीमारियां नहीं लगती। कोयम्बुत्तूर के गन्ना-अनुसंधान-संस्थान ने गन्ने की दो किस्मों की खोज की है, जिनसे प्रति एकड़ पैदावार डेढ़-गुना से भी अधिक बढ़ जाती है। इसी तरह, ज्वार बाजरा, दालें, कन्द, सब्जियां, कपास तथा पटसन-जैसी फसलों की उपज में भी वृद्धि हुई है। केन्द्र तथा राज्य-सरकारों-द्वारा चलाए जा रहे अनुसंधान-केन्द्रों को दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में मदद करने की व्यवस्था है।

वन

वन राष्ट्रीय सम्पत्ति के महत्वपूर्ण अंग हैं। भूमि की उर्वरता कायम रखने के अतिरिक्त, वनों से ईंधन और इमारती लकड़ी तथा कुछ अन्य छोटे-मोटे उत्पादन—जैसे, बांस, चारा, लाख, गोंद, राल, रंग और चमड़ा कमाने की छाल—प्राप्त होते हैं।

भारतीय वनों का कुल क्षेत्रफल लगभग २.६९ लाख वर्गमील है, जो देश की कुल भूमि का लगभग २१.३ प्रतिशत है। अन्य अधिकांश देशों के मुकाबले भारत में बहुत थोड़े वन हैं। इसलिए १२ मई, १९५२ के 'वन-नीति-विषयक प्रस्ताव' में यह कहा गया था कि भारत की कुल भूमि के एक-तिहाई भाग में वन लगाए जाएं।

पहली पचवर्षीय योजना में लकड़ी पर निर्भर करनेवाले उद्योगों के लिए बगान लगाने तथा वनो में सामान्य रूप से सुधार करने पर ज़ोर दिया गया था। दूसरी पचवर्षीय योजना में लगभग ४ करोड़ एकड़ ज़मीन्दारी-वनों का, जो अब राज्य-सरकारो के अधिकार में हैं, सीमांकन, पुन स्थापन तथा विकास करने का विचार है। इस योजना में वनों तथा भूमि-सरक्षण के लिए क्रमश २४ करोड रु० तथा २० करोड रु० की व्यवस्था है। पहली पचवर्षीय योजना में इन दोनो मदो के लिए कुल १३ करोड रु० ही रखे गए थे। इस कार्यक्रम मे लगभग ३,८०,००० एकड उजडे वनो मे सुधार करने, ५०,००० एकड भूमि में सागवान-जैसी व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लकड़ी के पेड़ लगाने तथा ४०,००० एकड भूमि मे दियासलाइ बनाने के काम आनेवाली लकड़ी के पेड लगाने की व्यवस्था है।

हर साल 'वन-महोत्सव' बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में लगभग बीस-पच्चीस करोड वृक्ष लगाए जा चुके है। इस क्षेत्र मे अनुसन्धान करने के लिए देहरादून-स्थित वन-अनुसधान-सस्थान बडा उपयोगी कार्य कर रहा है।

पशुपालन तथा मुर्गीपालन

भारत मे हल, वगैरह चलाने के लिए अधिकतर पशुओं का ही उपयोग होता है। सन् १९५६ में हुई पशुगणना से प्रकट होता है कि भारत में १५ करोड ८७ लाख मवेशी (ससार के कुल मवेशियो का पाचवा हिस्सा), ४ करोड ४९ लाख भैस-भैसे, ३ करोड ९२ लाख भेडे, ५ करोड ५४ लाख बकरे-बकरिया, १५ लाख घोडे-टट्टू तथा ६८ लाख अन्य पशु (खच्चर, गधे, ऊट और सूअर) थे। परन्तु हमारे देश में चारे के साधन पर्याप्त न होने के कारण पशुओ की इतनी बड़ी सख्या सिर-दर्द बनी हुई है।

इसके अतिरिक्त, भारत के पशुओ की नस्ल अच्छी नही है। इसके प्रमुख कारण ये है: उनका अभिजनन अच्छे ढग से नहीं किया जाता, पशु अनेक बीमारियों से ग्रस्त रहते है तथा उन्हें भर पेट चारा नही

मिलता। भारत मे एक गाय औसतन ४१३ पौड दूध प्रतिवर्ष देती है, जब कि कनाडा मे यह मात्रा ४,४०८ पौंड तथा आस्ट्रेलिया मे ४,४०२ पौड है। भारत मे दूध की औसत खपत लगभग ५ औंस प्रतिदिन प्रति व्यक्ति ही है, जब कि सन्तुलित पुष्टई के लिए हर व्यक्ति को प्रतिदिन कम-से-कम १५ औस दूध जरूर पीना चाहिए।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे पशुओ की स्थिति मे सुधार करने के लिए कुछ योजनाए शुरू की गई थी। इनमे पशु-विकास के लिए 'केन्द्रग्राम-योजना', बूढे और बेकार पशुओ को रखने के लिए दूर-दूर के जंगलो-चरागाहो मे गोसदनो की स्थापना, महामारी (रिडरपेस्ट) की रोकथाम के लिए आन्दोलन, तथा पशु-चिकित्सा के लिए औषधालयो की सख्या मे वृद्धि करने-जैसे कामो की व्यवस्था थी।

'केन्द्रग्राम-योजना' का उद्देश्य देश-भर मे कुछ ऐसे केन्द्र खोलना है, जहा अच्छी नस्ल के साडो-द्वारा अभिजनन-कार्य करवाया जाएगा। उस क्षेत्र मे जितने भी निकृष्ट साड होगे, उनको वहा से हटा दिया जाएगा या बधिया कर दिया जाएगा। भारत मे उत्कृष्ट साडो की सख्या बहुत कम है, इसलिए उनका सदुपयोग करने के उद्देश्य से कृत्रिम गर्भाधान का भी सहारा लिया जा रहा है। पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे ६०० 'केन्द्रग्राम' तथा १५० कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्र स्थापित किए गए। दूसरी पचवर्षीय योजना मे १,२५८ 'केन्द्रग्राम', २४५ कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्र तथा पचास-पचास साडोवाले २५४ विस्तार-केन्द्र स्थापित किए जाएगे। पहली पचवर्षीय योजना मे २५ गोसदन बनाए गए, दूसरी पचवर्षीय योजना में ६० गोसदन और बनाने का विचार है। इन सबके अतिरिक्त, ३५० पशु-फार्मों को अभिजनन तथा दुग्ध-इकाइयो मे भी परिणत किया जाएगा। आशा है कि पशु-चिकित्सा के लिए लगभग १,६०० पशु-चिकित्सालय भी खोले जाएगे।

दूध की आपूर्ति में सुधार करने के उद्देश्य से ३६ नागरिक दूध-आपूर्ति-योजनाएं, सहकारी ढंग पर मक्खन बनाने के कारखाने तथा

दूध का पाउडर बनाने के सयंत्र लगाने का विचार है। मुख्य-मुख्य नगरो में इस समय दुग्धशाला-योजनाए चल रही है।

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत पशुपालन तथा दूध-उद्योग के लिए कुल मिला कर ५६ करोड रु० की व्यवस्था है।

मुर्गीपालन के विकास-सम्बन्धी कार्यक्रमो के फलस्वरूप पौष्टिकता के मानदण्डो मे और सुधार होने की आशा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ५ प्रादेशिक विस्तार-फार्म तथा ३०० मुर्गीपालन-विस्तार-विकास-केन्द्र खोलने का विचार है।

इसी प्रकार, भेड़-विकास तथा ऊन-उत्पादन के लिए दूसरी पचवर्षीय योजना मे ४६० विस्तार-केन्द्र खोलने की व्यवस्था है।

मछलीपालन

भारत के विस्तृत समुद्री तट के अतिरिक्त, देश मे अनेक नदियां, झीले और तालाब है, जिनसे हमे बडे परिमाण मे मछलिया प्राप्त हो सकती है। इस समय देश मे प्रति वर्ष लगभग ११ लाख टन मछलिया पकडी जाती हैं। इनमें से ७० प्रतिशत मछलिया समुद्र से प्राप्त होती है। पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे मछली-उत्पादन मे १० प्रतिशत की वृद्धि हुई। अगले कुछ वर्षों मे मछली-उद्योग का और अधिक विकास करने का विचार है, जिसके लिए लगभग १२ करोड रु० की व्यवस्था कर दी गई है। आशा है कि दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे मछली-उत्पादन पहले से लगभग तीन-गुना बढ जाएगा।

अध्याय ५

सहकारिता

हमारा लक्ष्य देश में समाजवादी समाज की स्थापना करना है। इस नीति को अमली जामा पहनाने का सबसे शक्तिशाली उपकरण 'सहकारिता' है। सहकारिता एक ऐसा साधन है, जिसे अपना कर हम अनियंत्रित गैर-सरकारी उद्यम तथा सरकारी पूंजीवाद की बुराइयों से दूर रहते हुए एक मध्यम मार्ग से लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। सहकारिता से मैत्री, सौहार्द, परस्पर-विश्वास तथा सहानुभूति-जैसे नैतिक गुणों का विकास होता है और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए ये नितान्त आवश्यक हैं। सहकारिता को भारत में कल्याणकारी राज्य के 'कोने के पत्थर' की संज्ञा प्रदान की गई है और पंचवर्षीय योजनाओं में भी इसको एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया जा रहा है।

भारत में सहकारिता-आन्दोलन आज से ५६ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ, जब सन् १९०४ में सहकारिता की भावना ने मूर्त रूप ग्रहण किया और सर्वप्रथम सहकारी ऋण-समितियां-अधिनियम स्वीकार किया गया। सन् १९१२ में उत्पादन, क्रय-विक्रय, बीमा, आवास, आदि-जैसे क्षेत्रों में ऋण-भिन्न सहकारिता तथा पारस्परिक नियन्त्रण एवं लेखा-परीक्षण के निमित्त प्राथमिक सहकारी समितियों के संघ और प्राथमिक समितियों को ऋण देने के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बैंकों की स्थापना की विधिवत् व्यवस्था हुई। सन् १९१४ में मैगलेगन-समिति ने सिफारिश की थी कि सहकारिता-आन्दोलन में अधिक-से-अधिक गैर-सरकारी सहयोग लिया जाए। सन् १९३५ में भारत-सरकार ने रिज़र्व बैंक में एक कृषि-ऋण-विभाग खोला। सन् १९४५ में नियुक्त सहकारी योजना-समिति ने सिफारिश की कि प्राथमिक समितियों को बहुद्देश्यीय समितियों में बदल दिया जाए तथा १० वर्ष की अवधि में ५० प्रतिशत ग्रामीण तथा ३० प्रतिशत नागरिक

जनसंख्या को मान्यता-प्राप्त समितियों के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किया जाए।

ग्राम-ऋण का सर्वेक्षण

भारतीय रिजर्व बैंक ने सन् १६५१ के आरम्भ में ग्राम-ऋण के ढांचे तथा सहकारी आन्दोलन की स्थिति का विस्तृत सर्वेक्षण किया। बैंक की रिपोर्ट दिसम्बर १६५४ में प्रकाशित हुई। इस सर्वेक्षण से पता चला कि सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति का एक प्रमुख कारण यह है कि केन्द्रीय और राज्यीय बैंक प्राथमिक समितियों को बहुत थोड़ी सहायता देते हैं और इन बैंकों को भी सरकार से पर्याप्त सहायता नहीं मिलती। समिति ने जो योजना सामने रखी, उसकी मोटी रूपरेखा इस प्रकार थी : सहकारी समितियों में विभिन्न स्तरों पर सरकार प्रमुख भाग ले तथा सरकार और रिजर्व बैंक आपस में और अधिक सहयोग से काम करें। राज्यीय सहकारी बैंकों तथा भूमि-बंधक बैंकों की हिस्सा-पूंजी में इस आधार पर वृद्धि की जाए कि ५१ प्रतिशत हिस्सों का स्वामी राज्य हो। केन्द्रीय बैंकों और बड़ी-बड़ी प्राथमिक समितियों में भी राज्यीय बैंकों के माध्यम से इसी प्रकार का सहयोग होना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो इस सहयोग के लिए धन की व्यवस्था रिजर्व बैंक राज्य-सरकारों को एक 'राष्ट्रीय कृषि-ऋण-निधि' में से दीर्घकालीन ऋण देकर करे। इस निधि में शुरू में रिजर्व बैंक ५ करोड़ रु० दे तथा इसके बाद हर साल इतनी ही रकम देता रहे।

भारत-सरकार ने इन सिफारिशों में से अधिकांश को स्वीकार कर लिया। सबसे पहले सहकारी समितियों को ऋण सुलभ करने के उद्देश्य से 'भारतीय रिजर्व बैंक-अधिनियम' में संशोधन किया गया तथा फरवरी, १६५६ में १० करोड़ रु० की आरम्भिक पूंजी से 'राष्ट्रीय कृषि-ऋण (दीर्घकालीन कार्य) निधि' की स्थापना की गई। इस निधि में योजना की अवधि में हर वर्ष पांच-पांच करोड़ रु० जमा किए जाते रहेंगे, ताकि सन् १६६०-६१ तक इस निधि की पूंजी ३५

करोड रु० हो जाए । यह बैंक राज्यो को ऋण देगा, जो आगे इस धन से सहकारी समितियो की हिस्सा-पूंजी खरीदेगे ।

१ जुलाई, १९५५ से 'इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया' का राष्ट्रीय-करण करके उसे 'भारतीय स्टेट बैंक' बना दिया गया तथा बैंक की ४०० नई शाखाए खोलने का एक कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसमे यह बैंक और रिज़र्व बैंक मिल कर ग्राम-ऋण के क्षेत्र मे अधिक प्रभावशाली ढग से योग दे सके (बैंक ने १७ दिसम्बर, १९५६ तक ३५६ शाखाए खोली) ।

१ सितम्बर, १९५६ को 'राष्ट्रीय सहकारी विकास और गोदाम-बोर्ड' की स्थापना की गई । इसका उद्देश्य सामान्यत सहकारिता का विकास तथा विशेषत भडार, विधायन और हाट-व्यवस्था की उन्नति मे सहायता प्रदान करना है ।

विस्तार-कार्यक्रम

दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे देश-भर मे १०,४०० बडी सहकारी समितिया तथा १,८०० हाट-व्यवस्था-समितिया स्थापित करने तथा वर्तमान समितियो को सुदृढ बनाने का लक्ष्य है । इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय और राज्यीय गोदाम-निगमो तथा हाट-व्यवस्था समितियो और बडी समितियो की मार्फत ३५० बड़े गोदाम तथा ५,५०० छोटे गोदाम बनाने का निश्चय किया गया है ।

उत्पादन में वृद्धि करने तथा हाट-व्यवस्था को सुदृढ बनाने की ओर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है । अतीत काल में भारत मे सहकारिता-आन्दोलन की धीमी प्रगति का एक प्रमुख कारण यह था कि किसान लोग ज़मानत या उतने ही मूल्य की सम्पत्ति दिखाए बिना समितियो से ऋण नही ले सकते थे । परन्तु जब देश मे बहुत-से गोदाम तथा हाट-व्यवस्था-समितिया स्थापित हो जाएगी, तब किसान न केवल गोदाम में रखी अपनी उपज के बराबर ऋण ले सकेंगे, बल्कि उन्हें किसी भी मौसम मे अपनी फसल की अच्छी-से-अच्छी कीमत भी मिल सकेगी ।

ऋण-समितियो तथा ऋणेतर-समितियो के बीच गोदाम-व्यवस्था-द्वारा महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जाएगा । ग्राम-ऋण-समितियो को मडियो मे काम करनेवाली प्राथमिक हाट-व्यवस्था-समितियों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाएगा । हाट-व्यवस्था-समितिया गोदाम बनवाएगी, जिनमें उपज को संजो कर रखा जाया करेगा और इस उपज की ज़मानत पर तथा प्रत्याशित उपज के आधार पर किसानो को ऋण दिया जाएगा । दीर्घकालीन, मध्यमकालीन और लघुकालीन ऋण के रूप मे २२५ करोड रु० देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

जहा तक विधायन-उद्योग की सम्बन्ध है, दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे चीनी के ३५ कारखाने, बिनौले निकालने के ४८ सहकारी कारखाने तथा ११८ अन्य सहकारी विधायन-समितिया बनाने का विचार है। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक आवास, श्रम तथा खपत-सम्बन्धी सहकारी समितिया बनाने की भी सिफारिश की गई है।

सहकारी समितियो की स्थिति

सन् १९५७-५८ मे देश में कुल २,५७,८२२ सहकारी समितिया थी तथा उनकी कार्य-सचालन पजी ६९६ ४६ करोड रु० थी। ५ व्यक्तियो के एक औसत परिवार को आधार मान कर अनुमान लगाया गया है कि जून १९५८ के अन्त तक साधारणत १० ७५ करोड व्यक्तियो, अर्थात् २७ प्रतिशत भारतीय जनता को सहकारिता-आन्दोलन का लाभ मिलने लगा था।

ऋण देनेवाली समितिया

भारत में सर्वप्रथम जो सहकारी समितिया बनी, वे ऋण-समितिया थी; आज भी वही सबसे महत्वपूर्ण समितिया हैं। ऋण-समितियो का ढाचा त्रि-स्तरीय है . राज्य-स्तर पर राज्यीय सहकारी बैंक, जिला-स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा ग्राम-स्तर पर प्राथमिक कृषि-ऋण-समितियां । कुछ राज्यो मे अनाज-बैंक कृषको को सामान के रूप में

ऋण देते हैं। कृषि के लिए दीर्घकालीन ऋण केन्द्रीय और भूमि-बधक बैंक तथा नागरिक जनता को बैंकिंग और ऋण की सुविधाए नागरिक बैंक और कर्मचारी ऋण-समितिया प्रदान करती हैं। सन् १९५७-५८ मे देश मे २१ राज्यीय सहकारी बैंक तथा ४१८ केन्द्रीय सहकारी बैंक थे, जिनकी सदस्य-सख्या क्रमश ३२,१८१ तथा ३,२२,८११ थी।

इसके अतिरिक्त, जून १९५८ के अन्त में देश मे १,६६,५४३ कृषि-ऋण-समितिया (सदस्य-सख्या १,०२,२१,२४९), ९,५४९ अनाज-बैंक (सदस्य-सख्या १०,८६,०००) तथा १०,४३० कृषीतर ऋण-समितिया (सदस्य-सख्या ३६,७४,०००) थी। सन् १९५७-५८ मे देश में ३४७ प्राथमिक भूमि-बधक बैंक (सदस्य-सख्या ३,७५,९८०) थे।

ऋणेतर समितिया

देश मे विभिन्न प्रकार की ऋणेतर-समितिया कार्य कर रही हैं—यथा, हाट-व्यवस्था-समितिया, गन्ना-उपलब्धि-समितिया, दुग्ध-समितिया, कृषि-समितिया, सिचाई-समितिया, कपास-समितिया, विधायन-समितिया, बुनकर-समितिया, उपभोक्ता-समितिया, आवास-समितिया मछुआ-समितिया, बीमा-समितिया, आदि।

अन्य समितिया

सन् १९५७-५८ मे देश मे ७३४ निरीक्षक-सघ तथा २६ राज्यीय सघ और राज्यीय सस्थान भी थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत मे सहकारिता-आन्दोलन अच्छी प्रगति कर रहा है। आशा है कि देश मे समाजवादी समाज की स्थापना करने की दिशा मे इससे उत्तरोत्तर अधिक योग मिलेगा।

अध्याय ६

भूमि-सुधार

भूमि भारत की अर्थ-व्यवस्था की नीव है । इसलिए कृषि-विकास में भूमि-सुधार का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। भूमि का स्वामित्व तथा कृषि—ये दो ऐसे प्रश्न है, जिन पर गावो की सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति निर्भर करती है।

भारत की वर्तमान भूमि-समस्या का इतिहास १८-वी शताब्दी से आरम्भ होता है, जब ब्रिटिश ईस्ट इडिया कम्पनी ने जमीदारो के साथ एक 'स्थायी बन्दोबस्त' किया और भूमि पर उनके स्वामित्व को स्वीकार किया । बिचौलियो के इस वर्ग ने अपने विशेषाधिकारो का दुरुपयोग करने मे कोई कसर नही उठा रखी । उन्होने लगान की रकम बढा दी और काश्तकारो को बेदखल करना शुरू किया। इसके बाद किसानो की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के छिटपुट प्रयत्न होते रहे, किन्तु बडे पैमाने पर सुधार स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद ही आरम्भ हुए।

पहली पचवर्षीय योजना बनाते समय योजना-आयोग ने अपने भूमि-सुधार-कार्यक्रम मे दो लक्ष्य रखे थे—एक तो, भूमि के ढाचे मे सुधार, और दूसरा, एक सक्षम भूमि-अर्थ-व्यवस्था का विकास। इन दोनो का आपस मे घनिष्ठ सम्बन्ध है । योजना-आयोग ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य रखे .

(१) राज्य तथा किसानों के बीच के सभी बिचौलियो का उन्मूलन ,

(२) लगान मे कमी करने, पट्टे की सुरक्षा प्रदान करने तथा काश्तकारो को वह भूमि, जिसमे वे खुद काश्त करते है, खरीदने का अवसर प्रदान करने के लिए व्यवस्था,

(३) जोतो की अधिकतम सीमा का निर्धारण, तथा

(४) खेतों के छोटे-छोटे टुकडे बनाने पर प्रतिबन्ध तथा

सहकारी खेती का विकास, जिससे अन्ततः सहकारी ग्राम-प्रबन्ध का लक्ष्य पूरा हो।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में, यथावश्यक परिवर्तनों के उपरान्त इस नीति का पुनः निरूपण किया गया। भूमि-नीति का प्रमुख उद्देश्य यह है कि एक तो कृषि-व्यवस्था के कारण कृषि-उपज के मार्ग में आने-वाली अड़चनों को हटाया जाए और समाज की प्रतिष्ठा समानता के आधार पर हो।

बिचौलियों का उन्मूलन

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में राज्य तथा काश्तकार के बीच के सब बिचौलियों का उन्मूलन करने के उद्देश्य से सभी राज्यों में कानून बनाए गए, जिन्हें लगभग पूरी तरह लागू भी किया गया। इसके परिणाम-स्वरूप, जहां पहले बिचौलियों के पास देश की कृषि-भूमि का लगभग ४३ प्रतिशत भाग था, वहां उनके पास ८.५ प्रतिशत भूमि ही रह गई।

परन्तु जिन स्थानों पर बिचौलियों का उन्मूलन कर दिया गया है, वहां उन्हें हर्जाना भी दिया जा रहा है। अनुमान है कि इस मद में लगभग ६२२.७४ करोड़ रु० खर्च करने पड़ेंगे। इसमें से लगभग १२८.३८ करोड़ रु० दिए भी जा चुके हैं। परती भूमि को हस्तगत करके सरकार स्वयं या ग्राम-पंचायतों के जरिए उसका प्रबन्ध करवा रही है।

काश्त-सम्बन्धी सुधार

योजना-आयोग ने काश्त-सम्बन्धी सुधार करने के लिए जो सिफारिशें की हैं, उनका मुख्य उद्देश्य (१) लगान में कमी करना, (२) पट्टे की सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, तथा (३) काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार प्रदान करना है।

विभिन्न राज्यों में काश्तकारों को पट्टे की जो सुरक्षा प्रदान की गई है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

असम में कोई ज़मींदार खुद काश्त के लिए ३३ १/३ प्रतिशत तक भूमि (न्यूनतम सीमा ३ १/३ एकड़ है) काश्तकारों से ले सकता है। यदि

काश्त का खर्च जमींदार उठाता है, तो लगान एक-चौथाई से अधिक नहीं होगा। अन्य मामलो में यह मात्रा एक-पचमांश होगी। स्थायी बन्दोबस्त वाले क्षेत्रो मे रैयत-द्वारा देय नकद लगान उसके जमीदार-द्वारा देय मालगुजारी के १०० प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए, अस्थायी बन्दोबस्त-वाले क्षेत्रो मे यह सीमा ५० प्रतिशत है। उन जमीदारो को भूमि-अधिग्रहण का अधिकार दिया गया है, जिनकी आजीविका का मुख्य साधन कृषि है।

भूतपूर्व आध्र-क्षेत्र में इलाके-इलाके की दृष्टि से काश्तकारो को ३ से ६ वर्ष तक की सुरक्षा प्रदान की गई है। सरकारी सिचाई के साधनो के अन्तर्गत भूमि का लगान कुल उपज के ५० प्रतिशत से अधिक नही होगा। बिना सिचाई वाली भूमि मे लगान की मात्रा ४५ प्रतिशत है। तेलगाना-क्षेत्र मे काश्तकारो को दो वर्गों मे बाट दिया गया है—रक्षित तथा साधारण। रक्षित काश्तकारो को बेदखल नही किया जा सकता तथा ये लोग एक पारिवारिक जोत तक की मिल्कियत हासिल कर सकते है। वारगल जिले के मुलुग तालुके तथा खम्माम जिले मे समस्त रक्षित काश्तकारो को दखल दे दिया गया है। सिचाईवाली भूमि मे लगान कुल उपज का एक-चौथाई हिस्सा तथा अन्य मामलो मे एक-पचमांश हिस्सा निश्चित किया गया है।

उडीसा मे बेदखली रोकने की तारीख ३० जून, १९६१ तक बढा दी गई है। लगान, कुल उपज के चौथे हिस्से से अधिक—धान के मामले में एकड-पीछे ४-६ मन से अधिक—निश्चित नही किया जा सकता।

उत्तरप्रदेश मे समस्त काश्तकारो तथा उप-काश्तकारो को सीधे राज्य से सम्बद्ध कर दिया गया है। इनकी सख्या लगभग १५ लाख है। राज्य-सरकार जमीदारो को प्राप्त राजस्व मे से हर्जाना देगी।

केरल मे, वहा के कोचीन-क्षेत्र मे काश्तकारों को बेदखल नहीं किया जा सकता। बटाईदारों तथा काश्तकारों की बेदखली रोक दी गई है।

जम्मू-कश्मीर मे खुदकाश्त के लिए भूमि-अधिग्रहण की सीमा इस प्रकार है : कश्मीर प्रान्त मे सिंचित भूमि के २ एकड़ अथवा असिंचित

भूमि के ४ एकड एवं जम्मू प्रान्त में सिंचित भूमि के ४ एकड अथवा असिंचित भूमि के ६ एकड़। १२ १/२ एकड से अधिक भूमि के स्वामी काश्तकारो को सिंचित भूमि में कुल उपज के आधे तथा असिचित भूमि मे एक-तिहाई भाग से अधिक लगान नही देना पड़ता।

भूतपूर्व पंजाब-क्षेत्र मे काश्तकारो को सुरक्षा प्रदान की गई है, पर जमीदार को ३० स्टैंडर्ड एकड तक भूमि रखने का अधिकार है, बशर्तेकि इससे काश्तकार के पास ५ एकड से कम जमीन न रहे। ३ दिसम्बर, १६५३ को जिन काश्तकारो के पास १२ वर्ष तक लगातार जमीन रही है, उन्हे १५ स्टैंडर्ड एकड तक भूमि से बेदखल नही किया जा सकता। लगान कुल उपज का एक-तिहाई हिस्सा निश्चित किया गया है। इसके अतिरिक्त, पजाब-भर मे काश्तकारो को स्वेच्छया जमीन खरीद लेने का भी अधिकार है।

पश्चिम-बगाल मे सब रैयतो और उप-रैयतो को सीधे सरकार के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। ७ १/२ एकड से कम भूमि तक के जमीदार बर्गादारो से जमीन ले सकते है तथा अन्य जमीदार दी हुई जमीन का दो-तिहाई हिस्सा ले सकते हैं। यदि काश्त मे जमीदार का खर्च लगता है, तो कुल उपज मे उसका हिस्सा ५० प्रतिशत अन्यथा ४० प्रतिशत से अधिक नही होगा।

बम्बई के भूतपूर्व इलाके मे एक जमीदार को ५० प्रतिशत भूमि लेने का अधिकार था, बशर्तेकि उसकी खुदकाश्त की जमीन-समेत वह तीन आर्थिक जोतो (१२–४२ एकड) से अधिक न हो। बेदखली-वाले इलाको मे १ अप्रैल, १६५७ से काश्तकारो को स्वामित्व-अधिकार दे दिए गए है (एक आर्थिक जोत—३–१२ एकड़—से कमवाले जमीदारो को छोड कर)। इस प्रकार, लगभग १३ लाख काश्तकारो को स्वामित्व-अधिकार मिला। मराठवाडा-इलाके मे वही व्यवस्था है, जो आंध्रप्रदेश के तेलगाना-क्षेत्र मे है, विदर्भ तथा कच्छ-क्षेत्र मे बेदखली नही की जा सकती, हा, जमीदार खुदकाश्त के लिए ३ पारिवारिक जोतो तक भूमि ले सकता है। काश्तकारों को भूमि खरीद लेने का भी अधिकार है परन्तु जमीदार के पास १ पारिवारिक जोत रह जानी चाहिए।

बिहार में यदि १२ वर्ष तक किसी उप-काश्तकार का कब्जा रहे, तो वह उसे प्राप्त कर सकता है। यदि रजिस्टर-शुदा पट्टे पर भूमि हो, तो नकद लगान, कुल लगान के ड्योढ़े से अधिक नहीं लिया जा सकता। अन्य मामलों में यह वृद्धि २४ प्रतिशत ही मानी गई है।

मद्रास में सिंचित भूमि में कुल पैदावार का ४० प्रतिशत, अन्यथा ३३ १/३ प्रतिशत, से अधिक लगान नहीं लिया जा सकता।

मध्यप्रदेश में एक जमींदार को २५ एकड तक भूमि लेने का अधिकार है। लगान मालगुजारी के दुगुने या चौगुने से अधिक निश्चित नहीं किया जा सकता।

मैसूर में सन् १६५६ में काश्तकारों की बेदखली रोकने के सम्बन्ध में एक अन्तरिम उपाय किया गया। कुर्ग में लगान की मात्रा उपज का एक-तिहाई हिस्सा निर्धारित की गई। अन्य भागों में लगान की मात्रा भिन्न-भिन्न है— यथा, भूतपूर्व बम्बई-क्षेत्र में उपज का १/६ हिस्सा तथा भूतपूर्व मद्रास-क्षेत्र में सिंचित भूमि में उपज का २/५ हिस्सा।

राजस्थान में १,२०० रु० तक वार्षिक आयवाली जमीन काश्तकार को ले लेने का अधिकार है। इससे अधिक जमीन जमींदार ले सकता है।

जहां तक संघीय क्षेत्रों का सम्बन्ध है, दिल्ली में यदि काश्तकार मालगुजारी के ४-गुना से ४८-गुना तक कीमत अदा कर दे, तो वह स्वामित्व-अधिकार प्राप्त कर सकता है। हिमाचलप्रदेश में काश्तकार हर्जाना देकर स्वामित्व-अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। उधर जमींदार खुदकाश्त के लिए ५ एकड तक भूमि अधिग्रहण कर सकता है। लगान कुल उपज के १/४ हिस्से से अधिक नहीं लिया जा सकता। मणिपुर में काश्तकारों को बेदखल करने पर रोक लगा दी गई है।

जोतों का सीमा-निर्धारण

जोतों का सीमा-निर्धारण दो प्रकार का होता है: भविष्य के लिए तथा वर्तमान जोतों का। अधिकांश राज्यों में भविष्य के लिए जोतों की सीमा निर्धारित कर दी गई है। असम में यह अधिकतम सीमा

५० एकड, आध्रप्रदेश के तेलगाना-क्षेत्र मे १२–१८० एकड; उत्तर-प्रदेश मे १२ १/२ एकड, जम्मू-कश्मीर मे २२ ३/४ एकड; पजाब मे ३० स्टैंडर्ड एकड, पश्चिम-बगाल मे २५ एकड, बम्बई के भूतपूर्व बम्बई-क्षेत्र मे १२–४२ एकड, मराठवाडा-क्षेत्र मे १२–१८० एकड, सौराष्ट्र-क्षेत्र मे ६०–१२० एकड, विदर्भ-क्षेत्र मे २१–१२० एकड और कच्छ-क्षेत्र मे ३६–१३५ एकड, मैसूर (भूतपूर्व बम्बई-क्षेत्र) मे १२–४८ एकड और भूतपूर्व हैदराबाद-क्षेत्र मे १२–१८० एकड, राजस्थान मे ३०–६० एकड, तथा दिल्ली मे ३० स्टैंडर्ड एकड निश्चित की गई है।

वर्तमान जोतो के सम्बन्ध मे अधिकतम सीमा इस प्रकार है असम मे ५० एकड़, आध्रप्रदेश के तेलगाना-क्षेत्र मे १८–२७० एकड, जम्मू-कश्मीर मे २२ ३/४ एकड, पजाब के पेप्सू-क्षेत्र मे ३० स्टैंडर्ड एकड (विस्थापितो के लिए ४० स्टैंडर्ड एकड़), पश्चिम-बगाल मे २५ एकड़, बम्बई के मराठवाडा-क्षेत्र मे १८–२७० एकड, विदर्भ-क्षेत्र मे ४२–२४० एकड, और कच्छ-क्षेत्र मे ७२–२७० एकड, मैसूर के भूतपूर्व हैदराबाद-क्षेत्र मे १८-२७० एकड, तथा हिमाचलप्रदेश के चम्बा जिले मे ३० एकड और अन्य क्षेत्रो मे १२५ रु० मालगुजारी के अन्तर्गत आनेवाली भूमि।

चकबन्दी

पहली तथा दूसरी पचवर्षीय योजनाओ मे चकबन्दी पर काफी ज़ोर दिया गया है।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे उत्तरप्रदेश मे ४४ लाख एकड़, पजाब मे ४८ लाख एकड, पेप्सू मे १३ लाख एकड, मध्यप्रदेश मे २६ लाख एकड; तथा बम्बई में २१ लाख एकड भूमि की चकबन्दी की गई। दूसरी पचवर्षीय योजना मे लगभग ३ ६ करोड एकड भूमि की चकबन्दी करने का लक्ष्य रखा गया है। इसमे से ३० जून, १६५६ तक विभिन्न राज्यो मे लगभग १ ६२ करोड एकड भूमि मे चकबन्दी हो चुकी थी तथा लगभग १ ०५ करोड़ एकड़ भूमि मे कार्य जारी था।

इसके अतिरिक्त, जोतो को छोटे-छोटे टुकडो मे बांट देने की प्रवृत्ति पर भी रोक लगाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।

सहकारी खेती

जैसा कि दोनो पचवर्षीय योजनाओ मे कहा गया है, भूमि-समस्या का पूरा समाधान सहकारी ढग से ही किया जा सकता है। वास्तव मे, हमारा उद्देश्य यह है कि दस वर्ष की अवधि मे अधिकाश भूमि में सहकारी ढग की खेती शुरू हो जाए। पहली पचवर्षीय योजना मे कहा गया था कि छोटे तथा मध्यम श्रेणी के किसान सहकारी खेती के माध्यम से ही बडे-बडे खेतो की व्यवस्था कर सकते हैं और इसी दशा मे भूमि की उत्पादकता मे वृद्धि करना, अधिक पूजी लगाना तथा वैज्ञानिक अनुसधानो का पूरा-पूरा लाभ उठाना सम्भव हो सकता है। इस अवधि मे लगभग सभी राज्यो ने सहकारी कृषि-समितिया बनाने के लिए कानून, आदि बनाए। दूसरी पचवर्षीय योजना मे भी सहकारी कृषि के विकास के लिए सुदृढ आधार-भूमि तैयार करने के कार्य को प्रमुखता दी गई है।

एक विशेषज्ञ-दल ने सन् १९५६ मे चीन की कृषि-प्रणाली का अध्ययन करने के बाद यह सुझाव दिया था कि भारत में आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो को देखते हुए देश मे सहकारी ढग से कृषि होनी चाहिए।

राष्ट्रीय विकास-परिषद् की स्थायी समिति ने सितम्बर १९५७ मे निश्चय किया था कि दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे ३,००० सहकारी फार्म स्थापित किए जाए।

२८ मार्च, १९५९ को लोकसभा में स्वीकृत एक गैर-सरकारी प्रस्ताव के अनुसार, यह स्वीकार किया गया कि देश मे सहकारी कृषि की पद्धति लागू करने से पूर्व सेवा-सहकारी समितिया बनाई जाएं। कृषि-समितियों को वित्तीय और अन्य सुविधाए, आदि उपलब्ध कराने के लिए एक कार्यक्रम बनाने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने जून १९५९ में एक अध्ययन-दल नियुक्त किया। १५ फरवरी, १९६० को

प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में इस दल ने एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है तथा सुझाव दिया है कि अगले चार वर्षों में चुने हुए खंडो में नमूने की ३२० परियोजनाए आरम्भ की जाए।

अनुमान है कि ३० जून, १९५८ को देश में २,४४२ सहकारी समितिया थी तथा लगभग ३,३३,८०० एकड भूमि मे सहकारी ढग से कृषि होती थी।

भूदान

भूदान-आन्दोलन की कल्पना सर्वप्रथम आचार्य विनोबा भावे ने सन् १९५१ के आरम्भ मे की थी । भूमि-सुधार की दिशा में यह एक बडा महत्वपूर्ण कदम था । इस आन्दोलन के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए आचार्य विनोबा कहते हैं— "न्याय और समानता के सिद्धान्त पर आधारित समाज मे भूमि सबकी होनी चाहिए । इसलिए हम भूमि की भिक्षा नही माग रहे, बल्कि उन गरीबो का हिस्सा माग रहे है, जो भूमि प्राप्त करने के सच्चे अधिकारी हैं ।" वास्तव में, इस आन्दोलन का उद्देश्य बिना किसी प्रकार के भीषण सघर्ष के देश मे सामाजिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था को समाप्त करना है ।

व्यावहारिक रूप मे भूदान-आन्दोलन का अर्थ भूमिहीन व्यक्तियो मे बाटने के लिए लोगो से अपनी भूमि के छठे भाग का स्वेच्छा से दान करने का अनुरोध करना है । कृषि-भिन्न क्षेत्रो मे यह आन्दोलन सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, जीवनदान, साधनदान तथा गृहदान का रूप ले लेता है ।

आचार्य विनोबा भावे ने लगभग ५ करोड एकड भूमि एकत्र करने का लक्ष्य बनाया है, ताकि प्रत्येक ग्रामीण परिवार को कृषि के लिए कुछ-न-कुछ भूमि दी जा सके। इस आन्दोलन ने अब ग्रामदान का व्यापक रूप धारण कर लिया है।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे यह स्वीकार किया गया है कि ग्राम-दानवाले गावो के विकास के सम्बन्ध मे जो व्यावहारिक सफलता प्राप्त होगी, वह सहकारी रूप से ग्राम-विकास के क्षेत्र में पर्याप्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी । इसलिए सामुदायिक विकास-खड स्थापित करने और

सामुदायिक विकास के अन्य कार्य आरम्भ करने के सम्बन्ध में ग्रामदान-वाले गावों को प्राथमिकता देने का निश्चय किया गया है।

भूदान-आन्दोलन की उन्नति के लिए राज्य-सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार, दोनो वित्तीय सहायता प्रदान कर रही हैं।

अनुमान है कि ३० नवम्बर, १९५९ तक ४४,०९,६३६ एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी थी। इसमे से लगभग ८,४१,००० एकड भूमि बाटी गई। इसके अतिरिक्त, ४,५६५ गांव ग्रामदान मे मिले।

अध्याय ७

सिंचाई और बिजली

भारत की अर्थ-व्यवस्था वर्षा पर निर्भर करती है। देश के अधिकाश भागो मे कुछ ही महीने वर्षा पड़ती है। फिर, केवल हिमालय से निकलने-वाली नदियो में ही बर्फ पिघलने से बारहो महीने पानी आता है। इसलिए, हर बुवाई के मौसम मे यदि हमे वर्षा की ही कृपा पर निर्भर नही रहना है, तो इसके लिए बडे पैमाने पर सिचाई की सुविधाओ की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र मे भारत तभी प्रगति कर सकता है, जब सिचाई के साधनो का समुचित विकास हो तथा सस्ती बिजली भी सुलभ होने लगे।

भारत में प्राचीन काल से सिचाई होती आई है। प्राचीन बाधो, नालियो, बधारो तथा सिचाई की नहरो के भग्नावशेष अब भी देश के विभिन्न भागो मे मिल जाते है। हाल मे, सरकार ने भी इस दिशा मे काफी कार्य किया है और अनेक स्थानो पर सिचाई की सुविधाए सुलभ हो गई है। यो तो, अन्य देशो के मुकाबले भारत में सबसे अधिक भूमि मे सिचाई की जाती है, फिर भी देश की कृषि-भूमि के लगभग पाचवे भाग मे ही सिचाई की सुविधाए सुलभ है।

अनुमान है कि हर साल भारत की नदियो मे लगभग १३६ करोड एकड-फुट पानी बहता है। इसमे से सिचाई और बिजली पैदा करने के लिए (सन् १६५१ में) लगभग ६.५ प्रतिशत पानी का ही इस्तेमाल होता है। बाकी पानी बह कर बेकार चला जाता है और अक्सर, समुद्र मे जाकर गिरने से पहले, बडी तबाही मचाता है।

भारत के जल-साधनो तथा नदी-घाटियो का समुचित विकास और उपयोग करने का काम केन्द्रीय जल और बिजली-आयोग के जिम्मे है। हर साल देश के कई इलाको को विनाशकारी बाढ का सामना करना पड़ता है और यह बात देश के लिए एक बड़ी विकट समस्या बन गई है। अत

बाढ की रोकथाम के लिए एक केन्द्रीय बाढ-नियन्त्रण-बोर्ड है । राज्यो में भी बाढ-नियन्त्रण-बोर्ड है ।

पहली पचवर्षीय योजना

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे नदी-घाटियो का सुसगठित विकास करने के लिए योजनाए बना कर भारत के जल-साधनो को सुरक्षित रखने और उनका विकास करने के लिए प्रयत्न किए गए । वास्तव मे, उद्देश्य यह था कि जलाशय बना कर नदियो के पानी को, जिससे वर्षा-ऋतु मे चारो ओर तबाही मच उठती है, जमा किया जाए और उससे सिचाई, बिजली, भूमि-सरक्षण, जहाजरानी, मछलीपालन और परिवहन के विकास के अतिरिक्त, बाढ की रोकथाम भी की जा सके । इस कार्य के लिए एक बडा महत्वाकाक्षी कार्यक्रम बनाया गया । कुल २२६ सिचाई-परियोजनाए आरम्भ की गई, जिनमे भाखडा-नगल, हीराकुड, तुगभद्रा तथा दामोदर-घाटी, आदि बडी और बहुमुखी परियोजनाए थी तथा उन पर लगभग पचास-पचास करोड रुपये खर्च होने का अनुमान था । ६ मध्यम सिचाई-परियोजनाए भी थीं, जिन पर पाच-पाच करोड रुपये से भी अधिक व्यय होने का अनुमान था । इनमे काकडापारा, कोयना, चम्बल तथा लोअर भवानी अधिक उल्लेखनीय है । बाकी छोटी योजनाए थी, जिनमे से प्रत्येक पर दस लाख रुपये से पाच करोड रु० तक व्यय होने का अनुमान था । इसके अतिरिक्त, बहुत-सी छोटी सिचाई-परियोजनाए भी आरम्भ की गई । इनमे कुओ का निर्माण, तालाबो की मरम्मत तथा छोटी-छोटी नदियों पर सुधार कार्य-जैसे काम प्रमुख थे ।

सन् १९५५-५६ मे सब साधनों से लगभग ५ ६३ करोड एकड भूमि की सिचाई हो रही थी । देश की कुल कृषि-भूमि का यह लगभग १८ प्रतिशत भाग है ।

दूसरी पचवर्षीय योजना

दूसरी पंचवर्षीय योजना मे २०४ नई सिचाई-परियोजनाओ की

व्यवस्था है । ये परियोजनाए, पहली पचवर्षीय योजना मे शुरू की गई परियोजनाओ से अलग है । इनमें से अधिकाश मध्यम या छोटी किस्म की होगी; इसलिए उनसे तुरन्त लाभ मिलने लगेगा ।

दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि में सिचाई के लिए लगभग ३८१ करोड रु० व्यय करने का विचार है, जब कि पहली पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लगभग ३८४ करोड रु० की व्यवस्था की गई थी। इसके अतिरिक्त, ३,५८१ अतिरिक्त नलकूप (ट्यूबवेल) बनाने के लिए २० करोड रु० की भी व्यवस्था की गई है, जिनसे लगभग ९,१६,००० एकड भूमि मे सिचाई होगी । दोनो पचवर्षीय योजनाओ के कार्यक्रमो के फलस्वरूप देश मे लगभग १३ प्रतिशत तक पानी का उपयोग होने लगेगा ।

बिजली

भारत मे सन् १९२५ के आसपास बिजली पैदा करने की गति बडी शिथिल थी । उस समय देश मे बिजली की कुल स्थापित क्षमता १,६२,३४१ किलोवाट ही थी । पहली पचवर्षीय योजना के अन्त मे—जनवरी १९५६ मे—सार्वजनिक उपयोग के बिजलीघरो की स्थापित क्षमता २६,९४,८१७ किलोवाट तथा मार्च १९५९ में ३५,११,५८६ किलोवाट थी । इसी अवधि मे बिजली का उत्पादन ४५७ ५५ करोड किलोवाट-घण्टे मे बढ कर, १,२९९ ४ करोड किलोवाट-घण्टे हो गया, अर्थात् १८४ प्रतिशत की वृद्धि हुई । इस अवधि मे बाष्प, डीजेल तथा पनबिजली-सयत्रो की क्षमता मे क्रमश १३८, १५२ तथा १६४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारत के क्षेत्रफल और उसकी जनसख्या को देखते हुए बिजली-उत्पादन के क्षेत्र मे अभी बहुत काम बाकी है । भारत मे प्रति व्यक्ति वार्षिक बिजली-उत्पादन केवल ३९ किलोवाट-घण्टा है, जब कि नार्वे मे ७,७४०, कनाडा मे ५,७८०, ब्रिटेन म १,९१० तथा जापान मे ८७५ किलोवाट-घण्टा है । यह उल्लेखनीय है कि सन् १९२५ तक बिजली के विकास का काम मुख्य रूप से गैर-सरकारी कम्पनियो तक ही सीमित था ।

अधिकांश बिजलीघर तो नगरों में ही बिजली मुहय्या करते है, परन्तु कुछ बड़े बिजलीघर ग्रामीण क्षेत्रो में भी बिजली पहुंचाते हैं। सन् १९५६ मे भारत के २० हजार से कम आबादी के नगरो और गावो में से केवल ७,९६४ नगरो-गांवो मे ही बिजली पहुचती थी। आशा है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक गावो मे बिजली पहुचाने के कार्य-क्रम के अन्तर्गत लगभग १८,००० कस्बो और गावो मे बिजली पहुच जाएगी तथा प्रति व्यक्ति खपत बढ कर ५० यूनिट हो जाएगी। समस्त बडे-बडे नगरो और कस्बो में बिजली पहले से ही लगाई जा चुकी है। मार्च १९५९ के अन्त में विभिन्न जनसख्या के लगभग १५,००० नगरो-गावो मे बिजली की व्यवस्था थी।

पहली पचवर्षीय योजना मे बिजली-विकास को १४२ परियोजनाए थी। इनमे भाखडा-नंगल, हीराकुड, दामोदर-घाटी-निगम, चम्बल, रिहद, कोयना तथा कोसी बडी बहुद्देश्यीय नदी-घाटी-परियोजनाए थी। पहली योजना की अवधि मे निम्नलिखित मुख्य बिजली-परियोजनाए पूरी हुई तथा उन्होने काम शुरु किया—नगल (पजाब) स्थापित क्षमता ४८,००० किलोवाट, बोकारो (बिहार) १,५०,००० किलोवाट, चोल (कल्याण, बम्बई) ५४,००० किलोवाट, खापरखेडा (मध्यप्रदेश) ३०,००० किलोवाट, मोयार (मद्रास) ३६,००० किलोवाट, मद्रास नगर के बिजलीघर का विस्तार (मद्रास) ३०,००० किलोवाट, मचकुद (आन्ध्रप्रदेश-उडीसा) ३४,००० किलोवाट, पथरी (उत्तर-प्रदेश) २०,४०० किलोवाट, शारदा (उत्तरप्रदेश) ४१,४०० किलोवाट, सेनगुलम (केरल) ४८,००० किलोवाट, तथा जोग (मैसूर) ७२,००० किलोवाट।

दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे निम्नलिखित मुख्य परि-योजनाओ से इतनी बिजली मिलने लगेगी .

चालू योजनाएं—भाखडा-नगल . ५,५६,००० किलोवाट, हीराकुड (पहला चरण) १,२३,००० किलोवाट, कोयना २,४०,००० किलोवाट; रिहद १,००,००० किलोवाट, दामोदर-घाटी . १,००,००० किलोवाट, तथा पेरियार : १,०५,००० किलोवाट।

नई योजनाएं—तुगभद्रा ५७,००० किलोवाट, कुडा १,८०,००० किलोवाट, तथा हीराकुड (दूसरा चरण) · १,०६,००० किलोवाट ।

नदी-घाटी-परियोजनाए

भारत की कुछ मुख्य नदी-घाटी-परियोजनाओ का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

भाखड़ा-नंगल

भाखडा-नगल-परियोजना भारत की सबसे बडी बहुमुखी परियोजना है। इसमे ७४० फुट ऊचा बाध बनाया जाएगा, जो ससार का सबसे ऊचा सीधी ग्रेविटी का बाध होगा। इसमे लगभग ६५२ मील लम्बी नहरे तथा २,२०० मील से भी अधिक लम्बी वितरण-नहरे होगी । भाखडा-बाध सतलज नदी पर बन रहा है। इसका निर्माण सन् १९४६ मे आरम्भ हुआ था।

सन् १९५८-५९ मे भाखडा-नगल की नहर-शृखला से पजाब तथा राजस्थान मे लगभग १९ ६७ लाख एकड भूमि मे सिचाई की गई। यह नहर-शृखला लगभग ६७ ६ लाख एकड क्षेत्र मे फैली हुई है ।

अन्तत भाखडा मे बाध के दोनो ओर दो बिजलीघर बनाए जाएगे। इनके अतिरिक्त, नगल हाइडल चैनल पर भी दो बिजलीघर है । कुल मिला कर ६,०४,००० किलोवाट स्थापित क्षमता तथा ३,६६,००० किलोवाट स्थिर क्षमता का लक्ष्य है।

सारी परियोजना पर लगभग १७० करोड रु० खर्च होगे ।

हीराकुड-बांध

इस परियोजना मे महानदी पर बाध बाधा जाएगा और उडीसा मे ६,७०,००० एकड भूमि मे सिचाई होने लगेगी। बाध की नीव के पास के बिजलीघर की स्थापित क्षमता लगभग १,२३,००० किलोवाट होगी। मुख्य बाध १५,७४८ फुट लम्बा है, जिसके दोनो ओर १३ मील लम्बे डाइक है। नदी पर बननेवाला यह ससार का सबसे लम्बा बाध है और

इसमें लगभग ६६ लाख एकड-फुट पानी जमा हो सकेगा। मुख्य बाध तथा डाइक बन चुके हैं। नवम्बर १९५९ तक लगभग ३,३१,००० एकड भूमि में सिंचाई की सुविधाएं दी गई। बिजलीघर के चारो सयंत्र भी चालू हो गए हैं और कुछ कारखानों तथा नगरो को बिजली मुहय्या की जा रही है। इसके अतिरिक्त, लगभग ७५,००० किलोवाट की क्षमतावाले दो और बिजली-सयत्र लगाए जा रहे हैं।

अनुमान है कि इस परियोजना पर लगभग ७० ७८ करोड़ रु० का व्यय होगा।

दामोदर-घाटी

जब यह परियोजना पूरी हो जाएगी, तब इसमे तिलैया, कोनार, मैथन, तथा पचेत हिल पर पानी जमा करने के लिए एक-एक जलाशय-बाध होगा, तथा इनमे से तीन बाधो के साथ, १,०४,००० किलोवाट क्षमतावाले पनबिजलीघर, बोकारो, चन्द्रपुर और दुर्गापुर में तीन तापीय बिजलीघर, जिनकी कुल क्षमता ५,००,००० किलोवाट होगी, बिजली ट्रासमिट करनेवाला एक ग्रिड, तथा दुर्गापुर में एक सिंचाई-बराज होगा।

इस परियोजना पर लगभग १०५.३८ करोड रु० का व्यय होगा।

तुंगभद्रा

तुगभद्रा नदी पर ७,९४२ फुट लम्बा और १६२ फुट ऊचा बाध बनाया गया है। इसके दोनो ओर नहर-शृखला और बिजलीघर भी है। जुलाई १९५३ में इसका उद्घाटन किया गया था। जलाशय लगभग १४६ वर्गमील क्षेत्र मे होगा और उसमे अन्तत ३० लाख एकड-फुट पानी जमा हो सकेगा। दोनो ओर की नहर-शृंखलाओं से आंध्रप्रदेश तथा मैसूर राज्यों में लगभग ८,३०,००० एकड़ भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। अब तक नौ-नौ हजार किलोवाट की क्षमतावाले ४ बिजली-घर काम शुरू कर चुके है।

इस परियोजना पर लगभग ६० करोड रु० का व्यय आएगा।

कोसी

कोसी-परियोजना मुख्य रूप से बाढ़-नियन्त्रण के लिए बनाई जा रही है। इसके अतिरिक्त, इससे बिहार में प्रतिवर्ष १४,०५,००० एकड़ भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। इस परियोजना के ३ भाग हैं। पहले भाग में कोसी नदी पर एक बराज बनाया जाएगा; दूसरे भाग में नदी पर तटबंध बनाए जाएंगे; तथा तीसरे भाग में पूर्वी कोसी नहर होगी।

सारी परियोजना पर लगभग ४४.७६ करोड़ रु० का व्यय होने का अनुमान है।

चम्बल

इस परियोजना के प्रथम चरण में गांधीसागर-बांध, गांधीसागर-बिजलीघर, ट्रांसमिशन-लाइनें, कोटा-बराज तथा बराज के दोनों ओर नहरें होंगी। गांधीसागर-बांध से जो जलाशय बनेगा, उसमें लगभग ६.८५ लाख एकड़-फुट पानी जमा हो सकेगा। नहर-श्रृंखला से राजस्थान और मध्यप्रदेश में लगभग ११ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगेगी। इसके अतिरिक्त, गांधीसागर-बिजलीघर में ८०,००० किलोवाट बिजली बनेगी। सम्भवतः यह परियोजना सन् १९६३-६४ में पूरी होगी। इस परियोजना को मध्यप्रदेश तथा राजस्थान की सरकारें कार्यान्वित कर रही हैं।

परियोजना के प्रथम चरण पर अनुमानतः ६३.५९ करोड़ रु० का व्यय बैठेगा।

नागार्जुनसागर

आंध्रप्रदेश की इस परियोजना में कृष्णा नदी पर एक पक्का बांध तथा दोनों तरफ एक-एक नहर बनाई जाएगी। बांध की औसत ऊंचाई लगभग ३०२ फुट तथा लम्बाई लगभग ३,९०० फुट होगी। इसके जलाशय में लगभग ५४.४ लाख एकड़-फुट पानी जमा हो सकेगा और इसका फैलाव लगभग ७३.६६ वर्गमील क्षेत्र में होगा। नदी के दोनों ओर की नहरों से लगभग २०,६०,००० एकड़ भूमि में सिंचाई होगी तथा आरम्भ में इन दोनों नहरों से कुल निकासी लगभग ११,००० क्यूसेक की होगी। इस परियोजना का पहला चरण सन् १९६३-६४ तक पूरा हो जाएगा,

और आशा है कि इसमें अनाज की पैदावार प्रतिवर्ष लगभग ८ लाख टन बढ़ जाएगी।

इस परियोजना पर लगभग ८३ ३ करोड़ रु० का व्यय होगा।

पहली पचवर्षीय योजना में बड़ी और मध्यम परियोजनाओं से लगभग ३० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई की गई। दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि में लगभग १ करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई होने लगेगी। इसमें से ६० लाख एकड़ भूमि में तो उन परियोजनाओं से सिंचाई होगी, जो पहली पचवर्षीय योजना में शुरू की गई थी और १० लाख एकड़ भूमि में नई परियोजनाओं से सिंचाई की जाएगी। नई परियोजनाओं से अन्तत १ ५५ करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगेगी, परन्तु योजना-आयोग ने जो मूल्यांकन किया है, उससे पता चलता है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त में बड़ी और मध्यम सिंचाई-योजनाओं में ६० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी।

अध्याय ८

उद्योग

पश्चिम की औद्योगिक क्रांति से काफी पहले ही भारत 'विश्व की उद्योगशाला' के नाम से प्रसिद्ध था। उन दिनों भारत विश्व के व्यापार और वाणिज्य का केन्द्र था। भारत से चावल, गेहू, चीनी और कपास के अलावा कपडा, रेशम और विलासिता की अन्य वस्तुए दूसरे देशो को निर्यात की जाती थी। भारतीय रेशम और सूती कपडा, धातु के बर्तन तथा लकडी और हाथीदात पर नक्काशी का काम विश्व-भर मे विख्यात था। ये वस्तुए भारत के कुशल शिल्पियो की कला का उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती थी। भारत के छपे हुए कपडे—रेशम, मलमल या तन्जेब और छीट—इन चीजो की विश्व के कोने-कोने मे बडी माग थी।

किन्तु भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होते ही विदेशी शासको ने तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाने शुरू किए। उदाहरण के लिए, भारत मे बने कुछ प्रकार के सूती कपडो का ब्रिटिश मडियो मे जाना कानूनन रोक दिया गया, यहा तक कि देश मे भी उनके निर्माण पर कुछ बदिशे लगा दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इन उद्योगो का ह्रास होने लगा। इसके अतिरिक्त, भारत मे बडे पैमाने पर ब्रिटिश माल आने के परिणामस्वरूप, भारत के कारीगर बेकार होते चले गए। इतना ही नही, ब्रिटेन ने भारत को एक कृषि-उपनिवेश बना डाला, और वे लोग यहा से अपने देश के कल-कारखानो के लिए कच्चा माल ले जाने लगे।

सन् १८५०-५५ के बीच भारत मे कुछ सूती और पटसन-मिले तथा कोयले की खाने भारतीय पूजी से चालू की गई। भारत के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इससे अकर्मण्यता का तिलिस्म टूट गया और लगभग ७० वर्ष की अवधि मे ही इन उद्योगो ने बड़ी आश्चर्यजनक प्रगति की। इसी बीच, कागज और चमडे के कारखाने

भी खुलें । सन् १९०८ मे लोहे और इस्पात के आधुनिक उद्योग का सूत्रपात हुआ । पहले विश्वयुद्ध तथा सन् १९२२ मे स्वीकृत 'सरक्षण-नीति' के कारण भी भारतीय उद्योगो की उन्नति को विशेष बल मिला । सन् १९२२ तथा १९३९ के बीच सूती कपडे का उत्पादन दुगुना, इस्पात की सिल्लियो का उत्पादन आठ-गुना, तथा कागज का उत्पादन ढाई-गुना बढ गया । चीनी-उद्योग ने भी अभूतपूर्व उन्नति की, और भारत चीनी के मामले में स्वावलम्बी बन गया । सीमेंट-उद्योग का भी काफी विकास हुआ । सन् १९३५-३६ तक देश की सीमेंट की लगभग ९५ प्रतिशत आवश्यकताए देश मे ही पूरी होने लगी ।

दूसरे विश्वयुद्ध के कारण भारतीय उद्योगो को अपनी स्थापित क्षमता का अधिक-से-अधिक उपयोग करने के लिए, बडी अनुकूल परिस्थितिया मिली, जिससे सूती कपडे, कागज, चीनी, इस्पात, चाय सीमेंट, रासायनिक पदार्थों, धातु से बनी चीजो, दवाओ, शस्त्रास्त्रो, मशीनी औजारो, बारूदो, तथा इजीनियरी सामान और चमडे के सामान के उत्पादन मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई । भारत मे एक के बाद एक नए उद्योग भी खडे हुए । उदाहरण के लिए, लौह-मिश्रित धातुओ, अलौह धातुओ, डीजेल इजिनो, पम्पो, दो पहिएवाली साइकिलो, सिलाई-मशीनो, सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, क्लोरीन, तथा सुपर-फास्फेट का भी उत्पादन होने लगा । मशीनी औजार, साधारण मशीने, छुरी-काटे तथा ओषधिया बनने लगी और देश मे पहली बार समुद्री जहाजो तथा वायुयानो की मरम्मत का काम शुरू हुआ ।

इस प्रकार, विश्वयुद्ध की समाप्ति पर भारत की गणना ससार के सर्वप्रमुख आठ औद्योगिक राष्ट्रो मे होने लगी । उस समय ज्वाइट स्टाक कम्पनियो की कुल चुकता-पूजी ४२४ करोड २० लाख रु० थी और कल-कारखानो मे लगभग २५ लाख व्यक्ति काम करते थे । इस्पात और सूती कपडे की लगभग तीन-चौथाई मांग देश मे ही पूरी हो जाती थी । इसके अलावा, चीनी, सीमेंट और साबुन के मामले मे भारत स्वावलम्बी था । पटसन के सामान मे तो दुनिया-भर की मडियों में भारत का एकाधिकार था ।

परन्तु विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद भारतीय उद्योगो की स्थिति बडी चिन्ताजनक हो गई। युद्ध के दौरान भारतीय कारखानो पर उत्पादन का इतना अधिक बोझ पडा कि बहुत-से कारखानो की अधिकांश मशीने टूट-फूट के कारण बेकार हो गई। व्यापार मे गिरावट की सम्भावना से पूजी-बाजार में मन्दी आ गई। इससे उत्पादन घटा और बहुत-से उद्योगो मे क्षमता से बहुत कम माल तैयार हुआ। इसके साथ ही, भारत-जैसे विशाल देश मे उत्पादक माल बनानेवाले उद्योगों की सख्या बहुत कम थी और उद्योगो की स्थापना उपयुक्त स्थानो पर नहीं हुई थी। कच्चा माल भी दुर्लभ था तथा उत्पादन-व्यय बराबर बढ रहा था। इस तरह, वैयक्तिक आय मे वृद्धि तो हुई, परन्तु महगाई के कारण कोई विशेष लाभ नही हुआ। देश मे मुद्रास्फीति का जन्म हुआ और श्रमिको मे असन्तोष फैलने लगा, मध्यम वर्ग के लोगो की स्थिति तो और भी शोचनीय हो गई।

सन् १९४७ मे देश-विभाजन के कारण भारत की आर्थिक एकता बिल्कुल नष्ट हो गई और कई उद्योग अस्त-व्यस्त हो गए। उदाहरण के लिए, कलकत्ते और इसके आसपास की पटसन-मिलें तथा पूर्वी पाकिस्तान के पटसन पैदा करनेवाले इलाके एक-दूसरे से बिल्कुल कट गए। इसी तरह, बम्बई तथा अहमदाबाद की कपडे की मिलें आयात पर निर्भर रह गई और उन्हे हर साल कपास की लगभग १० लाख गाठें बाहर से मगाने के लिए विवश होना पडा।

इन परिस्थितियो का सामना करने के लिए तुरन्त उपाय किए जाने की नितान्त आवश्यकता थी। अत भारत-सरकार ने दिसम्बर १९४७ मे एक औद्योगिक विकास-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमे मजदूरो और मालिको के प्रतिनिधि भी बुलाए गए। इस सम्मेलन मे भारत की औद्योगिक स्थिति की समीक्षा की गई और सरकार की आयोजन-सम्बन्धी नीति का स्पष्टीकरण किया गया। सरकार का तत्कालीन उद्देश्य यह था कि वर्तमान साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करके उत्पादन में तुरन्त वृद्धि और प्रबन्ध-व्यवस्था में सुधार किया जाए। दीर्घकालीन उद्देश्य यह रखा गया कि उत्पादन धीरे-धीरे स्थापित क्षमता

तक बढाया जाए । सम्मेलन में मालिको, मजदूरों तथा सरकार के प्रतिनिधियो में, राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए तीन साल तक औद्योगिक शाति बनाए रखने का समझौता हो गया।

औद्योगिक नीति की घोषणा

सन् १६४८ मे सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति का प्रमुख उद्देश्य मिली-जुली अर्थ-व्यवस्था का विकास करना था, जिसमे उद्योगो के आयोजित विकास तथा राष्ट्रीय हित में उनका नियमन करने का सम्पूर्ण दायित्व सरकार ने सम्भाला । इस नीति के अनुसार, जहा सरकार ने यह घोषणा की कि जन-हित मे वह किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान को ग्रहण कर सकती है, वही गैर-सरकारी उद्यम के लिए भी यथोचित क्षेत्र छोड दिया गया।

इधर जब सन् १६५४ मे भारत मे समाजवादी समाज की रचना करने की नीति स्वीकार की गई, तब इस बात की भी आवश्यकता अनुभव हुई कि देश के लिए एक नई औद्योगिक नीति बनाई जाए । इसलिए अप्रैल १६५६ मे इस नई औद्योगिक नीति की घोषणा कर दी गई। विकास की गति में सरकार का क्या दायित्व होगा, इस सम्बन्ध मे इस घोषणा मे विशेष रूप से प्रकाश डाला गया । इस नीति के अनुसार, सरकारी क्षेत्र का विस्तार कर दिया गया और उसमे आधारभूत तथा सामरिक महत्व के उद्योगो एवं लोकोपयोगी सेवाओ को शामिल कर लिया गया । इसके अलावा, अन्य आवश्यक उद्योगो को भी, जिनका विकास गैर-सरकारी उद्यम की क्षमता की बात नही है, सरकारी क्षेत्र मे ले लिया गया।

नए औद्योगिक प्रस्ताव मे उद्योगो का वर्गीकरण दो अनुसूचियो में किया गया है और इस सम्बन्ध मे सरकारी दायित्व का स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है । अनुसूची 'क' में १७ उद्योग है, जिन पर सरकार का पूरा नियन्त्रण है । अनुसूची 'ख' में १२ उद्योग हैं, जिनका स्वामित्व धीरे-धीरे सरकार ग्रहण करती जाएगी । इस क्षेत्र मे राज्य धीरे-धीरे अपनी गतिविधियो मे वृद्धि करेगा, परन्तु गैर-सरकारी उद्यम स्वेच्छा से या सरकार के सहयोग से इस दिशा में काम कर सकता है।

बाकी क्षेत्र में उद्योगों का विकास गैर-सरकारी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया है, यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर सरकार इस क्षेत्र में भी आ सकती है। यह श्रेणी-विभाजन अपरिवर्तनीय नहीं है—परिस्थितियों के अनुसार इसमें फेर-बदल किया जा सकता है।

औद्योगिक नीति की दिशा निर्धारित करने के अपने दायित्व को समझते हुए ही सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र का नियमन और विकास करने के लिए अधिकार प्राप्त करने और गैर-सरकारी क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का निश्चय किया, ताकि प्रगति सन्तोषजनक हो और प्रबन्ध के समुचित मान निश्चित किए जा सकें। इस उद्देश्य से संविधान में संशोधन करके 'उद्योग (विकास और नियमन) अधिनियम, १९५१' की रचना की गई।

सरकार के अधिकार

उपर्युक्त अधिनियम के अन्तर्गत समस्त वर्तमान तथा नए प्रतिष्ठानों के लिए रजिस्ट्री कराना या लाइसेंस लेना अनिवार्य कर दिया गया। सरकार को यह अधिकार भी मिल गया कि वह किसी भी अनुसूचित उद्योग या औद्योगिक प्रतिष्ठान के काम की जांच करा सकती है और आवश्यकतानुसार निदेश, आदि भी जारी कर सकती है। यदि किसी प्रतिष्ठान के प्रबन्ध में अव्यवस्था हुई, तो उसका प्रबन्ध अथवा नियन्त्रण अपने अधीन कर लेने का भी अधिकार सरकार को मिल गया। उद्योगों के विकास और नियन्त्रण-सम्बन्धी बातों पर सरकार को परामर्श देने के लिए इस अधिनियम के अन्तर्गत एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद् स्थापित करने की भी व्यवस्था की गई, जिसमें उद्योग, मजदूरों, उपभोक्ताओं और प्राथमिक उत्पादकों के प्रतिनिधि शामिल किए गए। इस अधिनियम में भिन्न-भिन्न उद्योगों अथवा उद्योग-समूहों के लिए विकास-परिषदें बनाने की भी व्यवस्था की गई है।

अपने इन अधिकारों का विवेकशीलता के साथ प्रयोग करने के कारण सरकार को देश के साधनों का समुचित उपयोग करने, छोटे और बड़े पैमाने के उद्योगों का सन्तुलित विकास करने, तथा विभिन्न उद्योगों का विभिन्न प्रदेशों में समुचित वितरण करने में सफलता प्राप्त हुई है।

आरम्भ मे उद्योग-अधिनियम के अन्तर्गत ४५ उद्योग रखे गए थे। सन् १९५६ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और इसमे ३४ और उद्योग शामिल कर लिए गए। १२ उद्योगो के लिए विकास-परिषदें भी बनाई गईं। इन परिषदो के अतिरिक्त, विभिन्न उद्योगो की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए समय-समय पर विशेषज्ञ भी नियुक्त किए जाते रहे है।

जिन महत्वपूर्ण उद्योगो के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र में पर्याप्त पूजी प्राप्त नही हो रही थी, उनका विकास करने के उद्देश्य से उनको वित्तीय सहायता देने के लिए सरकार ने विशेष शर्तो पर ऋण दिए या इक्वीटी शेयर खरीदे।

सन् १९४८ मे स्थापित औद्योगिक वित्त-निगम ने मार्च १९५९ तक औद्योगिक सस्थाओ को पेशगी तथा दीर्घकालीन ऋणो के रूप मे ६४ करोड ३४ लाख ९० की स्वीकृति प्रदान की। राज्यीय वित्त-निगम, जिनकी सख्या ११ है, मध्यम और छोटे पैमाने के उन उद्योगो की सहायता करते है, जो अखिल भारतीय निगम के क्षेत्राधिकार मे नही आते। सन् १९५४ मे स्थापित राष्ट्रीय उद्योग-विकास-निगम ने नए उद्योग स्थापित करने तथा गैर-सरकारी क्षेत्र मे उत्पादन के नए तरीको का विकास करने के लिए भी कुछ योजनाए बनाई।

सरकार गैर-सरकारी उद्योगो की भी सहायता कर रही है-- जैसे, आवश्यक कच्चे माल, आदि का आयात करने के लिए उन्हे सुविधाए और कर-सम्बन्धी रिआयते दी जाती हैं तथा नए उद्योगों को सरक्षण प्रदान किया जाता है। विगत तटकर-आयोग के स्थान पर जनवरी १९५२ में जो अनुविहित तटकर-आयोग स्थापित किया गया, वह संरक्षण-प्राप्त उद्योगो की प्रगति की समीक्षा और सरक्षण-सम्बन्धी नई योजनाओ की जाच कर रहा है।

भारतीय उद्योगों का विकास करने के लिए औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशो से या तो अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी सहायता-योजनाओं के अन्तर्गत या सीधी बातचीत के जरिए तकनीकी सहायता प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किए जाते रहे है।

विदेशी पूजी

देश के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए पूजीगत साधनो की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से सरकार ने उन उद्योगो के लिए विदेशी सहायता का स्वागत करने का निश्चय किया है, जिनमे किसी वस्तु-विशेष का उत्पादन करने की पर्याप्त क्षमता नही है अथवा जिनके लिए कुछ प्रमुख विदेशी फर्मों से विशेषज्ञ प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होता है। विदेशी पूजी-सम्बन्धी नीति का स्पष्टीकरण प्रधान मन्त्री महोदय ने सन् १९४८ के औद्योगिक नीति-प्रस्ताव मे तथा सन् १९४९ मे सविधान-सभा मे दिए गए वक्तव्य मे स्पष्ट कर दिया था और कहा था कि,

(१) राष्ट्र के हित को दृष्टि मे रखते हुए विदेशी पूजी तथा उद्यम के सहयोग का नियमन सावधानी से किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, केवल कुछ अपवादो को छोड कर अधिकाश स्वामित्व और प्रभावशाली नियन्त्रण भारतीयो के हाथो मे ही रहना चाहिए, तथा इस प्रकार के सब मामलो मे उपयुक्त भारतीय कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने पर बल दिया जाएगा, ताकि अन्तत वे विदेशी विशेषज्ञो का स्थान ग्रहण कर सकें,

(२) जहा तक सामान्य औद्योगिक नीति लागू करने का प्रश्न है, विदेशी और भारतीय प्रतिष्ठानो मे कोई भेद-भाव नहीं बरता जाएगा,

(३) देश की विदेशी मुद्रा की स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए विदेशियो को लाभ और पूजी की रकम स्वदेश भेजने की उचित सुविधाए दी जाएगी; तथा

(४) राष्ट्रीयकरण की स्थिति में उचित तथा न्यायपूर्ण मुआवज़ा दिया जाएगा।

अनुमान है कि सन १९५७ के अन्त मे भारत मे लगभग ५५६ ६ करोड रु० की विदेशी पूजी लगी थी।

पहली पचवर्षीय योजना

पहली पचवर्षीय योजना में गैर-सरकारी क्षेत्र में ४१ उद्योगों की क्षमता में वृद्धि करने का प्रस्ताव था तथा सरकारी क्षेत्र में कुछ औद्योगिक परियोजनाओं की व्यवस्था थी। औद्योगिक क्षेत्र में अधिक पूजी लगाने के लक्ष्य बहुत अधिक नहीं थे तथा स्थापित क्षमता का अधिक-से-अधिक उपयोग करने पर विशेष बल दिया गया था। जिन उद्योगों का विस्तार करने का विचार था, उनमें पेट्रोल-शोधन, लोहा और इस्पात, रेल-इंजिन, सवारी डिब्बे और माल डिब्बे, अल्युमीनियम, रेयन, स्टेपल फैब्रिक, और बिजली-उत्पादन-जैसे क्षेत्र उल्लेखनीय हैं। पहली पचवर्षीय योजना पर होनेवाले कुल खर्च का लगभग ८ प्रतिशत ही उद्योगों और खनिजों के लिए निश्चित किया गया था, क्योंकि योजना में अधिक बल कृषि पर ही दिया गया था।

औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन में सन्तोषजनक प्रगति हुई। सरकारी क्षेत्र में सिंदरी का उर्वरक-कारखाना, चित्तरंजन का रेल-इंजिन-कारखाना, टेलीफोन बनानेवाला एक कारखाना, रेल के जोड़हीन सवारी डिब्बे बनानेवाला एक कारखाना, मशीनी औजार बनानेवाला एक कारखाना तथा पेनिसिलीन, डी० डी० टी० और अखबारी कागज बनाने के कारखाने तैयार हुए।

सूती वस्त्र (मिल-क्षेत्र), चीनी तथा वनस्पति-तेलों का उत्पादन निर्दिष्ट लक्ष्य से भी अधिक हुआ और ऐसा मुख्यत वर्तमान सयंत्रों का भरपूर उपयोग करके किया गया। सीमेंट, कागज़, सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, रसायन, रेयन तथा दो पहिए की साइकिलों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। इस सम्बन्ध में एक तो, अब तक अप्रयुक्त साधनों का उपयोग किया गया और दूसरे, अतिरिक्त साधन भी जुटाए गए। परन्तु लोहा और इस्पात, डीज़ेल इंजिन, पम्प, रेडियो, बैटरी, मशीनी औज़ार, पटसन का सामान, तथा शीशा, ये सब उद्योग अपने उत्पादन-लक्ष्य पूरे करने में असमर्थ रहे।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि में गैर-सरकारी क्षेत्र-द्वारा २३३

करोड रु० की पूंजी लगाने का अनुमान था और यह लक्ष्य पूरा भी हो गया । परन्तु सरकारी क्षेत्र मे जहा ९४ करोड रु० की पूजी लगाने का अनुमान था, वहां कुल ६० करोड की ही पूजी लगी, विशेषकर लोहा-इस्पात, अल्युमीनियम तथा मशीनी औज़ार-उद्योगो मे कम पूंजी लगाई गई। इस प्रकार, कुल २९३ करोड रु० की नई पूजी लगाई गई, जिसमें मशीनों, आदि की अदला-बदली पर लगी पूजी शामिल नही है ।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे औद्योगिक सयत्र और मशीनो के निर्माण तथा पूंजीगत सामान के उत्पादन की दिशा मे बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हुआ । तरह-तरह का उत्पादन करने की दिशा मे भी अच्छी प्रगति हुई। औद्योगिक उत्पादन (१९५१ = १००) का सामान्य सूचनाक सन् १९५६ मे १३३ तथा अक्तूबर १९५७ मे १३४४ था।

औद्योगिक उत्पादन

नीचे की तालिका मे पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे उत्पादन की प्रगति का विवरण दिया गया है

तालिका-संख्या १२

पहली पंचवर्षीय योजना में उत्पादन-वृद्धि

उद्योग	उत्पादन का सूचनांक (१९५१ = १००)	
	१९५६	अक्तूबर १९५६
वस्त्र	—	११६ २
सूती कपडा (लाख गज)	५३,०९६	११३ २
सूत (लाख पौंड)	१६,७१२	१२२.४
पटसन से बनी वस्तुएं (हजार टन)	१,०९३	१११ ८
चीनी[1] (हज़ार टन)	१,८५६	२३१.७

[1] ये आंकड़े फसल-वर्ष (नवम्बर-अक्तूबर) के हैं तथा गन्ने से सम्बन्ध रखते हैं ।

१	२	३
कागज और गत्ता (हजार टन)	१९४	१४३.४
सिगरेट (करोड़)	२,६३०	११५.०
कोयला (लाख टन)	३९४	१०६.३
लोहा और इस्पात	—	११७.४
तैयार इस्पात (हजार टन)	१,३३८	१२०.८
कच्चा लोहा तथा लौह-मिश्रित धातु (हजार टन)	१,६५८	१०६.१
सामान्य इंजीनियरी	—	२२०.४
लालटेन (हजार)	५,१७६	१२४.७
डीज़ेल इंजिन (संख्या)	१२,०१२	१६८ ७
रसायन तथा रासायनिक उत्पादन	—	१६८.१
साबुन (हजार टन)	११०	१२५.३
दियासलाइयां[2] (हजार डिब्बियां)	६१६	६४.७
गंधक का तेज़ाब (हजार टन)	१६५	१४१.३
मोटरगाडियां (संख्या)	३२,१३६	१४६.६
रबड़ से बनी वस्तुएं	—	१०६.६
टायर[3] (हज़ार)	७,२५६	६८.५
उत्पादित बिजली (लाख किलोवाट घण्टे)	६६,१०८	१६५.८
सीमेंट (हज़ार टन)	४,६२८	१८८.१
अलौह धातुएं	—	१३०.१
पीतल (हज़ार टन)	१३.६	१३८.१
खनिज लौह (हज़ार टन)	४,२४८	१२६.४
सामान्य सूचनांक	—	१३१ ६

[2] साठ-साठ तीलियों की ५० डिब्बियां।

[3] ये आंकड़े केवल मोटरगाड़ियों और साइकिलों के टायरों के हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सगठित उद्योगो में १,०६४ करोड रु० की नई पूजी लगाने की व्यवस्था है । इसमे से ५३५ करोड रु० गैर-सरकारी क्षेत्र मे तथा ५२४ करोड रु० सरकारी क्षेत्र मे (राष्ट्रीय औद्योगिक विकास-निगम-द्वारा ३५ करोड़ रु० के विनियोग के अलावा) लगाए जाएगे । इसके विपरीत, पहली पचवर्षीय योजना की अवधि में १७६ करोड रु० की पूजी लगाई गई थी । पूजी-विनियोग मे इस वृद्धि से प्रगति का कुछ सकेत मिलता है। बडे पैमाने के उद्योगो तथा खानो के लिए निश्चित लगभग सारी-की-सारी रकम मूलभूत उद्योगो—जैसे, लोहा और इस्पात, कोयला, उर्वरक तथा भारी इजीनियरी और बिजली के साज-सामान—के विकास के लिए है ।

अनुमान है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक औद्योगिक उत्पादन का सूचनाक (आधार-वर्ष १९५१=१००) सन् १९५६ के १३३ से बढ कर १९४ हो जाएगा । उत्पादक वस्तुओ का सूचनाक जो सन् १९५५-५६ मे १३२ था, ७३ प्रतिशत, तथा कारखानो मे तैयार उपभोक्ता माल का सूचनाक १८ प्रतिशत बढेगा ।

औद्योगिक वस्तुओं के और अच्छे मानदण्ड स्थिर करने, कच्चा माल और अधिक सुलभ करने तथा देश के विभिन्न भागो मे नई परियोजनाओ का सतुलित वितरण करने की व्यवस्था करने के लिए भी कदम उठाए जाएगे ।

महत्वपूर्ण परियोजनाएं तथा उद्योग

लोहा और इस्पात

भारत मे सबसे पहला आधुनिक इस्पात-सयत्र स्वर्गीय जे० एन० ताता ने सन् १९०७ मे जमशेदपुर मे स्थापित किया था । उनसे पूर्व 'स्टील कारपोरेशन आफ बगाल' तथा 'मैसूर आयरन ऐण्ड स्टील वर्क्स' इस क्षेत्र मे आ चुके थे । सन् १९३९ तक देश में इस्पात का वार्षिक उत्पादन ८ लाख टन था । सन् १९५९ में यह उत्पादन १७.११ लाख टन तक जा पहुचा ।

सरकार वर्तमान सयंत्रो का विस्तार करने में सहायता देने के अतिरिक्त, विदेशी सहायता से सरकारी क्षेत्र मे नए संयंत्र भी स्थापित कर रही है। दस-दस लाख टन की क्षमतावाले तीन नए इस्पात-संयत्र लगाए जा रहे है। इनमे से एक भिलाई, मध्यप्रदेश मे (रूसी सहायता से), एक राउरकेला, उडीसा मे (पश्चिम-जर्मनी की सहायता से), तथा एक दुर्गापुर, पश्चिम-बगाल मे (ब्रिटिश सहायता से) लगाया जा रहा है।

इंजीनियरी

सन् १६४७ मे सरकार इजीनियरी-उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने का प्रयास करती आ रही है, तथा बिजली की मोटरो, बैटरियो, छत के पखो और बर्तन बनाने के लिए धातु की चद्दरो के मामले मे भारत स्वावलम्बी हो चुका है। सन् १६५७ मे देश मे मशीनी औजारो का उत्पादन दुगुना हो गया तथा मेकैनिकल इजीनियरी और रासायनिक इजीनियरी मे क्रमश १६ और १७ नई चीजो का निर्माण हुआ। सन् १६५६ मे डीजेल इजिनो, मशीनी औजारो, चीनी बनाने की मशीनो तथा बिजली के सामान के उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई, तथा मोटरगाडियो के निर्माण मे सन् १६५८ की तुलना मे कुल ३६ प्रतिशत तक की वृद्धि हुई।

रासायनिक पदार्थ

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद रसायन-उद्योग ने अच्छी प्रगति की है। सरकारी क्षेत्र मे सिदरी-कारखाने की स्थापना एक उल्लेखनीय घटना थी। गैर-सरकारी क्षेत्र मे सन् १६४६ से १६५० की अवधि मे ६० कम्पनिया स्थापित हुई। हाल के वर्षों मे सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, गधक के तेजाब तथा साबुन के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है।

सूती कपड़ा

सन् १६४७ मे भारत मे सूती कपडा बनाने की ४२३ मिले थी, जिनम लगभग १,०३,५४,००० तकुए तथा २,०३,००० करघे थे। उस वर्ष मिलों

ने १२९.६ करोड पौंड सूत तथा ३७६ २ करोड गज सूती कपडा बनाया। सन् १९५६ के अन्त मे देश में ४७९ मिले थी, जिनमे ९ लाख मजदूर काम कर रहे थे। इस उद्योग मे लगभग १२२ करोड रु० लगे हुए थे। सन् १९५६ मे इन मिलो ने १७१ ८८ लाख पौड सूत तथा ४९२ ८ करोड गज सूती कपड़ा बनाया।

पटसन

पटसन-उद्योग भारत का सबसे अधिक विदेशी मुद्रा कमानेवाला उद्योग है। इसलिए देश की अर्थ-व्यवस्था मे इसका बडा महत्वपूर्ण स्थान है। इस उद्योग मे लगभग तीन लाख कर्मचारी काम करते है। सन् १९५६ (जून-जुलाई तक का पटसन-वर्ष) मे पटसन से बनी १० ५ लाख टन वस्तुओ का उत्पादन हुआ। देश-विभाजन के फलस्वरूप इस उद्योग को सख्त धक्का लगा है, किन्तु यह उद्योग पुन खडा हो रहा है। पटसन-उद्योग का आधुनिकीकरण करने के लिए सरकार सहायता प्रदान कर रही है तथा ५० प्रतिशत से अधिक तकुए आधुनिक ढग के बना दिए गए है।

सीमेंट

भारत मे पोर्टलैंड सीमेट का उत्पादन सन् १९०४ मे मद्रास मे शुरू हुआ। इस समय देश मे सीमेट के ३२ कारखाने हैं। आशा है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक इस उद्योग की कुल स्थापित क्षमता लगभग १०२ २ लाख टन हो जाएगी। सन् १९५६ मे देश मे कुल ६८ १४ लाख टन सीमेट का उत्पादन हुआ।

कागज

भारत मे मशीन से कागज बनाने का काम सन् १८७० मे कलकत्ते के निकट आरम्भ हुआ था। द्वितीय महायुद्ध मे कागज बनाने की मिलो की सख्या १५ हो गई। सन् १९५० से इस उद्योग ने अच्छी प्रगति की है। १९५६ मे देश में २,६१,००० टन कागज बना। भारत का अखबारी कागज बनानेवाला प्रथम कारखाना नेपानगर मे है, जिसने जनवरी १९५५ मे काम शुरू किया। यह कारखाना प्रतिवर्ष ३० हजार टन तक

कागज बना सकता है, जब कि देश में इस समय हर साल ८० लाख टन कागज की जरूरत है। सन् १९५८-५९ में लगभग २१,८३८ टन अखबारी कागज बना।

तेल

दूसरी पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे तेल-साधनो की दृष्टि से भारत की स्थिति सन्तोषजनक नही थी। देश को हर साल ७० लाख टन तेल की आवश्यकता पडती है, जिसमें से लगभग ६६ लाख टन तेल विदेशो से मगाया जाता है। भारत का एकमात्र तेल-क्षेत्र असम मे डिगबोई के पास है, परन्तु कुछ अन्य स्थानो पर भी तेल का पता चला है। नहरकटिया तथा मोरान मे तेल के कुए खोदे गए है। आशा है, शुरू-शुरू मे इन स्थानो से प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख टन तेल मिलेगा। पजाब में ज्वालामुखी तथा बम्बई राज्य में काम्बे में तेल मिलने की आशा है। पहली पचवर्षीय योजना मे तेल साफ करने के तीन बडे कारखाने स्थापित करने की स्वीकृति दी गई थी। इनमे से दो कारखाने बम्बई के निकट ट्राम्बे मे तथा तीसरा कारखाना विशाखापत्तनम् में है। अब इन तीनो कारखानो का वर्तमान उत्पादन लगभग ५० लाख टन है।

तेल साफ करने के दो नए कारखानो के सचालन के लिए अगस्त १९५८ मे ३० करोड रु० की अधिकृत पूजी से एक सरकारी कम्पनी स्थापित की गई। अक्तूबर १९५८ मे हुए एक करार के अन्तर्गत रूमानिया-सरकार ने भी असम मे तेल साफ करने का कारखाना स्थापित करने का प्रस्ताव किया है।

कोयला

भारत मे खानो से कोयला निकालने का काम सबसे पहले सन् १८१४ मे रानीगज (बगाल) मे आरम्भ हुआ। देश मे रेलो के आगमन से इस उद्योग ने अच्छी प्रगति की है। सन् १८६८ के बाद तो कोयला निकालने में तेजी से वृद्धि हुई है। अनुमान है कि सन् १९५९ मे लगभग ४ ६४ करोड टन कोयला निकाला गया।

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक लगभग ६ करोड टन कोयला निकालने का लक्ष्य है।

नवम्बर १६५८ मे एक जापानी फर्म की सहायता से करगली मे कोयला धोने का एक कारखाना स्थापित किया गया। मार्च १६५६ मे पश्चिम-जर्मनी की एक फर्म की सहायता से पश्चिम-बगाल की सरकार-द्वारा स्थापित दुर्गापुर के कोयला-भट्टी-सयत्र से दुर्गापुर-इस्पात-सयत्र के लिए कोयला प्राप्त होगा।

दक्षिण-भारत मे कोयले की कमी को देखते हुए नडवेली की भूरा कोयला-परियोजना को अधिक महत्व दिया जा रहा है। आशा है कि सन् १६६१ के आरम्भ मे भूरे कोयले की खुदाई आरम्भ हो जाएगी।

सरकारी स्वामित्व के अधीन सयत्र

बिहार के सिदरी नामक स्थान मे लगभग २८ करोड ६० की लागत से उर्वरक-कारखाना स्थापित किया गया है। यह कारखाना सन् १६५१ से उत्पादन कर रहा है। सन् १६५८-५६ मे इस कारखाने मे लगभग ३ ३०,१२२ टन अमोनियम सल्फेट बना। यह मात्रा निश्चित लक्ष्य से भी अधिक थी। नगल, नडवेली तथा राउरकेला मे भी उर्वरक-कारखाने खोले जाएगे। इनकी कुल क्षमता लगभग २,२२,००० टन होगी।

सरकार ने सन् १६५२ मे विशाखापत्तनम् का 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड' खरीद लिया। इस कारखाने मे हर साल डीजल से चलनेवाले चार आधुनिक जहाज बन सकते है। अब तक इस कारखाने मे २४ जलयान तथा २ छोटी नौकाए (१,१२,६२२ टन भार) बन चुकी है। कोचीन मे भी जहाज बनाने का एक कारखाना बनाने का विचार है।

'हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी' की स्थापना सन् १६४० मे बगलोर मे हुई थी। भारतीय वायु-सेना के हवाई जहाजो की मरम्मत तथा उनके रख-रखाव के अतिरिक्त, इस कारखाने ने सुरक्षा के लिए वैम्पायर जेट-किस्म के हवाई जहाजो का निर्माण आरम्भ कर दिया है। यह कारखाना 'एच-टी २' नामक प्रशिक्षण हवाई जहाज भी बनाता है, जिसकी डिजाइन इस कारखाने ने स्वय ही तैयार की है। इसके अतिरिक्त, इस कारखाने मे रेलो के लिए इस्पात के सवारी डिब्बे तथा सड़क-परिवहन-सघटनो के लिए बसो के ढाचे भी तैयार किए जाते है।

पश्चिम-बंगाल में 'चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स' में रेल-इंजिन बनते हैं। आशा है कि रेल-इंजिनों के मामले में भारत शीघ्र ही स्वावलम्बी हो जाएगा। आजकल इस कारखाने में हर साल डब्ल्यू० जी० किस्म के लगभग १६८ इंजिन बनते हैं। धीरे-धीरे हर साल ३०० तक इंजिन बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

पेराम्बूर (मद्रास) में जोड़हीन सवारी डिब्बे बनाने का एक कारखाना (इंटेग्रल कोच फैक्टरी) है। यह कारखाना अक्तूबर १९५५ से काम कर रहा है। सन् १९५९-६० में इस कारखाने में ३८० सवारी डिब्बे (बिना फर्नीचर के) बने।

दिल्ली में डी० डी० टी० बनाने का एक कारखाना है, जिसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र-संघ के बाल-सहायता-कोष तथा विश्व-स्वास्थ्य-संघटन के सहयोग से की गई है। यह कारखाना अप्रैल १९५५ से कार्य कर रहा है। सन् १९५७ में इस कारखाने ने १,२७० टन डी० डी० टी० का उत्पादन किया। १९५८ में इसकी उत्पादन-क्षमता दुगुनी हो गई। केरल राज्य के अलवाए नामक स्थान पर अप्रैल १९५८ में एक अन्य डी० डी० टी० फैक्टरी काम कर रही है।

पूना के निकट पिंपरी में 'हिन्दुस्तान ऐंटीबायोटिक्स (कृमिनाशक औषधियां) फैक्टरी' पेनिसिलीन बनाती है। यह कारखाना अगस्त १९५५ से काम कर रहा है। सन् १९५८-५९ में प्रतिवर्ष २.५२ करोड़ मेगा यूनिट पेनिसिलीन के उत्पादन का लक्ष्य पूरा कर लिया गया। प्रतिवर्ष ४ करोड़ मेगा यूनिट पेनिसिलीन तैयार करने के लिए वर्तमान कारखाने का विस्तार किया जा रहा है। इस कारखाने में बेसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन तैयार करने की भी व्यवस्था की जा रही है।

उपर्युक्त सरकारी प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त, देश में हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, नेशनल इंस्ट्रूमेंट्स फैक्टरी, नाहन फैक्टरी, हिन्दुस्तान केबल्स, इंडियन टेलीफोन फैक्टरी तथा भारत इलेक्ट्रानिक्स नामक कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारखाने भी हैं। बिजली में काम आनेवाले भारी उपकरणों का निर्माण करने के लिए भोपाल में एक कारखाना खोला जा रहा है।

बगान

चाय, काफी तथा रबड के बगान देश की कृषि-भूमि के लगभग ०.४ प्रतिशत भाग मे है और इनके बगान अधिकतर उत्तर-पूर्वी तथा दक्षिण-पश्चिमी तट पर है। इन बगानो से लगभग १२ लाख परिवारो की रोजी-रोटी चलती है तथा इनके निर्यात से भारत को हर साल लगभग १०० करोड रु० की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। रबड, चाय और काफी मे से अधिकतम आय चाय मे ही होती है। पहले काफी और रबड का भी निर्यात किया जाता था, पर अब उनकी खपत अधिकतर देश मे ही होने लगी है। सन् १९५९ मे देश मे लगभग ६९.४७ करोड पौंड चाय तथा १०.०६ करोड पौंड काफी पैदा हुई। अनुमान है कि सन् १९५९ मे देश मे लगभग ३ लाख एकड क्षेत्र मे रबड के बगान थे।

लघु उद्योग तथा कुटीर-उद्योग

यद्यपि देश मे बडे पैमाने के उद्योगो का काफी विकास हुआ है, तथापि भारत प्रधान रूप से छोटे पैमाने के उद्योगो का ही देश है। अनुमान है कि देश के कुटीर-उद्योगो मे लगभग २ करोड व्यक्ति लगे हुए है। सिर्फ हथकरघा-उद्योग मे ही लगभग ५० लाख व्यक्ति काम करते है। इतने ही व्यक्ति अन्य सब सगठित उद्योगो मे काम करते है। इनमे बडे पैमाने के उद्योग, खाने, तथा बगान भी शामिल है।

छोटे पैमाने के उद्योगो को सगठित करने का दायित्व मुख्यत राज्य-सरकारो का है। उनकी सहायता के लिए केन्द्रीय सरकार ने निम्न-लिखित छ सघटन स्थापित किए है (१) अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग-आयोग, (२) अखिल भारतीय हस्तशिल्प-बोर्ड, (३) अखिल भारतीय हथकरघा-बोर्ड (४) लघु-उद्योग बोर्ड, (५) नारियल जटा बोर्ड, तथा (६) केन्द्रीय रेशम-बोर्ड। नारियल-जटा-बोर्ड तथा रेशम-बोर्ड अनुविहित निकाय है।

छोटे उद्योगो को सरकार तथा बैंकिंग सस्थान, दोनो ही सहायता प्रदान करते है। सहायता का पूर्वापेक्षा अधिक सदुपयोग करने के

उद्देश्य से हाल में कुछ आवश्यक कदम उठाए गए हैं। अब तक ६६ औद्योगिक बस्तियां स्थापित करने की स्वीकृति दी जा चुकी है। इन बस्तियों में उन छोटे औद्योगिक कारखानो को ले जाया जा रहा है, जो अभी नगरों में अवस्थित हैं। वहा उन्हें सब प्रकार की सुविधाए दी जाएगी।

'औद्योगिक विस्तार-सेवा' के माध्यम से छोटे उद्योगो को वित्तीय सहायता देने के लिए केन्द्रीय सरकार ने कार्य आरम्भ कर दिया है। चार प्रादेशिक लघु उद्योग-सेवा-सस्थानो के अतिरिक्त, १५ लघु उद्योग-सेवा-संस्थान तथा २८ औद्योगिक विस्तार-केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं। छोटे पैमाने की इकाइयो को सामान्य तकनीकी समस्याओ मे परामर्श देने के लिए ४८ औद्योगिक विस्तार-केन्द्रो की स्वीकृति दी जा चुकी है। सामान्य सेवा-सुविधाए निर्माताओ को भी प्रदान करने के लिए कुछ स्थानो पर केन्द्र खोलने का विचार है। इन उद्योगो को तकनीकी बातो मे परामर्श देने के लिए विदेशी विशेषज्ञ भी बुलाए जाते हैं।

फरवरी १६५५ मे राष्ट्रीय लघु उद्योग-निगम की स्थापना एक अन्य उल्लेखनीय घटना थी। निगम की पूजी १० लाख रु० है। निगम का 'ठेका-विभाग' सरकार के 'खरीदार-विभागों' से सम्पर्क स्थापित करके छोटी-छोटी इकाइयो को ठेके देने की व्यवस्था करता है। निगम ने किश्त-खरीद की भी एक योजना चालू की है, जिसके अन्तर्गत छोटी इकाइया अपने सुधार अथवा विस्तार-कार्यक्रमो के लिए मशीने और साज-सामान आसान किश्तो पर ले सकती है। काम को अधिक सुचारु रूप से चलाने, विशेषकर किश्त-खरीद के आधार पर मशीने, आदि खरीदने के काम की सुचारु व्यवस्था करने के उद्देश्य से कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली तथा मद्रास मे सहायक निगम भी स्थापित कर दिए गए है।

सामुदायिक विकास और सहकारिता-मन्त्रालय ने भी छोटे उद्योगो के विकास के लिए कुछ सामुदायिक परियोजनाओ मे खण्ड-स्तर पर औद्योगिक अधिकारियो की नियुक्ति की है।

हस्तशिल्प की वस्तुओ की देश-विदेश मे बिक्री बढाने के लिए विशेष प्रयत्न किए जा रहे है। देश-भर में चलती-फिरती प्रदर्शनिया लगाई जाती है तथा धातु और बास की बनी चीजो का प्रदर्शन करने के

लिए काफी व्यय किया जा रहा है। अनेक राज्यो मे हस्तकला-सप्ताहो का आयोजन किया जाता रहा है तथा बडे-बडे नगरो मे बिक्री-केन्द्र खोल दिए गए है। हस्तशिल्प की वस्तुओ के प्रचार-प्रसार के लिए अखिल भारतीय हस्तशिल्प-बोर्ड काम करता है। निर्यात बढाने के लिए एक भारतीय हस्तशिल्प-विकास-निगम की भी स्थापना कर दी गई है। अनुमान है कि देश मे प्रतिवर्ष लगभग १०० करोड रु० मूल्य की हस्तशिल्प की वस्तुए तैयार होती है तथा लगभग ७ करोड रु० मूल्य की वस्तुओ का निर्यात किया जाता है।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे लघु उद्योगो तथा कुटीर-उद्योगो के विकास-कार्यक्रमो मे वृद्धि कर दी गई है। आशा है कि इसमे देश की उपभोक्ता-सामान की अधिकाश जरूरते देश मे ही पूरी होने लगेगी तथा काफी लोगो को रोजगार भी मिलने लगेगा। दूसरी पचवर्षीय योजना मे कार्य-सचालन-पूजी की आवश्यकताओ के अतिरिक्त, लघु उद्योगो के विकास-विस्तार के लिए पहली पचवर्षीय योजना की अपेक्षा सात-गुना अधिक, अर्थात् २०० करोड रु०, की व्यवस्था की गई है। द्वितीय पचवर्षीय योजना के पहले दो वर्षो मे लघु उद्योगो तथा ग्रामोद्योगो पर लगभग ५९ करोड रु० खर्च किए गए। उपर्युक्त २०० करोड रु० की रकम इस प्रकार निश्चित की गई है हथकरघा-उद्योग के लिए ५९ ५ करोड रु० खादी-उद्योग के लिए १६ ७ करोड रु०, ग्रामोद्योगो के लिए ३८ ८ करोड रु०, लघु उद्योगो के लिए ५५ करोड रु०, हस्तशिल्प के लिए ९ करोड रु०, तथा अन्य उद्योगो के लिए २१ करोड रु०।

खादी-उद्योग

अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग-आयोग खादी की अभिवृद्धि के लिए सहायता प्रदान करता है। अनुमान है कि सन् १९५८-५९ मे लगभग ९ ५१ करोड रु० की खादी बनी तथा लगभग ८ ६१ करोड रु० की खादी बिकी।

अम्बर चर्खा

सन् १९५६-५७ मे ४ तकुओवाला एक उन्नत चर्खा काम मे लाने

का निश्चय किया गया। इस पर एक व्यक्ति प्रतिदिन ८ घंटे काम करके ६ गुंडी सूत कात सकता है।

अनुमान है कि अम्बर चर्खा-जाँच-समिति की सिफारिशों के अनुसार सन् १९५८-५९ के अन्त तक २,४५,०१५ चर्खे चालू किए गए। इस वर्ष अम्बर चर्खे से लगभग २.५ करोड वर्ग गज कपड़ा बनाया गया।

अध्याय ६

वाणिज्य और व्यापार

कुछ वर्ष पूर्व तक भारत के विदेशी व्यापार का ढाचा वैसा ही था, जैसा परम्परा से एक औपनिवेशिक कृषि-प्रधान देश का हो सकता है। अनुकूल व्यापार-सन्तुलन के आवरण मे औद्योगिक उत्पादन का निम्न स्तर छिपा हुआ था। वर्तमान व्यापारिक घाटा उद्योगीकरण का एक अनिवार्य परिणाम है। पहले जिन वस्तुओ का निर्यात किया जाता था, अब उनके एक बडे भाग की खपत देश के उद्योगो मे ही होने लगी है। इसके साथ ही, मशीनो और साज-सामान की आवश्यकताओ मे वृद्धि के कारण आयात मे भी काफी वृद्धि हुई है।

अनुमान है कि सन् १९५८-५९ मे विदेशो के साथ भारत का कुल व्यापार लगभग १,४३६ ४८ करोड रु० का हुआ, जिसमे से आयात लगभग ८५६ १८ करोड रु० का तथा निर्यात लगभग ५८० ३ करोड रु० का था।

ब्रिटेन तथा अमेरिका भारत के मुख्य ग्राहक तथा विक्रेता है। सन् १९५८ मे भारत के निर्यात-व्यापार मे ब्रिटेन और अमेरिका का भाग क्रमश २९ प्रतिशत तथा १६.२ प्रतिशत था। आयात मे ब्रिटेन का भाग १९ ६ प्रतिशत तथा अमेरिका का भाग १८ ८ प्रतिशत था।

युद्ध और देश-विभाजन

सन् १९४० के बाद तक भारत का व्यापार-सन्तुलन सामान्यत· अनुकूल था, परन्तु भारत को निर्यात से जो अधिक आय होती थी, वह ब्रिटिश पूजी पर लाभाश तथा ब्रिटिश अधिकारियो को पेन्शन तथा वेतन, आदि देने पर खर्च हो जाती थी। भारत पौंड-क्षेत्र में डालर कमाने-वाला एक अग्रणी देश था।

सन् १९३० के बाद से तैयार माल के आयात में जो ह्रास शुरू हुआ, वह दूसरे विश्वयुद्ध के अन्त तक जारी रहा। आयात की मुख्य चीजों में से एक चीनी थी, परन्तु सन् १९३५-३६ तक घरेलू माग देश मे होनेवाले उत्पादन से ही पूरी होने लगी। जब सन् १९३७ मे भारत से बर्मा को अलग कर दिया गया, तब देश को अधिक अनाज, विशेषकर चावल, का आयात करने को विवश होना पडा।

द्वितीय विश्वयुद्ध भारतीय उद्योगो के विकास के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। आयात में ह्रास, निर्यात मे वृद्धि तथा मित्रराष्ट्रो को माल और सेवाए उपलब्ध करा कर भारत ने न केवल अपना पौड-विषयक ऋण चुका दिया, बल्कि पौड के रूप मे लगभग १,६०० करोड रु० की एक बडी रकम भी जमा कर ली।

दूसरे विश्व युद्ध मे अनुकूल व्यापार-सन्तुलन भारतीय अर्थ-व्यवस्था की आन्तरिक सुदृढता का परिणाम नही था। विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही यह सन्तुलन बिगड गया और देश मे मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा हो गई तथा निर्यात-व्यापार को सख्त धक्का लगा। उदाहरण के लिए, पटसन का बना सामान (जिससे भारत को कुल विदेशी मुद्रा की आय का ३३ प्रतिशत तथा दुर्लभ मुद्रा का ६२ प्रतिशत से भी अधिक भाग प्राप्त होता था) इतना महगा हो गया कि अमेरिका मे इसकी माग कम हो गई और इसकी जगह वे लोग कागज और कपडे की बनी चीजो का इस्तेमाल करने लगे। साथ ही, युद्धोत्तर अर्थ-व्यवस्था मे युद्धकालीन सयम और पूजीगत साज-सामान के मूल्य-ह्रास की कमी पूरी करने तथा उपभोक्ता-सामान की चिरकालीन दबी हुई माग पूरी करने के लिए बडे पैमाने पर आयात करना अनिवार्य हो गया।

सन् १९४७ में देश-विभाजन से स्थिति और भी गम्भीर हो गई। वह इस प्रकार, कि भारत के जो दो उद्योग निर्यात करते थे, वे अब कच्चे माल के लिए आयात पर निर्भर करने लगे। पटसन, कपास, ऊन तथा खालो का निर्यात न केवल बिल्कुल बन्द हो गया, बल्कि विधि की विडम्बना यह हुई कि अब भारी परिमाण में उनका आयात भी होने

लगा। इसके अतिरिक्त, दुर्लभ मुद्रा-क्षेत्र मे अनाज का भी बडे परिमाण में आयात करने को विवश होना पडा।

इस स्थिति को सुधारने के लिए एक तो, उपभोक्ता-माल के आयात पर रोक लगा दी गई, दूसरे, निर्यात बढाने पर जोर दिया जाने लगा, तीसरे, द्विपक्षीय व्यापार-करार किए गए, तथा चौथे, घरेलू खपत के लिए आवश्यक कच्चे माल का उत्पादन बढाने के लिए भी उपाय किए गए। कुछ जिसो पर कर की छूट भी दे दी गई तथा कच्चे माल पर लगे आयात-शुल्क घटा दिए गए।

सितम्बर १९४९ मे रुपये का अवमूल्यन होने मे भारत के विदेशी व्यापार पर अनुकूल प्रभाव पडा। इससे परोक्ष रूप मे सुलभ मुद्रा-क्षेत्र के साथ निर्यात-व्यापार को कुछ लाभ पहुचा। इन वर्षो मे प्रतिकूल व्यापार-सन्तुलन मे सकोच का मुख्य कारण यह था कि आयातित कपास, अनाज तथा हर प्रकार की मशीनों के मूल्य और परिमाण, दोनो मे कमी हुई। परन्तु पचवर्षीय योजनाए आरम्भ करने के साथ औद्योगिक कच्चे माल और मशीनो के आयात मे वृद्धि करने को विवश होना पडा।

तालिका-संख्या १३

भारत का विदेशी व्यापार

वर्ष	कुल आयात (अन्तरिम व्यापार को छोड कर)	कुल निर्यात (अन्तरिम व्यापार को छोड कर)	जोड	व्यापारिक सतुलन
१९५०-५१	६२३.३६	६०१ ३५	१,२२४ ७१	–२२ ०१
१९५१-५२	९४३ १३	७३२ ९९	१,६७६ १२	–२१० १४
१९५२-५३	६६६ ८८	५७७ ३७	१,२४७ २५	–९२ ५१
१९५३-५४	५७१ ९३	५३० ६२	१,१०२ ५५	–४१ ३१
१९५४-५५	६५६ २६	५९३ ५४	१,२४९ ८	–६२ ७२
१९५५-५६	७०४ ८१	६०९ ४१	१,३१४ २२	–७५ ४
१९५६-५७	८३२ ४५	६१२ ५२	१,४४४ ९७	–२१९ ९३
१९५७-५८	९९३ ५८	६२१ ३१	१,६१४ ८९	–३७२ २७
१९५८-५९	८५६ १८	५८० ३	१,४३६ ४८	–२७५.८८

निर्यात-व्यापार में वृद्धि

यद्यपि देश मे विकास-कार्यों की प्रगति के फलस्वरूप पटसन, चाय तथा सूती कपडे-जैसी वस्तुओ के निर्यात में वृद्धि हुई है, तथापि कुल निर्यात मे उतनी वृद्धि नही हुई, जितनी आयात मे हुई।

निर्यात-व्यापार बढाने के प्रयोजन से सरकार ने ११ विभिन्न जिसो के लिए निर्यात-वृद्धि-परिषदो की स्थापना कर दी है। इसके अतिरिक्त, एक निर्यात-वृद्धि सलाहकार परिषद् की भी स्थापना कर दी गई है। जुलाई १९५७ में सरकारी नियत्रण मे एक 'निर्यात बीमा-निगम' की स्थापना की गई। कलकत्ता तथा मद्रास मे भी इसके कार्यालय है। यह निगम बीमे की वे सब सुविधाए देता है, जो सामान्यत बीमा-कम्पनिया नही देती।

व्यापारिक दृष्टि से भारतीय वस्तुओ का प्रचार करने के लिए एक प्रदर्शनी-निदेशालय है। यह निदेशालय विदेशो में भारतीय चीजो का प्रदर्शन करता है। इसके अतिरिक्त, निर्यात-वृद्धि-परिषदें अपने व्यापारिक शिष्टमडल विदेशो मे भेजती रहती है।

मुख्य देशो को निर्यात

सन् १९५८ मे भारत ने कुछ मुख्य देशो को जितना निर्यात किया, उसका विवरण नीचे की तालिका मे दिया गया है :

तालिका-संख्या १४

प्रमुख देशों को निर्यात

(करोड रुपये)

देश	सन् १९५८ में निर्यात	देश	सन् १९५८ में निर्यात
ब्रिटेन	१६५.२४	अर्जेण्टाइना	९ २५
अमेरिका	९२ ५६	फ्रास	७.०६
जापान	२५ ७७	सूडान	७.१६

देश	सन् १६५८ में निर्यात	देश	सन् १६५८ में निर्यात
आस्ट्रेलिया	२१ ३७	सिंगापुर	६ ५
रूस	२३ ३१	नीदरलैण्ड	६ ७२
श्रीलंका	१६ ७६	केनिया उपनिवेश	४ ६
पश्चिमी जर्मनी	१४ ७	इटली	५ ५
कनाडा	१४ ५४	नाइजीरिया	६ ८८
बर्मा	७ ४८	पाकिस्तान	७ १२
मिस्र	८ ६३	जोड़ (अन्य देश-समेत)	५७० ५६

आयात-व्यापार

सन् १६५८-५६ में लगभग १,०४७ करोड़ रु० मूल्य का कुल आयात किया गया, जब कि सन् १६५७-५८ में लगभग १,०२४ करोड़ रु० मूल्य का कुल आयात हुआ था। सन् १६५८ मे भारत ने जिन मुख्य देशों से जितना आयात किया, उसका विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है

तालिका-संख्या १५

प्रमुख देशों से आयात

(करोड़ रुपये)

देश	सन् १६५८ में आयात	देश	सन् १६५८ में आयात
ब्रिटेन	१६८ ५३	अमेरिका	१६१ ४६
पश्चिम-जर्मनी	६३.६५	ईरान	३३ ०७
जापान	३६.६६	इटली	२५.५७
फ्रांस	१६.६६	रूस	२१ ७१
बेल्जियम	१६.५६	स्विटज़रलैण्ड	९.६८
आस्ट्रेलिया	१५.३२	मलय	१० ७

देश	सन १९५८ में आयात	देश	सन् १९५८ में आयात
सऊदी अरब	१९.६७	कनाडा	३४.६६
पाकिस्तान	६ २८	बर्मा	४५ ५४
नीदरलैंड	९.८२	सिंगापुर	९ २९
स्वीडन	८ ९६	कुवेत	८ २६
मिस्र	६.२४	जोड़ (अन्य देश-समेत)	८६४.१८

व्यापार का ढांचा

भारत विभिन्न प्रकार की चीजों का आयात और निर्यात करता है। सन् १९५८ में भारत ने जिन वस्तुओं का आयात किया, उनमें प्रमुख थीं—मशीनें, लोहा और इस्पात, पेट्रोल और पेट्रोल के उत्पादन, परिवहन का सामान, कपास, गेहूं, रासायनिक पदार्थ, धातु की बनी चीजें, युद्ध-उपकरण, चावल, ओषधियां, कच्चा ऊन और बाल, कागज और गत्ता, तेलहन, कोलतार, रंग, अल्युमीनियम, दूध और क्रीम, जस्ता, वनस्पति-तेल, आदि।

इस वर्ष भारत ने इन चीजों का निर्यात किया—चाय, सूती कपड़ा, दूसरे कपड़े और कपड़े की बनी चीजें, कच्ची अलौह धातुएं, चमड़ा और खालें, कपास, ताजे फल, कच्ची वनस्पतिजन्य सामग्री, कच्चा ऊन, चीनी, खनिज लोहा, कच्चा तम्बाकू, वनस्पति-तेल, सूत, सजावटी सामान और फर्श पर बिछाने का सामान, काफी, पेट्रोल के उत्पादन, कोयला, कोक और कोयला चूर की ईंट, आदि।

व्यापार-करार

भारत अब तक २७ देशों के साथ व्यापार-करार कर चुका है।

राज्यीय व्यापार-निगम

मई १९५६ में 'राज्यीय व्यापार-निगम' की स्थापना की गई। यह निगम पूर्णतः सरकार के नियंत्रण में है तथा इसका कार्य देश के

निर्यात-व्यापार को प्रोत्साहित करना है । इसका मुख्यालय दिल्ली मे है तथा इसके प्रादेशिक कार्यालय कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और विशाखापत्तनम् मे है । स्थापित होने के बाद से यह निगम नियंत्रित अर्थ-व्यवस्थावाले देशो के साथ भारत के निर्यात-व्यापार का विस्तार करने का प्रयास करता रहा है, ताकि भारत के पौंड-पावने पर प्रभाव डाले बिना इन देशो से इस्पात, सीमेंट तथा औद्योगिक उपकरण, आदि प्राप्त किए जा सके ।

सरकार ने जुलाई १९५६ मे निगम को भारतीय सीमेंट-उद्योग से सीमेंट प्राप्त करने, विदेशो से सीमेंट मगाने और उसका वितरण करने का भी काम सौप दिया । विदेशो को खनिज लोहा भेजने की व्यवस्था करने का काम भी जुलाई १९५७ से इसी निगम को सौप दिया गया है ।

आन्तरिक व्यापार

तटीय व्यापार

भारतीय तट को निम्नलिखित खडो मे विभाजित किया गया है (१) पश्चिम-बगाल, (२) उड़ीसा, (३) मद्रास (आध्र-समेत), (४) तिरुवाकुर-कोचीन, (५) कोचीन बन्दरगाह, (६) बम्बई, तथा (७) सौराष्ट्र, ओखा और कच्छ । एक ही खड मे विभिन्न बन्दरगाहो के बीच होनेवाला व्यापार 'आन्तरिक व्यापार' तथा दो भिन्न खडो के बीच होनेवाला व्यापार 'बाह्य व्यापार' कहलाता है ।

सन् १९५६-५७ मे कुल तटीय व्यापार लगभग ३४३ करोड रु० मूल्य का हुआ, जिसमे १८० करोड रु० का आयात तथा १६३ करोड रु० का निर्यात हुआ । १८० करोड रु० के आयात-व्यापार मे से १६९ करोड रु० से भी अधिक का व्यापार भिन्न खडो के बीच तथा लगभग १० करोड रु० का व्यापार खडो मे हुआ । १६९ करोड रु० के बाह्य व्यापार मे से १५८ करोड रु० का व्यापार भारतीय वस्तुओ का तथा ११ करोड रु० का व्यापार विदेशी वस्तुओ का था । सन् १९५७-५८ (अप्रैल-दिसम्बर) मे ११४.१८ करोड रु० का आयात तथा १२३.०७ करोड रु० का निर्यात हुआ ।

अन्तर्देशीय व्यापार

देश के विस्तृत क्षेत्रफल, विभिन्न स्थानो मे विभिन्न प्रकार की जल-वायु तथा विभिन्न साधनो को देखते हुए यह स्वाभाविक ही है कि भारत का अन्तर्देशीय व्यापार बाह्य व्यापार से कई गुना अधिक हो। राष्ट्रीय आयोजन-समिति की व्यापार-सम्बन्धी उप-समिति की रिपोर्ट से विदित होता है कि सन् १६४० मे देश का आन्तरिक व्यापार लगभग ७,००० करोड रु० का तथा बाह्य व्यापार ५०० करोड रु० का था। परन्तु भारत के आन्तरिक व्यापार के सम्बन्ध मे ठीक-ठीक आकडे उपलब्ध नही है, क्योकि देश का बहुत-सा व्यापार बैलगाडियो और छोटी-छोटी नावो, आदि-द्वारा होता है, जिसका हिसाब-किताब रखना सरल नही है। किन्तु रेलवे तथा देशीय जहाजो-द्वारा होनेवाले व्यापार के आकडे उपलब्ध है। सन् १६५७-५८ की अवधि मे मुख्य बन्दरगाहो के बीच ६५,८८,५४,००० मन कोयला, ८३,५१,००० मन कपास, ७५,६२,००० मन सूती कपडे की चीजे, ४,८६,७८,००० मन चावल, ५,००,७५,००० मन गेहू, १,०४,६६,००० मन कच्ची पटसन, ६,७८,१४,००० मन लोहे और इस्पात का सामान, २,५३,३६,००० मन तेलहन, ३,१६,४६,००० मन नमक तथा ३,०३,५७,००० मन चीनी (खाडसारी के अलावा) का व्यापार हुआ।

मेट्रिक माप-तौल

राज्य-सरकारो तथा व्यापार और उद्योग की प्रतिनिधि-संस्थाओ के परामर्श से सभी राज्यो तथा सघीय क्षेत्रो के समस्त नियमित बाजारो तथा निर्दिष्ट क्षेत्रो मे मेट्रिक माप-तौल की प्रणाली लागू कर दी गई है।

अध्याय १०

वित्त

चूकि भारत एक सघीय देश है, इसलिए सरकारी धन एकत्र करने तथा उसे व्यय करनेवाला कोई एक ही प्राधिकरण नही है। धन एकत्र करने का अधिकार केन्द्र तथा राज्यो के बीच बाट दिया गया है। केन्द्र तथा राज्यो के राजस्व के स्रोत भी अलग-अलग है। इस प्रकार, देश में एक से अधिक बजट तथा एक से अधिक राजकोष है।

सविधान की व्यवस्था के अनुसार, केन्द्रीय सरकार का सारा राजस्व तथा व्यय भिन्न-भिन्न खातो मे दिखाए जाते है, जिन्हे 'समेकित निधि' अथवा 'कन्सालिडेटेड फड' तथा 'सरकारी खाता' अथवा 'पब्लिक एकाउंट' कहते है। केन्द्रीय सरकार का सारा-का-सारा राजस्व, जारी किए गए ऋण तथा ऋणो की वसूली की समस्त रकम भारत की समेकित निधि मे जाती है। इस निधि मे से ससदीय अधिनियम की स्वीकृति के बिना एक पाई भी नही निकाली जा सकती। अन्य सभी प्रकार की आय तथा व्यय—जैसे, जमा रकमे, सेवा-कोष तथा हुडिया—'सरकारी खाते' में डाली जाती है, जिसके लिए ससद् की स्वीकृति लेना आवश्यक नही है। आकस्मिक आवश्यकताओ के लिए, जिनके सम्बन्ध मे वार्षिक विनियोजन-अधिनियम मे व्यवस्था नही होती, एक और निधि है, जिसे 'भारत की आकस्मिक निधि' कहते हैं। इस निधि मे से धन पेशगी निकाला जा सकता है और बाद मे इसके लिए ससद् की स्वीकृति ली जा सकती है।

सविधान मे प्रत्येक राज्य के लिए भी 'समेकित निधि' तथा 'सरकारी खाता' खोलने की व्यवस्था है। इसी प्रकार, राज्यो की भी 'आकस्मिक निधिया' है।

रेल-विभाग की अपनी अलग निधिया और खाते है और उनका बजट अलग से ससद् के सामने रखा जाता है। परन्तु रेलवे-बजट के अन्तर्गत विनियोजन तथा व्यय पर ससद् तथा लेखा-परीक्षक का नियत्रण है।

राजस्व के स्रोत

केन्द्रीय सरकार के राजस्व के मुख्य स्रोत ये है : सीमा-शुल्क; केन्द्रीय सरकार-द्वारा लगाए गए उत्पादन-शुल्क, सम्पत्ति-कर, व्यय-कर, निगम-कर और आय-कर (कृषि-आय पर लगाए जानेवाले करो को छोड़ कर); कृषि-भिन्न परिसम्पदाओ और सम्पत्ति पर मृत्यु और उत्तराधिकार-शुल्क तथा टकसालो की आय। इसके अतिरिक्त, रेल-विभाग तथा डाक और तार-विभाग भी केन्द्र के सामान्य राजस्व मे अशदान करते है।

राज्यो के राजस्व के मुख्य स्रोत ये है. राज्य-सरकारो-द्वारा लगाए गए कर और शुल्क, असैनिक प्रशासन, असैनिक निर्माण-कार्य और सरकारी प्रतिष्ठानो से होनेवाली आय, केन्द्र से करो का हिस्सा, तथा केन्द्र से प्राप्त अनुदान। लगान, बिक्री-कर, राज्यीय उत्पादन-शुल्क, रजिस्ट्री और स्टाम्प-शुल्क तथा आय-कर और केन्द्रीय उत्पादन-शुल्को के अश राज्यो के कर-राजस्व के लगभग ८४ प्रतिशत अश तथा कुल राजस्व के ५० प्रतिशत अश से भी अधिक बैठते है। सम्पत्ति-कर तथा चुगी और सीमा-कर स्थानीय वित्त के मुख्य आधार है।

सितम्बर १९५७ मे प्राप्त वित्त-निगम की सिफारिशो के अनुसार, हर साल केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्यो मे लगभग १४० करोड रु० बाटती है। इसमे आय-कर से प्राप्त रकम का ६० प्रतिशत भी शामिल है। १९६०-६१ के बजट मे राज्य-सरकारो को १४२ १ करोड रु० दिए जाने का अनुमान है।

बजट

केन्द्रीय सरकार के आगामी वित्तीय वर्ष के राजस्व तथा व्यय का आनुमानिक विवरण हर साल फरवरी के अन्त मे ससद् में पेश किया जाता है। इसे 'बजट' कहते हैं। राजस्व तथा व्यय के अनुमान प्रस्तुत करने के अलावा, इसमें पिछले वर्ष की वित्तीय स्थिति की समीक्षा, यदि घाटे को पूरा करने के लिए और धन चाहिए, तो नए कर लगाने के प्रस्ताव; तथा पूजीगत व्यय के प्रस्ताव पेश किए जाते हैं।

बजट पर ससद् के दोनो सदन विचार करते है। तब प्रभारित अथवा किए जा चुके व्यय को छोड कर व्यय के अनुमान लोकसभा के सम्मुख 'अनुदानो की मागो' के रूप मे पेश किए जाते है। आम तौर पर, प्रत्येक मन्त्रालय के लिए अलग-अलग 'माग' पेश की जाती है। इस प्रकार, समेकित निधि मे से रुपये निकालने की स्वीकृति हर साल ससद् 'विनियोजन-अधिनियम' द्वारा देती है। बजट के कर-सम्बन्धी प्रस्तावो को एक अन्य विधेयक मे रखा जाता है, जिसे सम्बद्ध वर्ष के 'वित्त-अधिनियम' के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी तरह, राज्य-सरकारे भी अपने-अपने विधानमडलो मे राजस्व और व्यय के विवरण वित्त-वर्ष आरम्भ होने से पहले, अप्रैल मे, पेश करती है। विधानमडल मे व्यय की स्वीकृति उपर्युक्त तरीके से ही प्राप्त की जाती है।

लेखा-परीक्षा

सविधान के अनुसार, लेखा-परीक्षा करनेवाले अधिकारियो का (जो कार्यपालिका से स्वतन्त्र है) यह कर्तव्य है कि वे केन्द्रीय सरकार तथा राज्य-सरकारो के व्यय की जाच करे और यह देखे कि वे सही-सही खर्च कर रही है या नही। सविधान मे यह भी कहा गया है कि प्रत्येक सरकार के व्यय-खाते की स्वीकृति उसके विधानमडल से ली जानी चाहिए।

बजट-अनुमान

केन्द्रीय सरकार के बजट का अनुमान सन् १९६०-६१ के बजट से लगाया जा सकता है। इस वर्ष के बजट मे ९८० ३५ करोड रु० का व्यय तथा वर्तमान करो के आधार पर ८९६ ४५ करोड रु० का राजस्व दिखाया गया है। इस प्रकार, सन् १९६०-६१ के बजट में ८३ ९ करोड रु० का घाटा निकलता है। नए कर-सम्बन्धी प्रस्तावो-द्वारा लगभग २३ . ५३ करोड रु० की अतिरिक्त आय होने का अनुमान है। फलत घाटे की रकम बच कर ६० ३७ करोड रुपये रह जाएगी।

अगले पृष्ठ की तालिका में भारत-सरकार के सन् १९६०-६१ के बजट का सक्षिप्त विवरण दिया गया है

तालिका-संख्या १६

भारत-सरकार का राजस्वगत बजट

(लाख रु०)

	१९५८-५९ का खाता	१९५९-६० का बजट	१९५९-६० संशोधित	१९६०-६१ का बजट
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
राजस्व				
सीमा-शुल्क	१३,८२९	१३,२७७	१६,०००	१६,००० +२५०*
केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क	३१,२९४	३२,४३२	३५,०८२	३५,८९१ +२,१०३†
निगम-कर	५,४३३	५,८७५	७,८००	१३,५००
आय-कर	१७,२०१	१६,६२५	१५,२००	१०,५००
सम्पत्ति-शुल्क	२७०	२८५	२८५	३००
धन-कर	९६७	१,३००	१,२००	७००
रेल-किरायों पर कर	१,२२४	१,१००	१,२५६	१,२७७
व्यय-कर	६४	१००	८०	६०

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
दान-कर	९८	१२०	८०	८०
अफीम	३१५	३९२	४२६	५६९
ब्याज	८३१	१,०७५	८२७	१,५७१
असैनिक-प्रशासन	५,१०१	३,५८०	४,७५४	५,३१९
मुद्रा तथा टकसाल	३,२०३	५,५६०	५,५८७	५,७२२
असैनिक कार्य	२९४	३००	३१३	३०४
राजस्व के अन्य स्रोत	३,३०४	४,१९३	३,५००	३,९७३
डाक और तार (शुद्ध अशदान)	६४२	४२०	४१६	४७
रेल (शुद्ध अशदान)	६२६	५९८	५७५	५६४
घटाइए—राज्यो को देय आय-कर का भाग	–७,५८०	–७,८६२	–७,९३२	–५,२०६
घटाइए—राज्यो को देय सम्पत्ति-शुल्क का भाग	–२३८	–२७१	–२७६	–२९०
घटाइए—राज्यो को देय रेल-किरायो पर कर का भाग	–१,०८९	–१,०८९	–१,३०७	–१,२६६
कुल राजस्व	७५,७८९	७८,०१०	८३,८६६	८९,६४५ +२,३५३*
राजस्वगत घाटा	५२५	५,९०८	१,५३९	६,०३७

* बजट-प्रस्तावों का प्रभाव ।

† इसमें ७० लाख रु० की वह रकम शामिल नहीं है, जो राज्यों को दिए जानेवाले केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क (आधारभूत और अतिरिक्त) का भाग है ।

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
व्यय				
राजस्व में से प्रत्यक्ष व्यय ...	९,८५२	१०,१६५	१०,३५४	१०,७३३
सिंचाई	१०	१६	१४	१७
ऋण-सेवाएं ..	४,८६३	५,७८८	६,५१४	७,४५९
असैनिक प्रशासन	१९,३४९	२२,२७३	२३,३३५	२६,७७६
मुद्रा और टकसाल	८६०	९८३	९८६	१,०२७
असैनिक कार्य	१,६४१	१,९३५	१,८९४	२,०३२
विविध	८,६१४	१०,०६२	१०,८१९	१४,२०९
प्रतिरक्षा-सेवाएं (शुद्ध)	२५,०९३	२४,२६८	२४,३७०	२७,२२६
राज्यों को सहायता-अनुदान और अशदान	४,६२५	४,९०२	४,८९८	५,१८१
असाधारण मदे	१,४०७	३,५२६	२,२२१	३,३७५
कुल व्यय	७६,३१४	८३,९१८	८५,४०५	९८,०३५
राजस्वगत बचत	—	—	—	—

तालिका-सख्या १७

भारत-सरकार का पूजीगत बजट

(लाख रु०)

	१९५८-५९ का खाता	१९५९-६० का बजट	१९५९-६० (संशोधित)	१९६०-६१ का बजट
विभिन्न मदो से कुल आय	८२ २०९	१,१६,४३२	१ ०६,१९५	१,१७,६६३
पूजी खाते मे घाटा	१,१९९	—	—	—
विभिन्न मदो पर कुल व्यय	८३,४०८	११०,५४४	१,०३,०९३	१,०६,२७९
पूजी खाते मे अधिशेष	—	५,८८८	३,१०२	८,३९४

नीचे की तालिका में सन् १९५०-५१, १९५८-५९ और १९५९-६० मे भारत-सरकार की बजट-सम्बन्धी स्थिति का विवरण दिया गया है

तालिका-संख्या १८

भारत-सरकार की बजट-सम्बन्धी स्थिति

(करोड़ रु०)

	१९५०-५१ का लेखा	१९५८-५९		१९५९-६० का बजट
		बजट	संशोधित	
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
१. राजस्वगत खाता				
(क) राजस्व*	४०५ ८६	६८४ ०२	६३९ ५३	६९० ७७**
(ख) व्यय†	३४६ ६४	७१२ ०४	६९९ ४८	७४९ ०९
(ग) बचत (+) या घाटा (—)	+५९ २२	—२८ ०२	—५९ ९५	—५८ ३२
२. पूंजीगत खाता				
(क) आय††	१०४ ४५	६७९ ३५	६७५ ९२‡‡	९४७ ५२§
(ख) व्यय	१८२ ५९	८५० ५४	८७३ ४७	१,१११ ५३
(ग) बचत (+) या घाटा (—)	—७८ १४	—१७१ १९	—१९७ ५५	—१६४ ०१

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
३ विविध (शुद्ध)‡	+१५ २६	−१ १३	+० ८१	+ ० ८६
४ कुल बचत (+) या घाटा (−) (१ग+२ग+३)	−३ ६६	−२०० ३४	−२५६ ६६	−२२१ ४४
(क) राजकोष हुंडिया§§ } वृद्धि (+)	−१६ १०	−२०५ ००	−२५५ ००	−२२२ ००
(ख) रोकड़ बाकी } (घाटा) (−)	+१२ ४४	+४ ६६	−१ ६६	० ५६
(१) पूर्वशेष	१४६ ५	५० ५५	५१ ८१	५० १२
(२) इतिशेष	१६१ ६४	५५ २१	५० १२	५० ६८

टिप्पणी : सन् १९५९-६० के बजट-अनुमान वे हैं, जो लोकसभा में पेश किए गए।

(*) उत्पादन-शुल्कों और अन्य करो में राज्यो का हिस्सा छोड़ कर; (**) बजट-प्रस्तावो के प्रभाव को शामिल करके; (†) उत्पादन-शुल्कों तथा अतिरिक्त उत्पादन-शुल्कों मे राज्यों का हिस्सा छोड़ कर, (††) राजकोष-हुंडियों से होनेवाली आय के अलावा; (‡) इग्लैंड तथा भारत के बीच नकदी का प्रेषण तथा हस्तान्तरण; (‡‡) इसमें ३०० करोड़ रु० की तदर्थ राजकोष-हुंडियां शामिल नहीं है, जिन्हें जुलाई १९५८ में ४ प्रतिशत ऋण, १९७३, में परिवर्तित करके रिजर्व बेंक ने ले लिया और जो बाजार में नहीं रखी जाएंगी, (§) इसमें सार्वजनिक नीलामी में १५ करोड़ रु० की राजकोष-हुंडियों की बिक्री शामिल है; (§§) अधिकाशत. रिजर्व बेंक को बेची गईं।

नीचे की तालिका मे सन् १९५१-५२, १९५८-५९ और १९५९-६० मे राज्यो की बजट-सम्बन्धी सम्मिलित स्थिति का विवरण दिया गया है

तालिका-सख्या १९

राज्यों की बजट-सम्बन्धी सम्मिलित स्थिति*

(करोड़ रु०)

	१९५१-५२ का खाता	१९५८-५९ बजट	१९५८-५९ संशोधित	१९५९-६० बजट
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
१ राजस्वगत खाता				
राजस्व	४०५ ४	७४२ १	७८८ ८	८३३ ०
व्यय	३९२ ७	७४५ ८	७७० ८	८२९ ६
बचत (+) अथवा घाटा (−)	+१२ ७	−३ ७	+१८ ०	+४ ०
२. पूंजीगत खाता				
आय	१६३ ६	४२८ ८	४६१ ९	४८४.८
व्यय	१८८ ७	४३६ १	४९४ ९	४९५ ३
बचत (+) अथवा घाटा (−)	−२५ १	−७ ३	−३३ ०	−१० ५

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
३. विविध (शुद्ध)	+१ ६	−३ ६	−१ २	−० ६
४ नकद बचत में वृद्धि (+) अथवा घाटा (−)	−१० ८	−१४ ५	−१३ ८	−७ १
(क) पूर्वशेष	६१ ५	−१ ५	१३ ६	−० २
(ख) इतिशेष	५० ७	−१६ ०	−० २	−७ ३

*इस तालिका में जम्मू-कश्मीर राज्य के आकडे शामिल नहीं किए गए हैं, क्योंकि इस राज्य में बजट पेश करने की प्रणाली अन्य राज्यो से काफी भिन्न रही है। कुछ राज्यो के सम्बन्ध में सन् १९५८-५९ तथा १९५९-६० के बजट-अनुमान करो में परिवर्तन किए जाने से पूर्व के है।

कर

आय-कर

सम्पूर्ण आय का लगभग आठवा भाग आय-कर से प्राप्त होता है। यह कर तीन हज़ार प्रतिवर्ष आयवाले प्रत्येक व्यक्ति पर लगता है। (सन् १६५७ से पूर्व, ४,२०० रु० तक की आय पर कोई कर नही लगता था।) सयुक्त हिन्दू-परिवारो पर उसी दशा मे कर लगेगा, जब कि सम्मिलित आय ६ हजार रु० से अधिक हो।

आय के कुछ वर्ग कर से मुक्त हैं। इनमे कृषि-आय, धार्मिक तथा दातव्य सस्थाओ की आय (जिसमे न्यासान्तर्गत सम्पत्ति भी शामिल है), शिक्षालयो की आय, स्थानीय अधिकरणो-द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्र मे अर्जित आय तथा आकस्मिक आय—यथा, पुरस्कार का धन—सम्मिलित है। १ अप्रैल, १६५६ से पूजीगत आय पर भी कर लगा दिया गया है।

सम्पत्ति-शुल्क

जहा तक सम्पत्ति-शुल्क का सम्बन्ध है, भारत-स्थित समस्त चल अथवा अचल सम्पत्ति पर, जो मृत्यु के परिणामस्वरूप एक हाथ से दूसरे हाथ मे जाती है, शुल्क लिया जाता है। इसमे १ लाख रु० मूल्य की (हिन्दू अविभक्त परिवार की सम्पत्ति के मामले मे ५० हज़ार रु० की) सामान्य छूट दी जाती है। सम्पत्ति-शुल्क-अधिनियम के उपबन्धो के अन्तर्गत कुछ और रिआयते भी दी गई हैं।

धन-कर

सन् १६५७-५८ के बजट मे पहली बार धन-कर तथा व्यय-कर लगाए गए। धन-कर १ अप्रैल, १६५७ से लागू हुआ। जिन व्यक्तियो की सम्पत्ति का मूल्य २ लाख रु० से अधिक है, जिन हिन्दू अविभक्त परिवारो की कुल सम्पत्ति ४ लाख रु० से अधिक है, तथा जिन कम्पनियो की सम्पत्ति ५ लाख रु० से अधिक है, उन पर यह कर लगाया गया है। कृषि-सम्पत्ति, दातव्य न्यासो की सम्पत्ति, व्यक्तिगत वस्तुओ तथा मान्यता-प्राप्त भविष्य-निधियो और बीमा-पालिसियो मे जमा रकमो पर यह कर नही लगता। इसके अतिरिक्त, २५ हज़ार रु० मूल्य तक के आभूषण भी कर-मुक्त हैं।

जहा तक कम्पनियो का सम्बन्ध है, बैंकिंग, बीमा तथा जहाजरानी-कम्पनियो को इस कर से बिल्कुल मुक्त कर दिया गया है तथा नए औद्योगिक प्रतिष्ठानो को उनके निगमित करने की तिथि से अगले पाच वर्ष के आकलन-वर्षो के लिए कर नही देना होगा। जिस किसी कम्पनी मे किसी दूसरी कम्पनी की हिस्सा-पूजी हो, उस कम्पनी की सम्पत्ति मे धन-कर लगाने के हेतु वह हिस्सा-पूजी शामिल नही की जाएगी। जिन कम्पनियो को जिस वर्ष घाटा होगा, उन्हे उस वर्ष के लिए इस कर से मुक्त कर दिया जाएगा। जिन कम्पनियो को किसी वर्ष कम लाभ होगा, उस वर्ष धन-कर की रकम लाभ को रकम के अनुसार होगी। विदेशी कम्पनिया को केवल अपनी भारतीय सम्पत्ति पर ही कर देना होगा।

व्यय-कर

व्यय-कर १ अप्रैल, १९५८ से लागू हुआ। यह कर केवल उन्ही व्यक्तियों तथा हिन्दू अविभक्त परिवारो पर लगाया गया है, जिनकी समस्त स्रोतो से शुद्ध आय, सब कर चुकाने के बाद, ३६,००० रु० से ऊपर होगी। यह कर व्यक्तिगत उपभोग के केवल उसी व्यय पर लगेगा, जो निर्धारित बुनियादी रकम से ऊपर होगी।

ऋण तथा छोटी बचतें

सरकार-द्वारा जारी किए गए ऋणो तथा छोटी बचतो मे जनता ने हाल के वर्षों मे बडा उत्साह दिखाया है। सन् १९४६-४७ मे छोटी बचतो के रूप मे २६८ ३ करोड रु० प्राप्त हुए थे। अनुमान है कि सन् १९५८-५८ के अन्त मे यह रकम लगभग ७१७ ५ करोड रु० थी।

सरकारी ऋण

भारत-सरकार की ब्याजवाली देनदारिया, जो सन् १९५७-५८ के अन्त में ४,२१६ करोड रु० की थी, बढती-बढती सन् १९५८-५९ के अन्त में ४,९६४ करोड रु० की हो गई और अनुमान है कि सन् १९५९-६० के अन्त तक ये ५,५६७ ६७ करोड रु० की हो जाएगी। सन् १९५७-५८

के अन्त में ये आन्तरिक देनदारिया ४,००५ करोड रु० की तथा सन् १९५८-५९ के अन्त मे ४,९५७ ६४ करोड रु० की थी ।

इन देनदारियो के मुकाबले, मार्च १९५९ के अन्त में भारत-सरकार की ब्याजदायी परिसम्पदाए ३,९९९ करोड रु० की थी, जो पिछले वर्ष की परिसम्पदाओ से ६०३ करोड रु० अधिक और कुल ब्याजयुक्त देनदारियों का चार-पचमाश भाग थी । सन् १९५९-६० मे ब्याजदायी परिसम्पदाएं बढ कर ४,५३५ करोड रु० की हो गई, अर्थात् पिछले वर्ष की अपेक्षा उनमें ५३६ करोड रु० की वृद्धि हुई

मार्च १९५९ के अन्त मे भारत-सरकार पर कुल विदेशी ऋण ३९१ २५ करोड रु० का था, जिसमे से डालर-ऋण लगभग २६२.३१ करोड रु० का था । डालर-ऋण मे उत्तरोत्तर वृद्धि परिलक्षित होती है । स्मरण रहे, सन् १९५१ मे यह ऋण कुल २४ ६ करोड रु० का था ।

द्रव्य-उपलब्धि तथा मुद्रा

अत्यधिक निर्यात-अधिशेष तथा सरकार-द्वारा घाटे की अर्थ-व्यवस्था किए जाने के फलस्वरूप, दूसरे विश्वयुद्ध की अवधि मे मुद्रा-परिचलन में बहुत वृद्धि हुई । अगस्त १९४५ मे यह (अविभक्त भारत के लिए) १,२४३ ८३ करोड रु० थी, जो कि युद्ध-पूर्व के स्तर से छ-गुना अधिक थी । युद्ध के कुछ वर्षों के बाद भी मुद्रा-विस्तार जारी रहा, परन्तु इसकी गति अपेक्षतया धीमी रही ।

पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ होने से पूर्व, भारतीय सघ में जनता के पास लगभग १,३३१ ४१ करोड रु० तथा दूसरी पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे १,५०५ ०९ करोड रु० की मुद्रा थी । सन् १९५९ में जनता के पास लगभग १,८०८ ८ करोड रु० की मुद्रा (छोटे सिक्को को छोड़ कर) थी ।

दशमिक सिक्के

देश में अप्रैल १९५७ से दशमिक सिक्के जारी किए गए । इस नई प्रणाली के अनुसार, रुपये को १६ आनो, ६४ पैसो तथा १९२ पाइयों के बजाय

१०० इकाइयो मे विभक्त कर दिया गया है। यह इकाई 'नया पैसा' कहलाती है।

१ नया पैसा, २ नए पैसे, ५ नए पैसे, १० नए पैसे, २५ नए पैसे तथा ५० नए पैसे के सिक्के जारी कर दिए गए हैं। पुरानी चवन्नी २५ नए पैसो तथा अठन्नी ५० नए पैसो के बराबर हैं।

पुरानी दुअन्नी, इकन्नी, अधन्ना, पैसा तथा पाई के सिक्के वापस लिए जा रहे है।

अप्रैल १६५६ के अन्त मे भारत-सरकार ने ईरान की खाडी के इलाके कुवैत, बहरीन, कतार, सधिगत राज्यो तथा मस्कत के कुछ हिस्सो मे चल रहे भारतीय नोटो की जगह विशेष नोट जारी कर दिए। इसके अतिरिक्त, हाजियो के लिए दस तथा सौ रुपये के नए नोट भी जारी कर दिए गए है।

बैंक

बैंकिंग कम्पनी-अधिनियम १६४६-द्वारा भारतीय बैंक-प्रणाली से सम्बन्धित उपबन्धो का एकीकरण कर दिया गया है तथा कुछ नए उपबन्ध भी तैयार किए गए है। इस अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को, जिसका सन् १६४८ मे राष्ट्रीयकरण किया गया था, देश मे बैंक-प्रणाली का नियमन करने का अधिकार मिल गया है। रिजर्व बैंक ने एक पृथक् 'बैंकिंग कार्य' विभाग स्थापित कर दिया है, जो बैंको की गतिविधियो पर दृष्टि रखता है तथा समय-समय पर निरीक्षण करने के अलावा, आवश्यकता पडने पर परामर्श और सहायता भी प्रदान करता है।

भारत मे इस समय ६४ अनुसूचित बैंक है। अक्तूबर १६५६ तक अनुसूचित बैंको के कार्यालयो की कुल सख्या ३,८६२ थी।

सन् १६५६ के अन्त मे अनुसूचित बैंको की माग और सामयिक देनदारियो की रकम क्रमश ७१७ २५ करोड रुपये तथा १,११० ८३ करोड रु० थी।

अगस्त १६५१ मे रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्राम-ऋण-सर्वेक्षण आरम्भ करवाया, ताकि ऐसे आकडे, आदि एकत्र किए जा सके, जिनकी सहायता से ग्राम-ऋण की एक सगठित नीति बनाई जा सके। सर्वेक्षण की

रिपोर्ट सन् १९५४ में प्रकाशित हुई। इसमें एक भारतीय राज्य बैंक की स्थापना की सिफारिश की गई, जिसकी शाखाए समस्त जिला-मुख्यालयो, यहा तक कि छोटे केन्द्रो मे भी हो। फलत सन् १९५५ मे इम्पीरियल बैंक आफ इडिया को 'स्टेट बैंक आफ इडिया' मे परिवर्तित कर दिया गया। अपना पहला कारोबार जारी रखने के अतिरिक्त, स्टेट बैंक पाच वर्षों की अवधि मे लगभग ४०० शाखाए खोलेगा, हुडियो की और अच्छी सुविधाए प्रदान करेगा तथा ग्राम-बचतो को इकट्ठा करने का प्रबन्ध करेगा। आशा है कि जब गोदाम और हाट-व्यवस्था का विकास हो जाएगा, तब यह बैंक ग्राम-क्षेत्रो मे ऋण की सुविधाओ के विस्तार के लिए एक शक्तिशाली माध्यम बन जाएगा।

ग्राम-ऋण-सर्वेक्षण-समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि रिजर्व बैंक सहकारी आन्दोलन का पुनर्गठन करने के लिए व्यय के निमित्त दो राष्ट्रीय कोष बनाए। इस सिफारिश पर अमल करते हुए राष्ट्रीय कृषि-ऋण (दीर्घकालीन गतिविधिया) कोष तथा राष्ट्रीय कृषि-ऋण (स्थिरीकरण) कोष बना दिए गए है।

गैर-सरकारी लिमिटेड कम्पनियो तथा सहकारी समितियो को मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण देने तथा गैर-सरकारी क्षेत्र मे पूजी की कमी को दूर करने के उद्देश्य से कुछ वर्ष पूर्व औद्योगिक वित्त-निगम की स्थापना की गई। राज्य-सरकारो ने भी वित्त-निगमो की स्थापना की है। इन निगमो के हिस्से और बाड सरकारी सिक्यूरिटियो के बराबर समझे जाते है।

जून १९५८ मे एक पुनर्वित्त-निगम स्थापित किया गया। यह निगम केवल उन्ही औद्योगिक कम्पनियों को ऋण की कुछ सुविधाए देता है, जिनकी चुकता पूजी तथा सुरक्षित पूजी किसी खास मामले मे ढाई करोड़ रुपये से अधिक की न हो।

बीमा

१९ जनवरी, १९५६ से भारत-सरकार ने जीवन-बीमा-व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया तथा भारत में विदेशी बीमा-कम्पनियों का

जीवन-बीमा-सम्बन्धी कारोबार तथा भारतीय बीमा-कम्पनियो का विदेशी कारोबार भी सम्भाल लिया। राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप सामान्य बीमे पर कोई प्रभाव नही पडा तथा डाक और तार-विभाग डाकघर-जीवन-बीमा का कार्य पूर्ववत् कर रहा है। एक ससदीय अधिनियम के अन्तर्गत १ सितम्बर, १९५६ को जीवन-बीमा-निगम स्थापित किया गया, जो एक स्वशासी निकाय है। इसकी समस्त हिस्सा पूजी केन्द्रीय सरकार की है। अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने निगम-द्वारा बीमे की सब रकमे तथा बोनस की रकमे नकद देने की गारण्टी दी है।

अस्तित्व मे आने के बाद मे जीवन-बीमा-निगम ने ऐसी २४३ बीमा-कम्पनियो का नियत्रित कारोबार सम्भाला है, जो बीमा-अधिनियम (१९३८) के अन्तर्गत दर्ज थी तथा राष्ट्रीयकरण मे पूर्व जीवन-बीमा-सम्बन्धी व्यवसाय कर रही थी। इन बीमा-कम्पनियो की कुल परिसम्पदा ४११ करोड रु० की थी तथा इन्होने १,२५० करोड रु० का बीमा किया था। सन् १९५८ के अन्त मे भारत मे १,५८४ करोड रु० के बीमे की ५६ ७४ लाख पालिसिया तथा भारत के बाहर ९८ करोड रु० के बीमे की २ ६ लाख पालिसिया थी। इस प्रकार, वर्ष के अन्त मे कुल व्यवसाय १,६८२ करोड रु० का था।

३१ दिसम्बर, १९५९ को भारत मे बीमा-अधिनियम, १९३८ के अन्तर्गत दर्ज भारतीय तथा अभारतीय बीमा-कम्पनियो की सख्या क्रमश ९० तथा ८७ थी। भारतीय जीवन-बीमा-निगम का नाम भी इस अधिनियम के अन्तर्गत दर्ज है।

३१ मार्च, १९५८ को भारतीय बीमा-व्यवसायियो के सामान्य बीमा-व्यवसाय की कुल परिसम्पदाए ५१.७९ करोड रु० मूल्य की थी।

कम्पनिया

३१ मार्च, १९५९ को भारत मे ज्वाइट स्टाक कम्पनियो की कुल सख्या २७,४७९ तथा इनकी कुल चुकता पूजी १,५०९ ८ करोड रु० थी। इन कम्पनियो मे से ७,७६० सार्वजनिक कम्पनिया तथा १९,७१९ प्राइवेट कम्पनिया थी, जिनकी चुकता पूजी क्रमश ७८४.१ करोड रु० तथा

७२५'७ करोड़ रु० थी। इसके अतिरिक्त, मुनाफा न कमानेवाली सस्थाओ तथा लिमिटेड कम्पनियों की सख्या १,३२३ थी। अप्रैल १९५९ के अन्त मे देश मे सरकारी कम्पनियो (जिनकी ५१ प्रतिशत अथवा अधिक हिस्सा पूजी सरकारी है) की सख्या ११३ थी।

अध्याय ११

वैज्ञानिक अनुसंधान

भारत मे वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसधान की अभिवृद्धि और समन्वय-सम्बन्धी सरकारी नीति को कार्यान्वित करने का काम मुख्य रूप से वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान-परिषद् करती है।

परिषद् के नियन्त्रण मे अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालाए तथा सस्थान है। अनुसधान-सस्थानो तथा विश्वविद्यालयो मे वैज्ञानिको को सहायता-अनुदान देने तथा विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी का प्रचार-प्रसार करने का काम भी इसी परिषद् के जिम्मे है। इसके अतिरिक्त, परिषद् एक राष्ट्रीय रजिस्टर की भी व्यवस्था करती है, जिसमे देश के वैज्ञानिको तथा तकनीकी कर्मचारियो के नाम दर्ज किए जाते है। अनुसधान के क्षेत्र मे विश्वविद्यालय स्वशासी अनुसधान-सघटन तथा औद्योगिक कम्पनियो की प्रयोगशालाए भी उपयोगी कार्य कर रही है।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान-परिषद् के नियन्त्रण मे इस समय २५ राष्ट्रीय प्रयोगशालाए है। परिषद् के कार्यो का खर्च मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार ही उठाती है। परन्तु परिषद् को कुछ अन्य स्रोतो से भी आय होती है। १९५९-६० मे परिषद् का आवर्तक व्यय ३ ६७ करोड रु० तथा पजीगत व्यय २ ४५ करोड रु० था।

जिन अनुसधान-सघटनो का कार्य दान तथा सरकारी सहायता से चल रहा है, उनमे कुछ अधिक महत्व के सघटन ये है भारतीय विज्ञान-सस्थान, बगलोर, जिसकी स्थापना सन् १९०९ मे हुई, बोस-सस्थान, कलकत्ता भारतीय वैज्ञानिक शोध-सस्थान, कलकत्ता, तथा भौतिकी अनुसधान-प्रयोगशाला, अहमदाबाद।

अन्य अनुसधानशालाओ तथा विश्वविद्यालयो के वैज्ञानिको को भी सहायता-अनुदान दिए जाते है। इससे स्वतन्त्र अनुसधान-कार्य को प्रोत्साहन मिल रहा है।

विज्ञान-मन्दिर

सामुदायिक विकास-परियोजना-क्षेत्रो मे विज्ञान-मन्दिर नामक ३८ ग्रामीण वैज्ञानिक केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं। ये केन्द्र जनता मे वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार करते हैं।

न्यैष्टिक अनुसधान तथा परमाणु-शक्ति

न्यैष्टिक अनुसधान के क्षेत्र मे बम्बई का टाटा मूलभूत अनुसधान-सस्थान एक अग्रणी सस्था है। ब्रह्माड-किरण (कास्मिक रे) के क्षेत्र मे अनुसधान करने का यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र है, तथा इसने आधारभूत परमाणुओ के सिद्धात-सम्बन्धी कार्य मे बडा उल्लेखनीय कार्य किया है। परमाणु-शक्ति के क्षेत्र मे कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने का काम भी इसी सस्थान को सौपा गया है। इसके अतिरिक्त, कलकत्ते मे स्वर्गीय मेघनाद साहा-द्वारा स्थापित न्यैष्टिक भौतिकी सस्थान भी बडा उपयोगी कार्य कर रहा है।

परमाणु-शक्ति

हाल मे भारत-सरकार ने एक 'परमाणु-शक्ति-आयोग' की स्थापना की है। आयोग के सदस्यो मे डा० एच० जे० भाभा तथा डा० के० एस० कृष्णन् हैं। इस आयोग की नियुक्ति मे पूर्व, भारत का 'परमाणु-शक्ति-प्रतिष्ठान' तथा 'परमाणु-खनिज-शाखा', परमाणु-शक्ति-विभाग के नियन्त्रण मे थे।

बम्बई के निकटस्थ ट्राम्बे के 'परमाणु-शक्ति-प्रतिष्ठान' मे जीव-रसायन, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-विभागो के अतिरिक्त भौतिकी, रसायन-विज्ञान तथा इजीनियरी की तीन मुख्य शाखाए हैं। इस प्रतिष्ठान मे लगभग एक हजार वैज्ञानिक तथा तकनीकी कर्मचारी काम करते हैं। 'अप्सरा' नामक भारत की प्रथम परमाणु-भट्टी, जो कि तैरने के तालाब-जैसी है, ४ अगस्त, १९५६ से चालू हुई। कुछ मामूली बातो के सिवा, इस भट्टी की डिजाइन, सचालन और निर्माण पूर्ण रूप से भारतीय कर्मचारियों ने ही किया है। रूस के बाहर एशिया मे चालू होनेवाली यह सर्वप्रथम भट्टी

है। इसके अतिरिक्त, 'जरलीना' नामक एक अन्य परमाणु-भट्टी भी बनाई जा रही है।

विभिन्न मन्त्रालय भी कुछ महत्वपूर्ण अनुसधान-इकाइया चला रहे हैं, जिनमे केन्द्रीय सिचाई और बिजली-बोर्ड के ११ जलगति (हाइड्रालिक)-अनुसधान-केन्द्र, असैनिक उड्डयन-महानिदेशालय का अनुसधान और विकास-निदेशालय तथा देहरादून का वन-अनुसधान-सस्थान प्रमुख है।

रेडियो-तरगो के प्रसारण और प्रापण-सम्बन्धी समस्याओ की जाच करने के लिए नई दिल्ली मे आकाशवाणी की एक अनुसधान-इकाई है। रेलवे-बोर्ड का भी एक अनुसधान-केन्द्र लखनऊ मे तथा दो उप-केन्द्र अन्य स्थानो मे हे।

भारतीय मानक-सस्थान, जो उद्योग-मन्त्रालय के अधीन है, सामग्री तथा उत्पादनो के मानक स्थिर करती है। कलकत्ते का भारतीय अक-सकलन-सस्थान आर्थिक समस्याओ का अध्ययन करने के अतिरिक्त, अक-सकलन के क्षेत्र मे गहन अनुसधान भी करता है।

चिकित्सा-अनुसधान

भारत मे चिकित्सा-अनुसधान के क्षेत्र मे हाल के वर्षो मे उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सन् १९१२ मे स्थापित भारतीय चिकित्सा-अनुसधान-परिषद् ने भारत मे चिकित्सा-सम्बन्धी अनुसधान-कार्य की अभिवृद्धि तथा समन्वय मे विशेष रूप मे योग दिया है। नई दिल्ली मे हाल मे एक अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञान-सस्थान की स्थापना की गई है। कलकत्ते का 'अखिल भारतीय स्वच्छता तथा लोक-स्वास्थ्य-सस्थान' अपने क्षेत्र मे बडा उपयोगी कार्य कर रहा है। कलकत्ते का 'उष्ण कटिबधीय ओषधि-विद्यालय' (स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन) उष्ण कटिबध के क्षेत्रो मे पाई जानेवाली बीमारियो के सम्बन्ध मे अनुसधान करता है।

बम्बई का 'हाफकिन सस्थान' चेचक के टीके, आदि तैयार करने मे बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्लेग रोकने तथा उसका इलाज करने का यह मुख्य केन्द्र है। इस सस्थान का कार्य-क्षेत्र बढा दिया गया

है और अब यह पौष्टिकता, मलेरिया तथा कीटाणुओ से फैलनेवाली बीमारियो के क्षेत्र में भी कार्य करता है।

उपर्युक्त अनुसधान-केन्द्रो के अतिरिक्त, देश के विभिन्न भागो मे अन्य अनेक केन्द्र है, जो विविध क्षेत्रो मे अनुसधान करते है।

कृषि-अनुसधान

सन् १६२६ मे स्थापित 'भारतीय कृषि-अनुसधान-परिषद्' केन्द्रीय तथा राज्यीय सस्थानो, विश्वविद्यालयो तथा अन्य सस्थानो मे कृषि तथा पशुपालन के क्षेत्र मे अनुसधान करवाती है। कृषि-सम्बन्धी अनुसधान करनेवाले अन्य केन्द्रो का विवरण 'कृषि' शीर्षक अध्याय मे देखिए।

दूसरी पचवर्षीय योजना

दूसरी पचवर्षीय योजना मे वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान-परिषद् के कार्यक्रमो के लिए २० करोड रु० की रकम रखी गई है। इसके अतिरिक्त, अनेक नए अनुसधान-केन्द्र खोलने का भी विचार है तथा परिषद् की समितियो ने वैज्ञानिक और टेक्नोलाजिकल विषयो, इजीनियरी तथा जीवशास्त्र के सम्बन्ध मे विस्तृत कार्यक्रम बना लिए है। इसके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग ने भी विश्वविद्यालयो में अनुसधान-कार्य करने के लिए १७ करोड रु० की व्यवस्था की है।

भारत-सरकार ने समस्त क्षेत्रो—सैद्धातिक, व्यावहारिक तथा शैक्षणिक—मे वैज्ञानिक अनुसधान की अभिवृद्धि करने तथा व्यक्तिगत प्रयास को प्रोत्साहन देने का जो सिद्धात अपनाया है, उसका पूर्ण विवरण उस प्रस्ताव मे विद्यमान है, जो ससद् मे १३ मार्च, १६५८ को पेश किया गया था।

अध्याय १२

शिक्षा

भारत मे शिक्षा की व्यवस्था करने का दायित्व मुख्यत राज्य-सरकारो का है । केन्द्रीय सरकार केवल शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों मे समन्वय स्थापित करती है, पथ-प्रदर्शन करती है तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है । भारत के सविधान मे कहा गया है कि सन् १९६० तक सरकार को १४ वर्ष की अवस्था तक के सब बच्चो के लिए नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए । सविधान के इस निदेश को अमली जामा पहनाने के लिए केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारो ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से, विशेषकर सन् १९५१ मे पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के बाद से, अनेक कदम उठाए है ।

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार, भारत मे शिक्षित लोगो का प्रतिशत १६ ६१ था । देश के २४ ८८ प्रतिशत पुरुष और ७ ८७ प्रतिशत महिलाए शिक्षित थी । केरल मे शिक्षा का सर्वाधिक प्रसार था । वहा के ४० ८८ प्रतिशत लोग शिक्षित थे । राजस्थान इस मामले मे बहुत पिछड़ा हुआ था । वहा १०० व्यक्तियो मे से केवल ९ व्यक्ति ही पढना-लिखना जानते थे ।

योजना तथा शिक्षा

पहली पचवर्षीय योजना मे शिक्षा के विकास के लिए १६९ करोड रु० की व्यवस्था थी । दूसरी पचवर्षीय योजना मे इसके लिए ३०७ करोड रु० की व्यवस्था है ।

विद्यालयो, विद्यार्थियो और अध्यापकों की सख्या तथा शिक्षा पर होनेवाले व्यय में इधर बराबर वृद्धि हो रही है। नीचे की तालिका में इनका विवरण दिया गया है :

तालिका-संख्या २०

शिक्षा की प्रगति

वर्ष	विद्यालयो की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या (लाख)	अध्यापकों की संख्या (लाख)	कुल व्यय (करोड़ रु०)
१९५०-५१	२,८६,८६०	२५५ ४३	८.०४	११४.३८
१९५५-५६	३,६६,६४१	३३९ २४	११ ०७	१८९ ६६
१९५६-५७	३,७७,८३७	३६० ०६	११ ७	२०६ २९
१९५७-५८ (अस्थायी)	३,९४,२९२	३८० ६२	१२ २५	२३५ ६७

इनमे से अनेक विद्यालयो को सीधे सरकार ही चलाती है। बाकी विद्यालयो की व्यवस्था जिला-बोर्ड और नगरपालिकाए करती है। प्राइवेट विद्यालयो की सख्या भी कम नही है। इनमे से अनेक को अनुदान मिलता है और कुछेक बिना किसी सरकारी सहायता के चल रहे है। सन् १९५७-५८ मे देश के ३,९४,२९२ विद्यालयो मे से १,००,४९४ विद्यालयो को सरकार, १,५२,८३४ विद्यालयो को जिला-बोर्ड तथा १०,३९४ विद्यालयो को नगरपालिकाए चला रही थी। १,१८,४४५ प्राइवेट विद्यालय अनुदान पा रहे थे तथा १२,१२५ विद्यालय बिना सरकारी सहायता के चल रहे थे।

पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षा

पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ से इन दोनो क्षेत्रो मे विद्यालयो, विद्यार्थियो, अध्यापको तथा व्यय मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। सन् १९५०-५१ मे पूर्व-प्राथगिक शिक्षा के केवल ३०३ विद्यालय थे, जिनमे २१,६४० विद्यार्थी

और ८६६ अध्यापक थे तथा कुल व्यय ११.६८ लाख रु० था। सन् १९४७-४८ में विद्यालयो की सख्या ६२१, विद्यार्थियो की सख्या ४६,६२४, अध्यापको की सख्या २,४२३ तथा व्यय की राशि ३२ ४१ लाख रु० तक जा पहुची। इसी प्रकार, सन् १९५०-५१ मे प्राथमिक शिक्षा के २,०६,६७१ मान्यताप्राप्त विद्यालय थे, जिनमे १,८२,९३,९६७ विद्यार्थी और ५,३७,९१८ अध्यापक थे तथा व्यय ३६ ४६ करोड रु० था। सन् १९५७-५८ मे विद्यालयो (सीनियर बुनियादी विद्यालय भी) की सख्या २,९८,३३६, विद्यार्थियो की सख्या २,५२,१६,९७१, अध्यापको की सख्या ७,३१,५७५ तथा व्यय-राशि ६६ ५२ करोड रु० तक जा पहुची। तीसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक ६-११ वय-वर्ग के समस्त बच्चो के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो जाएगी। प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध मे केन्द्र तथा राज्य-सरकारो को परामर्श देने के लिए एक अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-परिषद है।

माध्यमिक शिक्षा

विभिन्न राज्यों की माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी गतिविधियो का समन्वय करने के लिए एक अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद् है। सन् १९५३ मे एक विशेष आयोग ने माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली मे आवश्यक सुधार करने के लिए कुछ सुझाव दिए थे। आयोग ने एक मख्य सिफारिश यह की थी कि माध्यमिक विद्यालयों को ऐसे विद्यालय समझने की प्रवृत्ति का अन्त होना चाहिए, जहा विश्वविद्यालय के लिए छात्र तैयार होते है, तथा इन विद्यालयो मे नवयुवको को विविध प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अच्छे नागरिक बनें। आयोग ने विज्ञान, टेक्नोलाजी, वाणिज्य, कृषि, ललित कलाओ और गृह-विज्ञान तथा अध्यापको को ट्रेनिग देने की सुविधाओ मे सुधार करने के लिए भी अनेक सुझाव दिए थे।

स्वतन्त्र भारत मे माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहा सन् १९५०-५१ मे भारत मे कुल २०,८८४ माध्यमिक विद्यालय, ५२,३२,००९ विद्यार्थी, २,१२,००० अध्यापक

तथा व्यय-राशि ३० ७४ करोड रु० थी, वहा सन् १९५७-५८ मे विद्यालयो की सख्या ३६,१३४, विद्यार्थियों की सख्या १,०२,४६,५००, अध्यापको की सख्या ३,६६,६५१ तथा व्यय-राशि ६६ १२ करोड रु० तक जा पहुंची ।

बुनियादी शिक्षा

बुनियादी शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा को बच्चो के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के अनुसार रूप दिया जाता है तथा विद्यार्थियो को कताई, बुनाई और घरेलू काम सिखाए जाते है। वर्तमान प्रारम्भिक विद्यालयो को बुनियादी विद्यालय बनाने, नए बुनियादी विद्यालय खोलने, गैर-बुनियादी विद्यालयो मे कला-कौशल की शिक्षा देने, उपयुक्त साहित्य तैयार कराने तथा प्रशिक्षण-कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है । सन् १९५६ मे एक राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा-सस्थान भी स्थापित किया गया ।

सन् १९५०-५१ मे जूनियर बुनियादी और सीनियर बुनियादी विद्यालयो की सख्या क्रमश ३३,३७९ और ३५१ थी, जिनमे क्रमश २८,४८,२४० और ६६,४८२ विद्यार्थी थे तथा व्यय-राशि ३ ९४ करोड रु० और २१ लाख रु० थी । सन् १९५७-५८ में जूनियर और सीनियर विद्यालयो की सख्या क्रमश ५२,०२९ और ७,८१९, विद्यार्थियो की सख्या क्रमश ४८,१२,९८१ और १,१६,८१९ तथा व्यय-राशि क्रमश १०.८५ करोड रु० और ६ २६ करोड रु० थी ।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा

भारत में विश्वविद्यालयो की तीन श्रेणियां हैं । कुछ विश्वविद्यालय अध्यापन-कार्य नही करते, बल्कि परीक्षाओ के सचालन, आदि की व्यवस्था करते हैं, कुछ विश्वविद्यालय उपर्युक्त काम के साथ-साथ अध्यापन तथा अनुसधान-कार्य की सुविधाए भी प्रदान करते है; तथा कुछ विश्वविद्यालय सभी प्रकार के अध्यापन-कार्य की व्यवस्था करते है ।

सन् १९५९ में भारत मे निम्नलिखित विश्वविद्यालय थे । उनकी स्थापना-तिथि कोष्ठको में दी गई है

अन्नमलई विश्वविद्यालय (१९२९), अलीगढ विश्वविद्यालय (१९२१), आगरा विश्वविद्यालय (१९२७), आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्तेयर, (१९२६), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ (१९५८), इलाहाबाद विश्वविद्यालय (१८८७), उत्कल विश्वविद्यालय, कटक (१९४३), उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद (१९१८), एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय, बम्बई (१९५१), कलकत्ता विश्वविद्यालय, (१८५७), कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड (१९४९), केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम (१९३७), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (१९५६), गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (१९४९), गोरखपुर विश्वविद्यालय (१९५७), गौहाटी विश्वविद्यालय (१९४८), जबलपुर विश्वविद्यालय (१९५७), जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, (१९४८), जादवपुर विश्वविद्यालय (१९५५), दिल्ली विश्वविद्यालय (१९२२), नागपुर विश्वविद्यालय (१९२३), पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ (१९४७), पटना विश्वविद्यालय (१९१७), पूना विश्वविद्यालय (१९४९), बडौदा विश्वविद्यालय (१९४९), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (१९१६), बम्बई विश्वविद्यालय (१८५७), बिहार विश्वविद्यालय, पटना (१९५२), मद्रास विश्वविद्यालय (१८५७), मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (१९५८), मैसूर विश्वविद्यालय (१९१६), राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (१९४७), रुडकी विश्वविद्यालय (१९४९), लखनऊ विश्वविद्यालय (१९२१), वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (१९५८), विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (१९५७), विश्व-भारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन (१९५१), श्री वेंकटेश्वर विश्व-विद्यालय, तिरुपति (१९५४), सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ, वल्लभनगर—आनन्द (१९५५), तथा सागर विश्वविद्यालय (१९४६)।

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास के विश्वविद्यालय सबसे प्राचीन है। इनकी स्थापना सन् १८५७ मे हुई थी।

अलीगढ विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा विश्वभारती विश्वविद्यालय केन्द्रीय सरकार के सीधे नियन्त्रण मे है।

राष्ट्रीय आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखते हुए उच्च शिक्षा का पुनर्गठन करने के लिए कई उपाय किए गए है। ये उपाय विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग की सिफारिशो पर आधारित हैं, जिसके अध्यक्ष डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् थे। आयोग ने मुख्य रूप से यह सिफारिश की थी कि विश्वविद्यालयों मे अध्यापन के मानदड और अध्यापको के जीवन-स्तर मे सुधार किया जाए तथा अध्ययन के अवसरो मे विविधता लाई जाए, जिससे विद्यार्थीगण अधिक-से-अधिक सख्या मे व्यावसायिक पाठ्यक्रमो का अध्ययन कर सकें।

आयोग ने इस बात का भी समर्थन किया था कि कृषि और ग्राम-इजीनियरी के पाठ्यक्रम पढाने के लिए ग्राम-सस्थान स्थापित किए जाए।

आयोग के सुझावो के अनुसार, केन्द्रीय सरकार ने अध्यापन के मानदड निश्चित करने तथा अध्ययन और अनुसधान की सुविधाओ की व्यवस्था करने के लिए सन् १९५३ मे एक विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग की स्थापना की। यह आयोग एक स्वतन्त्र निकाय है तथा इसे विश्वविद्यालयो तथा संस्थानो को अनुदान देने का अधिकार सौंपा गया है। अभी श्री डी० एस० कोठारी इस आयोग के अध्यक्ष है।

विश्वविद्यालयो की समस्याओ पर विचार करने तथा भारतीय विश्वविद्यालयो-द्वारा दी गई डिग्रियो तथा डिप्लोमो को पारस्परिक मान्यता देने के लिए अन्तर-विश्वविद्यालय बोर्ड है, जिसकी स्थापना सन् १९२५ मे हुई थी। इस बोर्ड का कार्य केवल परामर्श देना है।

उपर्युक्त विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त, अनेक ऐसे सस्थान भी है, जिनमे उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। दिल्ली का जामिया मिलिया तथा हरिद्वार के गुरुकुल की स्थिति विश्वविद्यालयों के समान ही है, हालाकि उनकी स्थापना सरकारी तौर पर केन्द्रीय अथवा राज्यीय अधिनियमो के अन्तर्गत नही हुई। राष्ट्रीय अनुसंधान-प्रयोगशालाओ तथा सस्थानो में से अनेक को अन्तर-विश्वविद्यालय बोर्ड ने उच्च अनुसंधान के केन्द्रो के रूप मे मान्यता प्रदान कर रखी है।

तकनीकी शिक्षा

भारत को न केवल देश के विकास-कार्यों के लिए, बल्कि देश की

समुचित प्रशासन-व्यवस्था के लिए भी एक बडी सख्या में प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता है। इसीलिए, देश में बडी तेजी से प्रशिक्षण की सुविधाओं का विकास किया जा रहा है। इस दिशा मे सबसे पहले पचवर्षीय योजना मे प्रयत्न किया गया। सन् १९५१-५२ तथा सन् १९५५-५६ की अवधि में तकनीकी विद्यालयो की सख्या ४५४ से बढ कर ६७० तथा तकनीकी कालेजो की सख्या ३५ से बढ कर ४७ हो गई । इनके विद्यार्थियो की भी सख्या ५१,००० से ८८,००० तक जा पहुची। सन् १९४९-५० मे जहा इन सस्थानो से ४,६८० व्यक्तियो ने डिग्रिया तथा डिप्लोमे प्राप्त किए, वहा सन् १९५५-५६ मे यह सख्या ९,००० तक जा पहुची।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे तकनीकी प्रशिक्षण का विकास करने की दिशा मे अच्छी प्रगति हो रही है। सन् १९५६-६१ मे ९ नए इजीनियरी कालेज तथा ४८ नए पालिटेक्नीक सस्थान खोलने का प्रस्ताव था। इनमे से ८ इजीनियरी कालेज तथा ३७ पालिटेक्नीक सस्थान खुल चुके हैं। इसके अतिरिक्त, ७ गैर-सरकारी इजीनियरी कालेजो तथा २० पालिटेक्नीक सस्थानो ने भी कार्यारम्भ कर दिया है। तीसरी पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय सरकार ने ९ प्रादेशिक इजीनियरी कालेज तथा २७ पालिटेक्नीक सस्थान खोलने की एक योजना स्वीकार कर ली है। जादवपुर तथा रुडकी विश्वविद्यालयो (जहा तकनीकी अध्ययन की विशेष व्यवस्था है) तथा अन्य विश्वविद्यालयो मे पढाए जानेवाले इजीनियरी-पाठ्यक्रमो के अतिरिक्त, भारतीय प्रौद्योगिकी सस्थान, खडगपुर तथा बम्बई और मद्रास के भारतीय प्रौद्योगिकी सस्थानो मे विविध उच्च प्रौद्योगिक पाठ्यक्रमो के पठन-पाठन की व्यवस्था है। कानपुर मे भी एक सस्थान स्थापित किया जा रहा है ।

अनुमान है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जो योजनाए आरम्भ की गई है, वे जब पूर्णत कार्यान्वित हो जाएगी, तब सन् १९६०-६१ तक इजीनियरी तथा टेक्नोलाजी की सब शाखाओ मे प्रथम डिग्री-पाठ्यक्रमो के लिए १०,५०० तथा डिप्लोमा-पाठ्यक्रमो के लिए लगभग १९,००० विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रवेश पाने लगेगे। इससे तकनीकी कर्मचारियो की सख्या मे लगभग चार या पाच-गुना वृद्धि हो जाएगी।

विश्वविद्यालयो, अनुसधान-प्रयोगशालाओ तथा अन्य सस्थानो मे प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए अनुसंधानवृत्तियो तथा फेलोशिप की भी व्यवस्था है ।

ग्रामीण उच्चतर शिक्षा

ग्रामीण उच्चतर शिक्षा से सम्बन्धित सभी बातो के बारे मे सरकार को परामर्श देने के लिए एक 'राष्ट्रीय ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-परिषद्' की स्थापना कर दी गई है । परिषद् ने दस सस्थानो को ग्रामीण सस्थान बनाने के लिए चुना, जिन्होने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है ।

समाज-शिक्षा

भारत की शिक्षा-समस्या सिर्फ यही नही है कि अधिकाधिक बालक-बालिकाओ को पढ़ने के लिए भेजा जाए और अधिकाधिक टेक्नीशियन तैयार किए जाए, बल्कि प्रौढो मे व्याप्त अशिक्षा की समस्या से भी लोहा लेना है । देश मे सब प्रौढ व्यक्तियो को मताधिकार प्राप्त है, इसलिए देश मे समाज-शिक्षा का एक सुनियोजित कार्यक्रम चलाने की नितात आवश्यकता है ।

हालाकि लोगो को पढना-लिखना सिखाने पर ज्यादा ज़ोर दिया जाता है, फिर भी इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रौढ़ो को नागरिकता, स्वास्थ्य तथा सफाई की शिक्षा प्रदान करना है । उत्साही स्वयसेवको की सहायता से नगरो और गावो मे प्रौढ-शिक्षा की कक्षाए तथा पुस्तकालय भी खोले जा रहे है । इसके अतिरिक्त, श्रव्य-दृश्य साधनो का भी बडे पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है ।

समाज-शिक्षा की तकनीको पर अनुसधान करने तथा समाज-शिक्षा के लिए वरिष्ठ कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने के लिए नई दिल्ली मे एक राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा-परिषद् की स्थापना की गई है । बच्चो तथा प्रौढो के लिए उपयुक्त साहित्य का निर्माण करने के उद्देश्य से प्रादेशिक भाषाओं में उत्तम पुस्तको के लेखकों को प्रतिवर्ष पुरस्कार भी प्रदान किए जाते हैं ।

केन्द्रीय फिल्म-संग्रहालय मे शिक्षा तथा संस्कृति-सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर लगभग ५,००० फिल्मे, आदि है, जो शिक्षा-संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओ को नि:शुल्क उधार दी जाती है ।

विकलांगो की शिक्षा

शारीरिक और मानसिक दृष्टि से विकलांग व्यक्तियो की शिक्षा, प्रशिक्षण तथा उनको रोज़गार देने-सम्बन्धी सभी बातो पर सरकार को परामर्श देने के लिए एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् विद्यमान है। नेत्र-हीन, बहरे तथा शारीरिक दृष्टि से हीन विद्यार्थियो को, उच्च शिक्षा तथा तकनीकी अथवा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए, छात्रवृत्तिया भी दी जाती है। नेत्रहीनो के लिए एक रोज़गार-कार्यालय मद्रास मे जुलाई १९५४ से कार्य कर रहा है ।

हिन्दी का प्रचार-प्रसार

हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने के लिए एक १५-वर्षीय कार्यक्रम बनाया गया है। हिन्दी मे पारिभाषिक शब्दावली बनाने के लिए वैज्ञानिक शब्दावली-बोर्ड के अधीन २३ विशेषज्ञ-समितिया कार्य कर रही है, जिन्होने अब तक लगभग १,६१,२६० पारिभाषिक शब्दों की रचना की है। इसके अतिरिक्त, १८ विषयो की पारिभाषिक शब्दावलिया प्रकाशित की जा चुकी है। सुधरी हुई देवनागरी-लिपि के आधार पर हिन्दी-टाइप-मशीन तथा दूरमुद्रक (टेलीप्रिंटर) के मानक 'की बोर्डों' पर विचार किया जा रहा है ।

अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों मे हिन्दी-प्रचार के लिए पुस्तकालयो, आदि मे पुस्तके बाटी जा रही है तथा प्रशिक्षक कालेज भी संगठित किए जा रहे है ।

अब शिक्षा-मन्त्रालय के अन्तर्गत एक हिन्दी-निदेशालय भी स्थापित कर दिया गया है ।

शारीरिक शिक्षा तथा खेल-कूद

शारीरिक शिक्षा-संस्थानो तथा कालेजो को सुदृढ़ बनाने, शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रमो को कार्यान्वित करने, शारीरिक स्वास्थ्य-परीक्षा के

नियमादि का प्रचार करने, विचार-गोष्ठियो का आयोजन करने, शारीरिक शिक्षा मे उच्च अध्ययन के लिए फेलोशिप और छात्रवृत्तिया देने, व्यायामशालाओ तथा अखाड़ो को सहायता प्रदान करने, शारीरिक दक्षता-सप्ताहो और मेलों का आयोजन करने तथा शारीरिक शिक्षा-सम्बन्धी वृत्तचित्र और फीचर फिल्मे तैयार करने के लिए एक राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन-योजना बनाई गई है । ग्वालियर मे (सन् १६५७ में) एक राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा कालेज स्थापित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त, शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमो तथा गतिविधियो में समन्वय स्थापित करने के लिए एक केन्द्रीय शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन सलाहकार बोर्ड भी स्थापित कर दिया गया है ।

खेल-कूद-विषयक गतिविधियो को प्रोत्साहन प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय खेल-कूद-सघटनो को सहायता दी जा रही है । इसके अतिरिक्त, भारतीय टीमो को विदेशो मे खेलने के लिए भेजा जाता है और विदेशी टीमो को भारत मे निमन्त्रित किया जाता है । इसके अतिरिक्त, राजकुमारी खेल-कूद-प्रशिक्षण-योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण-केन्द्र खोले जा रहे है । अधिकाश राज्यो मे खेल-कूद-परिषदे भी हैं ।

राष्ट्रीय अनुशासन-योजना

देश के युवा लोगो मे अनुशासन की भावना का विकास करने तथा उन्हे नागरिकता के आदर्शों का भलीभाति बोध कराने के उद्देश्य से जुलाई १६५४ मे विस्थापित बच्चो के लिए शारीरिक तथा सामान्य सामाजिक शिक्षा-योजना आरम्भ की गई थी । इस योजना के अन्तर्गत इस समय लगभग २,७५,००० बच्चे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है ।

अध्याय १३

स्वास्थ्य

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से भारत में जनता का स्वास्थ्य सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने लगे हैं। देश में बीमारियों की रोकथाम करने के साथ-साथ रोगों का इलाज करने की भी पूरी-पूरी सुविधाएं दी जा रही हैं। अब न केवल चिकित्सा की सुविधाओं तथा डाक्टरों और नर्सों के प्रशिक्षण-कार्यों में वृद्धि हो रही है, बल्कि जनता के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए देश के कोने-कोने में जोर-शोर से आन्दोलन भी किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, मलेरिया की रोकथाम करने के लिए जो आन्दोलन चल रहा है, उससे पांच-छः वर्ष की अवधि में ही मृत्यु-दर लगभग ३० प्रतिशत घट गई है। इस आन्दोलन की सफलता से तथा इस महत्वपूर्ण तथ्य से कि स्वतन्त्रता के बाद भारत में जीवन-काल २७ वर्ष से ३२ वर्ष हो गया है, यह सिद्ध होता है कि भारत में जनता के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली का बड़े पैमाने पर उपयोग हो रहा है।

सन् १९४७ में भारत में जो सर्वेक्षण किया गया, उसमें प्रकट हुआ था कि भारत में मृत्यु-दर १९.७ प्रति हजार, बाल-मृत्यु दर १४६ प्रति हजार तथा कुल मृत्यु-अनुपात में १० वर्ष से नीचे वयवालों का मृत्यु-अनुपात ४८.४ प्रतिशत था। सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ कि छूत की बीमारियों से प्रतिवर्ष ६२ लाख व्यक्तियों की मृत्यु होती थी तथा क्षय-रोग से प्रतिवर्ष २५ लाख व्यक्ति पीड़ित होते थे और उनमें से ५ लाख मौत के मुंह में चले जाते थे।

निरन्तर प्रगति

जनता का स्वास्थ्य सुधारने के लिए सरकार ने जो उपाय किए हैं, उनकी सफलता इसी बात से आंकी जा सकती है कि सन् १९५८ तक मृत्यु-दर १९.७ से घट कर ८.८ तथा बाल-मृत्यु-दर प्रति हजार १४६ से

घट कर ६२ प्रति हज़ार रह गई। इसी प्रकार, बुखार, चेचक, प्लेग, हैजा और पेचिश, आदि से मृत्यु-दर में भी काफी कमी हुई।

वैसे तो स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यक्रमों की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व राज्य-सरकारों का है, परन्तु केन्द्रीय सरकार भी परिवार-आयोजन, जल-व्यवस्था तथा मलेरिया, फीलपाव और छूत की बीमारियों की रोकथाम करने के कार्यक्रम चलाने तथा प्रशिक्षण-सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करने का काम करती है और उसका खर्च उठाती है।

सन् १९४७ में भारत में ३,८२५ अस्पताल और दवाखाने थे, जिनमें ४,३०,१९,७७२ रोगियों की चिकित्सा की गई और कुल व्यय ४,६३,८४,०८३ रु० हुआ। सन् १९५७ में अस्पतालों और दवाखानों की संख्या ९,९५८ तक जा पहुंची, जिनमें लगभग १३ करोड़ रोगियों की चिकित्सा की गई। इस वर्ष के व्यय के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु अनुमान है कि पिछले वर्ष (सन् १९५६ में) कुल व्यय २३,२६,७२,८२७ रु० का हुआ था।

सन् १९५७ के अन्त में देश में ६१,६३० रजिस्टरशुदा चिकित्सक, ६६,१४७ वैद्य, हकीम और अन्य प्रकार के चिकित्सक, ३८,४०७ कम्पाउंडर, ३६,५१७ नर्स, ३३,२०८ दाइयां ५,८८५ टीका लगानेवाले तथा ३,६१४ दन्त-चिकित्सक थे।

विभिन्न रोगों की रोकथाम करने और जनता को चिकित्सा की सुविधाएं देने के लिए जो कार्य किया जा रहा है उसका विवरण संक्षेप में नीचे दिया गया है।

मलेरिया

३१ जनवरी, १९६० तक देश में लगभग २१.४१ करोड़ व्यक्तियों को मलेरिया से सुरक्षा प्रदान की जा चुकी है। राष्ट्रीय मलेरिया-नियन्त्रण-कार्यक्रम को बदल कर राष्ट्रीय मलेरिया-उन्मूलन-कार्यक्रम बना दिया गया है। इस कार्यक्रम में अमेरिकी तकनीकी सहयोग-प्रशासन तथा विश्व-स्वास्थ्य-संघटन योगदान कर रहे हैं।

फीलपांव

सन् १९५४-५५ में राष्ट्रीय फीलपाव-नियन्त्रण-कार्यक्रम आरम्भ

किया गया था। अक्तूबर १९५९ के अन्त तक २ २९ करोड़ व्यक्तियों की जाच की गई। अब तक इस रोग से पीडित लगभग ४९ लाख व्यक्तियो की चिकित्सा तथा ३७ लाख घरो मे कृमिनाशक दवाइयों का छिड़काव किया जा चुका है। एरणाकुलम मे एक व्यावहारिक प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण-केन्द्र है, जिसमें अब तक ७० चिकित्सा-अधिकारी तथा १३६ निरीक्षक (इन्सपेक्टर) प्रशिक्षण पा चुके है।

क्षयरोग

अनुमान है कि भारत मे प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख व्यक्ति क्षय-रोग से पीडित होते हैं और इनमे से लगभग ५ लाख मौत के शिकार हो जाते हैं।

सन् १९४८ मे अन्तर्राष्ट्रीय क्षय-विरोधी आन्दोलन के सहयोग मे देश-भर मे बी० सी० जी० टीका लगाने का अभियान शुरू किया गया था। दिसम्बर १९५९ के अन्त तक लगभग १३ ९२ करोड़ व्यक्तियो की जाच की गई तथा लगभग ४ ८८ करोड़ व्यक्तियो को टीके लगाए गए।

नई दिल्ली, नागपुर, पटना, मद्रास, हैदराबाद तथा त्रिवेन्द्रम मे ६ प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण-केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य संस्थाओ में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था है। सयुक्त राष्ट्र-सघ के अन्तर्राष्ट्रीय बाल-सहायता-कोष तथा विश्व-स्वास्थ्य-सघटन के सहयोग से एक राष्ट्रीय प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित कर दिया गया है। सन् १९५९ मे देश मे क्षयरोग की चिकित्सा के लिए ७१ आरोग्य-गृह, ७० अस्पताल, २२३ उपचारगृह (क्लिनिक), १५१ वार्ड तथा २५,००० रोगी-शय्याए थी। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ४,००० और शय्याओ की व्यवस्था करने का विचार है। क्षयरोग से मुक्ति पानेवाले व्यक्तियो की देखभाल, आदि के लिए देश मे १५ बस्तिया हैं। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ऐसी और १० बस्तियां बसाने का विचार है। प्रतिवर्ष क्षयरोग-सील-बिक्री-आन्दोलन तथा बी० सी० जी० दिवस का आयोजन किया जाता है। क्षयरोग के क्षेत्र मे सबसे बड़ी स्वयसेवी सस्था है 'भारतीय क्षय-रोग सघ', जो इस दिशा मे बड़ा उपयोगी कार्य कर रहा है। इसकी स्थापना सन् १९३९ मे हुई थी।

भारतीय चिकित्सा-अनुसंधान-परिषद् के तत्वावधान में जो सर्वेक्षण किया गया है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि (क) जनसख्या को देखते हुए रोग की व्यापकता मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ है; (ख) रोगियो की सख्या प्रति हजार व्यक्ति पीछे ७ से लेकर ३० तक है, जो कि स्त्रियो में अपेक्षाकृत कम है, (ग) ३५ वर्ष तथा इससे ऊपर के वयवर्गो मे रोग की व्यापकता अपेक्षाकृत अधिक है, तथा (घ) प्रति हजार व्यक्ति पीछे १-११ व्यक्तियो मे क्षय के कीटाणु पाए जाते हैं।

कुष्ठरोग

अनुमान है कि सन् १९५३ मे देश मे लगभग १५ लाख व्यक्ति कुष्ठ-रोग (कोढ) से पीडित थे। असम, आंध्रप्रदेश, केरल, बिहार, मद्रास, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बम्बई के कुछ हिस्सो मे इसका सबसे अधिक प्रकोप रहता है। पहली पचवर्षीय योजना मे कुष्ठरोग-नियंत्रण-योजना के अन्तर्गत ४ उपचार और अध्ययन-केन्द्र तथा २९ सहायक केन्द्र स्थापित किए गए। दूसरी पचवर्षीय योजना मे १०० और सहायक केन्द्र स्थापित करने का प्रस्ताव है। सितम्बर १९५९ तक ९५ केन्द्र खुल चुके थे।

चिंगलपेट-स्थित केन्द्रीय कुष्ठ-अध्यापन और अनुसधान-संस्थान के दो अस्पतालो मे कुष्ठरोग से पीडित व्यक्तियो की चिकित्सा की व्यवस्था है। इस क्षेत्र मे कुछ स्वयसेवी सघटन भी बडा उपयोगी काम कर रहे है।

जनता को सुरक्षित जल उपलब्ध कराने तथा स्वच्छता-सम्बन्धी कार्यक्रमो की सफलता की बदौलत हैजा, मियादी बुखार और पेचिश-जैसी बीमारियो से मृत्यु-सख्या घट रही है। मद्रास, मध्यप्रदेश तथा आंध्रप्रदेश मे फफोले रोग की रोकथाम के लिए भी आन्दोलन किया जा रहा है।

पोषण

जनता के आहार मे पोषक तत्वो की कमी के कारण शारीरिक दुर्बलता विश्व-भर की एक बड़ी जटिल समस्या बनी हुई है। सन् १९३५

से भारत में आहार और पौष्टिकता-सम्बन्धी जो जाच-पडताल होती आई है, उससे विदित होता है कि एक भारतीय के भोजन में कई चीजो का अभाव होता है। विभिन्न कार्यों की दृष्टि से, एक प्रौढ व्यक्ति के दैनिक आहार में २,४०० से ३,७५० कैलोरिया होनी चाहिए। परन्तु एक औसत भारतीय के भोजन में १,७५० कैलोरिया ही होती है और हमारे भोजन मे प्रोटीन, स्निग्ध पदार्थ, खनिज तथा विटामिन-जैसे आवश्यक खाद्य-पदार्थों की कमी रहती है।

आहार-सम्बन्धी मानदडो मे सुधार करना मुख्यत एक आर्थिक समस्या है, जिसका सम्बन्ध भारत की अर्थ-व्यवस्था के विकास से है। फिर भी, गर्भवती स्त्रियो, जच्चाओ, विद्यार्थियो तथा औद्योगिक मजदूरो, आदि के भोजन मे पौष्टिक पदार्थों के अभाव की पूर्ति के लिए उपाय किए जा रहे है।

खाने-पीने की चीजो मे मिलावट रोकने के उद्देश्य से एक अधिनियम स्वीकार किया गया है, जिसमे मिलावट करनेवाले व्यक्तियो को कठोर दड देने की व्यवस्था है।

जल-व्यवस्था तथा सफाई

पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे ५० हजार और इससे अधिक की जनसख्यावाले १२८ नगरो, ३० हजार से ५० हजार के बीच की जनसख्यावाले ६० कस्बो तथा इससे कम जनसख्यावाले २१० कस्बो मे सुरक्षित जल की व्यवस्था थी। अनुमान था कि लगभग २५ प्रतिशत नागरिको को ही सुरक्षित पानी मिल रहा था। लगभग ४ करोड लोगो के लिए गन्दगी, वगैरह बहाने की भी कोई व्यवस्था नही थी।

राष्ट्रीय जल-व्यवस्था तथा सफाई-कार्यक्रम के अन्तर्गत नागरिक क्षेत्रो के लिए २७८ तथा ग्रामीण क्षेत्रो के लिए २३२ जल-व्यवस्था तथा नाली-योजनाए कार्यान्वित की जाएगी, जिन पर क्रमश ६४ करोड रु० तथा १७ ८७ करोड रु० व्यय होगे। ग्राम-योजनाओ के लिए राज्यो की दूसरी पचवर्षीय योजनाओ मे २८ करोड रु० की व्यवस्था है। नागरिक जल-योजनाओ के लिए ५३ करोड रु० रखे गए है, जिसमें से केन्द्रीय सरकार लगभग ३० करोड रु० खर्च करेगी।

कर्मचारी-राज्य-बीमा-योजना

औद्योगिक कर्मचारियों को चिकित्सा की सुविधाएं देने के लिए स्वास्थ्य-बीमा-योजना सबसे पहले सन् १९५२ में दिल्ली और कानपुर में आरम्भ की गई थी। इस योजना को अब अन्य कुछ नगरों में भी चालू कर दिया गया है। इस योजना के अनुसार, बीमाशुदा कर्मचारी सरकारी दवाखानों और अस्पतालों में जाकर, और अपने घर में भी, इलाज करवाने के हकदार हैं।

दिल्ली में केन्द्रीय कर्मचारियों की चिकित्सा के लिए एक अंशदायी स्वास्थ्य-सेवा की व्यवस्था है, जो १ जुलाई, १९५४ से काम कर रही है। इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के लगभग ४ लाख कर्मचारियों और उनके परिवारों को चिकित्सा की सुविधाएं दी जा रही हैं। प्रत्येक कर्मचारी को वेतन के अनुसार ५० नए पैसे से लेकर १२ रु० तक मासिक चन्दा देना पड़ता है। अंशदायी स्वास्थ्य-सेवा के लिए इस समय पूरे समय के २२८ चिकित्सा-अधिकारी, जिनमें ३३ विशेषज्ञ भी है, तथा ३८ औषधालय हैं। इनमें ३ चलते-फिरते औषधालय हैं, जो दूर-दूर रहने-वाले कर्मचारियों की सेवा करते हैं। अनुमान है कि सन् १९५९ में ४०,१४,५२७ कर्मचारियों ने इस योजना से लाभ उठाया।

देशी चिकित्सा-प्रणालियां

सरकार की यह स्वीकृत नीति है कि देशी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालियों को यथासम्भव प्रोत्साहन प्रदान किया जाए और वर्तमान चिकित्सा-प्रणाली इनसे जो-कुछ ग्रहण कर सकती है, करे। इस दिशा में केन्द्र तथा राज्य-सरकारों ने अनेक कदम उठाए हैं।

सन् १९५३ से जामनगर में केन्द्रीय देशी चिकित्सा-प्रणाली-अनुसंधान-संस्थान कार्य कर रहा है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-प्रणालियों की शिक्षा देने के लिए देश में ५० से अधिक विद्यालय तथा कालेज हैं, किन्तु इनके पाठ्यक्रम, आदि भिन्न-भिन्न हैं। होमियोपैथी में केन्द्रीय सरकार भी एक पंचवर्षीय पाठ्यक्रम चलाती है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली की वर्तमान स्थिति का मूल्याकन करने के लिए डा० के० एन० उडुपा की अध्यक्षता मे जो समिति नियुक्त की गई थी, उसने सन् १६५६ मे अपनी सिफारिशे प्रस्तुत की। तदनुसार, एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसधान-परिषद् स्थापित कर दी गई है। यह परिषद् केन्द्रीय सरकार को आयुर्वेदिक अनुसधान-सम्बन्धी परामर्श दिया करेगी।

ओषधि-नियत्रण

ओषधि-अधिनियम के अन्तर्गत आयात की जानेवाली ओषधियो पर नियत्रण रखने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है। परन्तु देश मे तैयार की जानेवाली ओषधियो के उत्पादन, बिक्री तथा वितरण पर नियत्रण रखने की जिम्मेदारी राज्य-सरकारो की है।

ओषधि तथा जादुई उपचार (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम के अन्तर्गत (जो १ अप्रैल, १६५५ से लागू हुआ) वासनोत्तेजक तथा यौन-रोगो के लिए तथाकथित जादुई उपचार का विज्ञापन करना निषिद्ध कर दिया गया है। परन्तु राष्ट्रीय स्वास्थ्य-कार्यक्रम मे परिवार-आयोजन को जो महत्व दिया गया है, उसको देखते हुए गर्भ-निरोधक दवाइयो, आदि का विज्ञापन करने की अनुमति है।

ओषधि-निर्माण

मद्रास के गिंडी नामक स्थान पर सन् १६४८ मे स्थापित बी० सी० जी० टीका-प्रयोगशाला देश की टीके की आवश्यकताए पूरी करने के अतिरिक्त मलय, सिगापुर, बर्मा, श्रीलका, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान की जरूरते भी पूरी कर रही है। कसौली का केन्द्रीय अनुसधान-सस्थान (स्थापना सन् १६०६) हैजा, पागलपन, स्नायु तथा पुट्ठो के रोगो तथा कठ-रोगो के टीको की समस्त आवश्यकताए पूरी कर रहा है। कुन्नूर मे इन्फ्लुएजा के टीके बनाए जाते है। पिंपरी-स्थित हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स लिमिटेड नामक कारखाने ने सन् १६५७-५८ मे २१४ ३ लाख मेगा यूनिट पेनिसिलीन का उत्पादन किया। ४००

मेगा यूनिट पेनिसिलीन का उत्पादन करने के लिए संयत्र में विस्तार किया जा रहा है। यह कारखाना स्ट्रेप्टोमाइसीन तथा क्लोरोमाइसीटीन का भी निर्माण करेगा। दिल्ली में डी० डी० टी० बनाने का भी एक कारखाना है। बम्बई के हाफकिन-संस्थान मे गधक से बननेवाली दवाए तैयार की जाती हैं, जिनकी गणना ससार की सर्वोत्तम दवाओं में होती है। भारत मे बैन्मीन-हैक्साक्लोराइड का भी निर्माण किया जाता है तथा कुनैन बनाने के लिए सिन्कोना की खेती को प्रोत्साहन देने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।

शिक्षा तथा प्रशिक्षण

पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली का प्रशिक्षण देने के लिए इस समय भारत मे ४५ मेडिकल कालेज, ६ दन्त-चिकित्सा कालेज तथा ५ अन्य सस्थाए हैं। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ११ नए मेडिकल कालेजो की स्थापना तथा १५ कालेजो के विस्तार की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त, एक समन्वित प्रादेशिक अस्पताल-प्रणाली तैयार करने का भी लक्ष्य है, जिसके ४ तत्व होगे—शिक्षा देनेवाला अस्पताल, जिला-अस्पताल, तहसील-अस्पताल तथा ग्रामीण चिकित्सा केन्द्र, जो एक स्वास्थ्य-इकाई से सम्बद्ध होगा। सामुदायिक विकास-परियोजना-क्षेत्रो तथा अन्य क्षेत्रो मे लगभग ३,००० स्वास्थ्य-इकाइया स्थापित की जाएगी। इस तरीके से देश-भर मे एक आधारभूत स्वास्थ्य-सघटन की व्यवस्था की जा सकेगी। अनुमान है कि लगभग २,६०० नए अस्पताल तथा दवाखाने खुल जाएगे, जिनमे लगभग १,५५,००० रोगी-शय्याए उपलब्ध होगी।

नर्सों के प्रशिक्षण के लिए नई दिल्ली और वेलोर के नर्सिंग कालेजो तथा देश के लगभग सभी अस्पतालो मे व्यवस्था है। दूसरी पचवर्षीय योजना में ३०,००० दाइयो तथा १,२०० स्वास्थ्य-निरीक्षको को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है।

परिवार-आयोजन

भारत की आर्थिक प्रगति में रोड़ा अटकानेवाली एक महत्वपूर्ण

बात यह है कि देश की जनसंख्या बडी तेजी से बढ रही है। यही कारण है कि परिवार-आयोजन पर विशेष बल दिया जा रहा है। परिवार-आयोजन का अधिक-से-अधिक प्रचार करने तथा इस सम्बन्ध में सलाह-मशविरा, आदि देने के लिए नगरो और गावो मे उपचारगृह (क्लिनिक) खोले जा रहे हैं।

पहली पचवर्षीय योजना मे १४७ उपचारगृह खोले गए थे। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ग्रामीण क्षेत्रो मे २,००० और नागरिक क्षेत्रो मे ५०० उपचारगृह खोले जाएगे। परिवार-आयोजन के लिए ४ करोड ६७ लाख रु० की व्यवस्था है। अब तक ३१३ नागरिक तथा ६६५ ग्रामीण उपचारगृह खुल चुके हैं।

इसके अतिरिक्त, गर्भ-निरोध-सम्बन्धी अनुसधान भी कुछ केन्द्रो मे किया जा रहा है।

परिवार-नियोजन-सम्बन्धी कार्यक्रम तैयार करने के लिए केन्द्र मे एक उच्चाधिकार-प्राप्त परिवार-आयोजन बोर्ड है। लगभग सभी राज्यो मे ऐसे बोर्ड स्थापित कर दिए गए हैं।

अध्याय १४

श्रम

भारत में संगठित श्रमिकों की संख्या बहुत कम है। इसका प्रमुख कारण यह है कि देश का पर्याप्त उद्योगीकरण नहीं हुआ है। 'कारखाना-अधिनियम' के अन्तर्गत राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों में कारखानों में काम करनेवाले श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या सन् १९५७ में ३४,७९,८९५ थी। बगानों में काम करनेवाले श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या सन् १९५६ में १२,०२,२७३ थी तथा सन् १९५८-५९ में रेलों में प्रतिदिन ११,४३,९१६ श्रमिक काम करते थे। खानों तथा मुख्य बन्दरगाहों में प्रतिदिन क्रमशः ६,४९,३६० तथा ६७,८९६ श्रमिक काम करते थे।

सन् १९५९ (अक्तूबर) में कोयला-खानों में काम करनेवाले श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या ३,५८,६७६ थी। समस्त खानों में काम करनेवाले श्रमिकों की संख्या सन् १९५८ में ६,४९,३६० थी। सूती वस्त्र-उद्योग में नवम्बर १९५९ में कुल ८,९२,९३२ श्रमिक काम कर रहे थे तथा उनकी दैनिक औसत संख्या ७,७२,९६३ थी।

चूंकि भारत ने अपने सामने समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा है, इसलिए श्रमिकों की स्थिति में सुधार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। उत्पादन में वृद्धि करने की सर्वोपरि आवश्यकता को देखते हुए, केन्द्र और राज्य-सरकारों ने श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए अनेक कानूनी तथा प्रशासनिक कदम उठाए हैं। कुछ जागरूक मालिकों ने भी यह अनुभव किया है कि यदि श्रमिक सन्तुष्ट हुआ, तो वह प्राणप्रण से उनके साथ सहयोग करेगा।

मोटे तौर पर, सरकार की श्रम-नीति का उद्देश्य यह है कि उद्योगों में शान्ति बनी रहे, रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो और विविधता आए, श्रमिकों को समुचित सुविधाएं मिलें, उत्पादकता और कुशलता में वृद्धि

हो, श्रमिकों को समुचित कानूनी सुरक्षा मिले तथा उत्तरदायी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन के विकास के लिए समुचित परिस्थितियां उत्पन्न की जाए, आदि-आदि ।

स्वतन्त्रता मिलने से पहले भी भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सघटन का एक सक्रिय सदस्य था। भारत की स्वतन्त्र सरकार ने सबसे पहले एक कार्य यह किया कि उसने उद्योगपतियो और श्रमिको के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया, ताकि उद्योगो मे शान्ति बनाए रखने तथा झगडे निबटाने के लिए उचित उपाय निकाले जा सके। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् के अलावा, श्रमिको के लिए विभिन्न उद्योगो मे त्रिदलीय समितिया (सरकार, मालिको तथा मजदूरो के प्रतिनिधियो को मिला कर) भी बनाई गई ।

पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ के साथ यह अनुभव किया गया कि मालिको और श्रमिको के बीच सहयोग और प्रेमपूर्ण व्यवहार का होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही, यह भी अनुभव किया गया कि श्रमिक-वर्ग केवल उसी दशा मे अपने चरित्र और कुशलता को ऊचा रख सकता है, जब वह रोटी-कपडे और मकान की चिन्ता से मुक्त हो तथा उसे पर्याप्त स्वास्थ्य-सेवाए और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए। तभी ये लोग योजना मे निर्धारित अपने कर्तव्यो का पालन कर सकेंगे। अब, जब कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक गतिविधियो मे कई गुना वृद्धि हो रही है, इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि श्रमिको के साथ उचित न्याय किया जाए।

मालिक-श्रमिक-सम्बन्ध

हाल के वर्षों मे मालिको और श्रमिको के सहयोग मे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। औद्योगिक समझौता-प्रस्ताव के बाद जो त्रिदलीय सघटन स्थापित किए गए, उनमे भारतीय श्रम-सम्मेलन, स्थायी श्रम-समिति तथा विभिन्न औद्योगिक और सलाहकार समितिया उल्लेखनीय हैं। सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद-अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार तथा राज्य-सरकारो ने इस आशय के आदेश जारी किए हैं, जिनमे

ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए वर्क्स कमेटियां बनाना अनिवार्य कर दिया गया है, जिनमें १०० या इससे अधिक लोग काम करते हैं। इस दिशा में कुछ और कदम भी उठाए गए हैं—जैसे, जिन विकास-समितियों में श्रम-सम्बन्धी बातों पर विचार किया जाता है, उनमें श्रमिकों के प्रतिनिधि भी लिए जाते हैं। सन् १९५१ में संयुक्त सलाहकार बोर्ड तथा केन्द्रीय उद्योग-सलाहकार परिषद् बनाई गई, जिसमें मालिकों और श्रमिकों, दोनों के प्रतिनिधि हैं। इसके अलावा, राज़ीनामा, आदि करवाने के लिए भारत में त्रिस्तरीय व्यवस्था है—श्रम-न्यायालय, औद्योगिक न्यायाधिकरण तथा राष्ट्रीय न्यायाधिकरण। राज़ीनामा करने के लिए राज्यों में भी अपने-अपने न्यायाधिकरण तथा श्रम-न्यायालय हैं। जब राज़ीनामा करवाने के प्रयत्न विफल हो जाते हैं, तब झगड़ों का पचनिर्णय करवाने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) का सहारा लिया जाता है।

उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों के योग के सम्बन्ध में एक दल ने पश्चिमी देशों में जाकर अध्ययन किया था। जुलाई १९५७ में भारतीय श्रम-सम्मेलन ने इस दल की सिफारिशों पर विचार किया। इस सम्मेलन में स्वेच्छा से प्रबन्ध-परिषदें बना कर प्रयोग करने का निश्चय किया गया। यह योजना इस समय २३ प्रतिष्ठानों में चालू है तथा १५ अन्य प्रतिष्ठानों ने भी इसे आज़माने की इच्छा प्रकट की है।

श्रमिकों की शिक्षा

'केन्द्रीय श्रमिक-शिक्षा-बोर्ड' में केन्द्र तथा राज्य-सरकारों और मालिकों के संघटनों के प्रतिनिधि तथा शिक्षा-शास्त्री होते हैं। बोर्ड ने देश में १० केन्द्र खोले हैं, जिनमें से ९ में श्रमिक अध्यापकों का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक लगभग ४ लाख श्रमिक शिक्षण प्राप्त कर लेंगे।

ट्रेड-यूनियन

श्रमिकों के संघ बनाने तथा सामूहिक रूप से सौदेबाजी करने के अधिकार को सरकार ने मान्यता दी है। सन् १९२६ के ट्रेड-यूनियन

अधिनियम में सन् १९४७ में संशोधन किया गया। इस संशोधन के अनुसार, यूनियनों को अनिवार्य मान्यता देने तथा अनुचित व्यवहार के विरुद्ध कुछ कदम उठाने की व्यवस्था थी। इस संशोधन को लागू नहीं किया गया। सरकार एक ऐसी नीति बना रही है, जिसके अनुसार यूनियनें सरकारी मदद के बजाय अपनी ही संगठित शक्ति तथा सामूहिक सौदेबाजी पर अधिक निर्भर करेंगी। सरकार यह भी चाहती है कि किसी कारखाने में श्रमिकों के लिए सौदेबाजी करनेवाली केवल एक ही प्रतिनिधि संस्था होनी चाहिए। दो या इससे अधिक यूनियनें होने के कारण, जिनमें अक्सर आपस में बैर रहता हो, श्रमिकों की स्थिति कमज़ोर हो जाती है।

दर्ज ट्रेड-यूनियनें

सन् १९५७-५८ में भारत में २२३ केन्द्रीय ट्रेड-यूनियनें तथा ६,८८२ राज्यीय ट्रेड-यूनियनें थीं, जिनमें सरकार को विवरण देनेवाली यूनियनों की संख्या क्रमशः १३६ तथा ५,३८४ थी। विवरण देनेवाली यूनियनों की सदस्य-संख्या क्रमशः ३,४२,१६६ तथा २६,७२,८८३ थी।

सन् १९५८ में इंडियन नेशनल ट्रेड-यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध यूनियनों की संख्या ७२७ तथा सदस्य-संख्या ६,१०,२२१; हिन्द-मजदूर-सभा से सम्बद्ध यूनियनों की संख्या १५१ और सदस्य-संख्या १,६२,६४२, आल इंडिया ट्रेड-यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध यूनियनों की संख्या ८०७ और सदस्य-संख्या ५,३७,५६७, तथा यूनाइटेड ट्रेड-यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध यूनियनों की संख्या १८२ और सदस्य-संख्या ८२,००१ थी। इस प्रकार, चारों संगठनों से सम्बद्ध ट्रेड-यूनियनों की कुल संख्या १,८६७ तथा सदस्य-संख्या १७,२२,७३१ थी।

वेतन और सामाजिक सुरक्षा

भारत के संविधान में यह कहा गया है कि राज्य सब श्रमिकों को निर्वाह-योग्य वेतन दिलवाने के लिए प्रयत्न करे। भारत-जैसी अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थावाले देश में एकदम सबके लिए निर्वाह-योग्य

वेतन की व्यवस्था करना तो सम्भव नहीं है, फिर भी सन् १६४८ में पास किए गए 'न्यूनतम वेतन-अधिनियम' के अन्तर्गत राज्य-सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार को कुछ ऐसे अनुसूचित उद्योगों के श्रमिकों का न्यूनतम वेतन निश्चित करने के लिए कहा गया है, जिनमें वेतन कम मिलता है तथा जहां अपनी मांगें पेश करने के लिए श्रमिकों के उपयुक्त संघटन नहीं हैं। यह अधिनियम कृषि-मजदूरों पर भी लागू होता है।

पहली पंचवर्षीय योजना में यह अनुभव किया गया था कि वेतन-सम्बन्धी नीति बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि उससे असमानताओं में अधिक-से-अधिक कमी हो। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी इस बात को महत्व दिया जा रहा है, क्योंकि देश ने अपने सामने समाजवादी समाज की रचना करने का लक्ष्य रखा है। सन् १६४६ के औद्योगिक सम्बन्ध-अधिनियम के अन्तर्गत सूती वस्त्र और चीनी-उद्योगों में वेतनों के मानदंड स्थिर करने के लिए 'वेतन-बोर्ड' स्थापित कर दिए गए हैं। सीमेंट-उद्योग में न्यूनतम वेतन के मानदंड निश्चित करने के लिए एक केन्द्रीय वेतन (मानकीकरण) बोर्ड भी स्थापित कर दिया गया है।

वेतन की अदायगी अधिनियम, १६३६ के अन्तर्गत ४०० रु० मासिक या इससे कम वेतन पानेवाले श्रमिकों को नियमित रूप से वेतन देने की व्यवस्था है। यह अधिनियम इस समय रेलों, खानों, कारखानों, बगानों, राज्यों में कुछ परिवहन-सेवाओं तथा अन्य प्रतिष्ठानों पर लागू होता है।

श्रमजीवी पत्रकारों के वेतन निश्चित करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने एक श्रमजीवी पत्रकार-वेतन-समिति बनाई। इस समिति ने मई १६५६ में अपनी रिपोर्ट पेश की। सरकार ने समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली हैं।

वेतन के प्रश्न के अतिरिक्त, यह भी अनुभव किया गया है कि श्रमिक सिर्फ उसी दशा में जी-जान से काम कर सकता है, जब उसे बीमारी, चोट या बेरोजगारी और ऐसे ही दूसरे खतरों से पैदा होने-वाली चिन्ताओं से मुक्त रखा जाए। इस प्रकार की अप्रत्याशित मुसीबतों

से श्रमिकों की रक्षा करने के लिए प्रत्येक उन्नत देश में सामाजिक सुरक्षा-योजनाएं विद्यमान है ।

भारत में कर्मचारी-मुआवजा-अधिनियम, १९२३ के अन्तर्गत इस प्रकार के कुछ लाभ दिए जा रहे हैं । अनेक राज्यो मे महिला श्रमिकों के लिए मातृत्व-लाभ-अधिनियम भी मौजूद है । अब देश के अधिकाश भागों में एक बडा विस्तृत कानून लागू कर दिया गया है, जिसे कर्मचारी-राज्य-बीमा-अधिनियम, १९४८ कहते हैं । यह अधिनियम पहले-पहल उन कारखानो पर लागू हुआ, जिनमें बिजली इस्तेमाल होती थी और २० या इससे अधिक मजदूर काम करते थे । इस अधिनियम के अन्तर्गत ४०० रु० मासिक या इससे कम वेतन पानेवालो को विभिन्न लाभ मिल रहे हैं । जिन क्षेत्रो में यह योजना लागू की गई है, उन क्षेत्रो के १४ ४३ लाख व्यक्ति इस योजना के अन्तर्गत हैं । सन् १९५८-५९ के अन्त तक कर्मचारियो ने ३ ८१ करोड रु० तथा मालिको ने २.९ करोड रु० दिए । कर्मचारियो को लाभ के रूप मे लगभग २.४५ करोड रु० दिए गए । इस योजना के अन्तर्गत बीमाशुदा व्यक्तियों के लगभग ४ १ लाख परिवारो को चिकित्सा की सुविधाए दी गई ।

सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे एक अन्य उल्लेखनीय कदम है, कर्मचारी-भविष्य-निधि-अधिनियम, १९५२ की रचना । यह योजना उन सब प्रतिष्ठानो पर लागू होती है, जिनमे ५० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं । ३०० रु० मासिक से कम वेतन पानेवाले सभी श्रमिक अपने वेतन का ६ १।४ प्रतिशत भाग चन्दे के रूप मे देते हैं । मालिक भी इतना ही चन्दा देते हैं । सितम्बर १९५९ के अन्त में यह योजना ७,५०२ कारखानो पर लागू थी, जिनमे काम करनेवाले कुल ३१ ७१ लाख व्यक्तियो में से २५ २५ लाख इसके सदस्य थे तथा भविष्य-निधि में कुल १५१.८ करोड रु० जमा थे ।

कोयला-खानो में काम करनेवाले श्रमिकों के लिए विशेष भविष्य-निधि तथा बोनस की योजनाए हैं । कोयला-खान भविष्य-निधि-योजना के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था है कि श्रमिक अपनी आय का ६ १।४ भाग (तथा इतना ही मालिक भी) चन्दे के रूप मे देते हैं । यह शेष भविष्य-

निधि तथा बोनस की योजनाओ को ही है कि इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में, जो पहले अस्थायी काम के लिए कुख्यात था, लोगो को नियमित काम करने की प्रेरणा मिली है। इस समय ये योजनाएं ८ राज्यो की कोयला-खानो पर लागू हैं। अक्तूबर १९५८ के अन्त मे इस निधि की कुल परि-सम्पदाए लगभग १७ करोड़ रु० की थी।

काम की दशाएं

काम की दशाओ का नियमन करने के लिए कारखाना-अधिनियम १९४८, भारतीय खान-अधिनियम तथा बगान-श्रमिक-अधिनियम उल्लेखनीय कानून है। इनके अतिरिक्त, कारखानो, खानो तथा बगानो मे कल्याण-योजनाओ के खर्च के लिए निधियां बनाने के हेतु भी कानून विद्यमान हैं।

इन अधिनियमों के अन्तर्गत मालिको का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिए उपाय करें। इन अधिनियमो के अन्तर्गत काम के घंटों, छुट्टी, सवेतन छुट्टियो, आदि से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातो की भी व्यवस्था है। समय-समय पर कारखानों का निरीक्षण करके इस बात की भी जाच की जाती है कि उनमें काम की दशाएं निश्चित मानदडो के अनुसार हैं कि नही।

इन निधियो में से चिकित्सा, शिक्षा और मनोरजन, आदि की सुविधाए देने की भी व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त, मकान, आदि बनाने के लिए भी इनमें से व्यवस्था की जाती है।

भारत में कृषि एक प्रकार से पारिवारिक धधा ही रहा है। इसलिए, इस क्षेत्र मे प्रभावशाली कानून लागू करने में कुछ कठिनाइयो का सामना करना पडता है। कृषि-श्रमिको के लिए अभी न्यूनतम वेतन-अधिनियम ही लागू किया गया है। इसके अलावा, ठीक-ठीक आकड़े, आदि भी उपलब्ध नहीं हैं। सन् १९५०-५१ में लगभग ८०० गावों में कृषि-श्रमिकों के सम्बन्ध मे एक नमूने की जाच-पड़ताल की गई थी। इसके अनन्तर काफी उपयोगी आकड़े और तथ्य, आदि इकट्ठे किए गए। अब इस दिशा में बड़े पैमाने पर काम करने की योजना बनाई जा रही है।

दूसरी जांच सन् १९५६-५७ में की गई। इसके परिणाम अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

गोदी-कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए सरकार ने मुख्य-मुख्य बन्दरगाहों पर कल्याण-अधिकारी नियुक्त किए हैं। उनके लिए भविष्य-निधि की योजनाएं भी हैं। नाविकों के लिए सरकार उपचार-गृह, टी-स्टाल और कैंटीनें, आदि चला रही है। हाल ही में कलकत्ते में गोदी-कर्मचारियों के लिए एक अस्पताल भी खोला गया है।

श्रमिकों के लिए मकान, आदि की व्यवस्था करने की ओर खास ध्यान दिया जा रहा है। कोयला-खानों के श्रमिकों के लिए मकान, आदि बनाने के काम को प्रोत्साहन देने के लिए एक सशोधित आवास-सहायता-योजना हाल में चालू की गई है। खान-श्रमिकों के लिए आवास-योजनाओं के अलावा, सन् १९५२ से एक सामान्य सहायता-प्राप्त औद्योगिक आवास-योजना भी चल रही है। इस योजना के अन्तर्गत, राज्य-सरकारों को श्रमिकों के लिए मकान बनाने के लिए स्वीकृत लागत का ५० प्रतिशत सहायता के रूप में और बाकी ऋण के रूप में दिया जाता है। मालिकों और श्रमिकों की सहकारी समितियों को लागत का २५ प्रतिशत सहायता के रूप में दिया जाता है। इस दिशा में और अधिक प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से मालिकों को लागत का ३७ १।२ प्रतिशत और श्रमिकों की सहकारी समितियों को ५० प्रतिशत ऋण के रूप में दिया जाता है। सन् १९५९ के अंत तक इनको १८ ७९ करोड़ रु० ऋण और १७.५५ करोड़ रु० सहायता के रूप में दिए गए तथा १,४६,१०१ मकान बनाने की स्वीकृति दी गई। दिसम्बर १९५९ के अन्त तक लगभग ८५,९८८ मकान बन चुके थे।

रोजगार और प्रशिक्षण

राष्ट्रीय रोजगार-सेवा की स्थापना सन् १९४५ में की गई और इसने भूतपूर्व सैनिक कर्मचारियों के पुनर्वास के लिए बड़ा उपयोगी कार्य किया। सन् १९४७ में इस सेवा के अन्तर्गत विस्थापितों को भी लाभ पहुंचाने की व्यवस्था की गई। इसके बाद इसकी सेवाएं हरेक

को—मालिक या रोज़गार की तलाश करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को—दी जाने लगीं। राष्ट्रीय रोज़गार-सेवा के अन्तर्गत रोज़गार-केन्द्रों (एम्प्लायमेंट एक्सचेंजों) का जाल-सा बिछा दिया गया है। रोज़गार ढूंढ़नेवालों को ये केन्द्र हर प्रकार की सहायता प्रदान करते हैं। सन् १९५६ के अन्त में देश में २४४ रोज़गार-केन्द्र तथा ४ विश्वविद्यालयीय रोज़गार-कार्यालय थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान रोज़गार-केन्द्रों की संख्या दुगुनी कर देने का विचार है। इसके अतिरिक्त, बड़े-बड़े नगरों में युवकों के लिए एक विशेष रोज़गार-सेवा भी चालू की जाएगी।

प्रशिक्षण

जब से राष्ट्रीय रोज़गार-सेवा चालू की गई है, तब से प्रशिक्षण को भी पर्याप्त महत्त्व दिया जा रहा है। शुरू-शुरू की योजनाओं में भूतपूर्व सैनिक कर्मचारियों को ही तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था थी। बाद में ये योजनाएं विस्थापितों के लिए और सन् १९५० में प्रौढ़ नागरिकों के लिए भी चालू कर दी गईं। अन्त में, इन योजनाओं को कारीगरों को प्रशिक्षण देने की योजनाओं में बदल दिया गया।

कारीगर-प्रशिक्षण-योजना का उद्देश्य उद्योगों के लिए दक्ष कारीगरों की व्यवस्था करना तथा शिक्षित युवकों में बेरोज़गारी को कम करना है। अब तक ऐसे १५१ केन्द्र खुल चुके हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में ३०,००० व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाएगी। मज़दूरों के लिए सायंकालीन कक्षाएं भी चलाई जा रही हैं। इसके अलावा, जिन युवकों का झुकाव तकनीकी कामों की ओर है, उनको बढ़ावा देने के लिए शौक़िया प्रशिक्षण-केन्द्र भी संगठित किए जा रहे हैं।

समरूप मानदंड निश्चित करने के लिए एक राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण-परिषद् भी स्थापित कर दी गई है। यह परिषद् सरकार को प्रशिक्षण-नीति-सम्बन्धी समस्याओं पर परामर्श देने के अतिरिक्त, कारीगरों को 'योग्यता-प्रमाणपत्र' भी प्रदान करती है।

उत्पादकता

अनुमान है कि सन् १९५७ मे २०० रु० से कम आयवाले श्रमिको की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय असम मे १,८३३ ६ रु०, आध्र प्रदेश में १,०३० ८ रु०, उडीसा में ६५६.८ रु०, उत्तर प्रदेश में १,०७७ ५ रु०, केरल मे ८०५ रु०, पजाब में ९५५ ३ रु०, पश्चिम-बगाल में १,१७३ ६ रु०, बम्बई मे १,४५२ ६ रु०, बिहार में १,२९९ २ रु०, मद्रास में ९७८ ९ रु०, मध्य प्रदेश मे १,१३८ ७ रु०, राजस्थान मे ९०७ १ रु०, दिल्ली मे १,४९३ ४ रु०, त्रिपुरा मे ९३३ रु० तथा अदमान और निकोबार द्वीपसमूह मे ६५७ १ रु० थी।

कुछ चुने हुए उद्योगो म उत्पादन-सम्बन्धी अध्ययन का सगठन करवाने और परिणामो के अनुसार वेतन की नई प्रणाली लागू करवाने के लिए सन् १९५२ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सघटन के ५ विशेषज्ञो की सेवाए प्राप्त की गई थी। सूती वस्त्र तथा इजीनियरी उद्योगो मे प्रयोग करने के बाद छ महीनो मे ही इन विशेषज्ञो ने प्रकट किया कि स्थानीय कर्मचारियो को प्रशिक्षण देकर उत्पादकता की तकनीको मे आश्चर्यजनक परिणाम निकाले जा सकते हैं। सन् १९५५ में जो अध्ययन किया गया, उससे यह पता चला कि सन् १९४८ तथा सन् १९५३ की अवधि में सूती वस्त्र-श्रमिको की आमदनी मे वृद्धि के विपरीत, उत्पादकता-सूचनाक में २.२८ की वृद्धि हुई, यद्यपि कोयला-खानो और पटसन वस्त्र-उद्योगो में उत्पादकता-वृद्धि उतनी नही हुई, जितनी कि आय मे वृद्धि हुई।

अब बम्बई में एक राष्ट्रीय उत्पादकता-केन्द्र स्थापित कर दिया गया है, जो केन्द्रीय श्रम-सस्थान का एक हिस्सा होगा। इन केन्द्रो मे अधिकारियो तथा मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो को प्रशिक्षण दिया जाया करेगा, जो आगे चलकर विभिन्न उद्योगो मे लोगो को प्रशिक्षण देगे। इस तरीके से श्रम-उत्पादकता मे निश्चय ही सुधार होगा।

अध्याय १५

सहायता और पुनर्वास

भारत का बटवारा होने और पाकिस्तान बनने के परिणाम-स्वरूप, देश को विस्थापित लोगो को फिर से बसाने की भीषण समस्या का सामना करना पडा। सन् १९५९ के अन्त तक पाकिस्तान से लगभग ८८.५७ लाख विस्थापित व्यक्ति भारत आ चुके थे। इनमें से लगभग ४७.४ लाख व्यक्ति पश्चिम-पाकिस्तान से तथा बाकी पूर्व-पाकिस्तान से आए थे। मार्च १९६० के अन्त तक सरकार ने विस्थापितो पर सहायता तथा पुनर्वास के रूप मे लगभग ३५२.५२ करोड रु० खर्च किए।

इन विस्थापित व्यक्तियो को अपने पावो पर खडा होने में सहायता देने के लिए केन्द्र में एक विशेष पुनर्वास-मन्त्रालय बनाया गया, जिसने विस्थापित व्यक्तियो को आवास, शिक्षा, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण तथा व्यापार और उद्योग, आदि जमाने के लिए ऋण, आदि के रूप मे सहायता प्रदान की। किसानो को भी भूमि, आदि देकर फिर से खेती-बारी शुरू करने के लिए ऋण दिए गए। पश्चिम-पाकिस्तान के नगरो मे जो लोग अचल सम्पत्ति छोड आए थे, उन्हे मुआवजा भी दिया गया। विस्थापितो को रोजगार दिलवाने के प्रयोजन से उपनगरों और बस्तियो में कल-कारखाने भी लगाए गए।

पश्चिम-पाकिस्तान के विस्थापित

इन विस्थापितो के लिए शुरू-शुरू में अनेक राज्यो में बडे-बड़े सहायता-शिविर (कैम्प) लगाए गए। ज्यो-ज्यो ये लोग अपने पैरों पर खड़ा होने-लायक होते गए, त्यो-त्यों शिविर बन्द कर दिए गए; पर कुछ निराश्रित स्त्रियों, बच्चो तथा बूढ़े और बीमार लोगो की देखभाल अभी तक सरकार कर रही है।

अब तक पश्चिम-पाकिस्तान के लगभग ५० प्रतिशत विस्थापित व्यक्तियों को भूमि दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त, १५५ नागरिक बस्तियां और उपनगर बसाए जा चुके हैं। जो लोग उद्योग, व्यापार या कोई धंधा आरम्भ करना चाहते थे, उन्हें राज्य-सरकारों ने प्रति परिवार के हिसाब से ऋण भी दिया। अनुमान है कि अब तक इन कार्यों के लिए लगभग २२ १७ करोड रु० दिए जा चुके हैं। पुनर्वास-वित्त प्रशासन ने भी बडे परिमाण मे ऋण दिए। कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण-केन्द्र भी स्थापित किए गए, जिनमें लगभग २ ०३ लाख विस्थापितों को (सन् १९५९ के अन्त तक) नौकरियों तथा व्यापार में लगाया जा चुका है। इसके अलावा, विस्थापित व्यक्तियों को छात्रवृत्तियां और अन्य शिक्षा-सम्बन्धी रियायतें तथा रोजगार की विशेष सुविधा, आदि भी दी गई।

चूंकि विस्थापितों-द्वारा पीछे छोडी गई अचल सम्पत्ति पर पाकिस्तान से कोई समझौता न हो सका, इसलिए भारत-सरकार ने मई १९५४ में भारत में निष्क्रान्त सम्पत्ति को हस्तगत करके मुआवजा देने के लिए उसका उपयोग किया। यह योजना इस तरीके से बनाई गई है कि छोटे-छोटे दावेदारों को मुआवजे का अधिक प्रतिशत मिले। ३१ जनवरी, १९६० तक ४ ४९ लाख दावेदारों को मुआवजे के रूप में १२८ ३ करोड रु० दिए जा चुके हैं।

हर्ष का विषय है कि सरकार पश्चिम-पाकिस्तान से आनेवाले विस्थापितों को बसाने का कार्य पूरा कर चुकी है। इसलिए पुनर्वास-मन्त्रालय की पश्चिमी शाखा को धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है।

कश्मीर के विस्थापित

सन् १९५९ में भारत-सरकार ने कश्मीरी विस्थापितों को सहायता देने का निश्चय किया। इसके अनुसार, कृषि-भूमि पर बसे प्रत्येक परिवार को एक हजार रुपये तथा अन्य परिवारों को ३,५०० रुपयें दिए जाएंगे। इससे पूर्व, पाकिस्तानी कब्जेवाले कश्मीर-प्रदेश से आनेवाले विस्थापितों के दावे स्वीकार नहीं किए जाते थे।

पूर्व-पाकिस्तान के विस्थापित

दुर्भाग्यवश, पूर्व-पाकिस्तान के विस्थापितों की समस्या का अभी तक पूर्ण समाधान नहीं हो सका है। ३१ मार्च, १९५९ तक लगभग ४१ १७ लाख व्यक्ति भारत आ चुके थे, जिनमें से ९७ प्रतिशत पश्चिम-बंगाल, असम और त्रिपुरा में हैं। इन विस्थापितों को अन्य राज्यों में जाकर बसने के लिए राजी करने की कोशिशें जारी हैं। दण्डकारण्य-योजना मुख्य रूप से इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर बनाई गई है। अन्य राज्यों में जाकर बसनेवाले विस्थापितों को आवश्यक सहायता तथा सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं।

अब तक लगभग ४१,००० व्यक्ति विभिन्न कलाओं और दस्तकारियों, आदि का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं तथा लगभग ३,५०० व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। सन् १९५९ में लगभग २७ लाख रु० लागत की ४४ प्रशिक्षण-योजनाएं स्वीकृत की गई। दिसम्बर १९५९ तक लगभग ६३,००० व्यक्तियों को रोज़गार दिलवाया जा चुका था। मझोले उद्योगों के विस्तार-विकास के लिए २० योजनाएं स्वीकृत की गई जिससे लगभग ७,९०० व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा। इसी तरह, लघु उद्योगों-सम्बन्धी १४१ योजनाएं स्वीकृत हो चुकी हैं। इनसे १८,००० व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा।

विस्थापित विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए भी सन् १९५९ में ५८३ प्राथमिक विद्यालयों के भवन बनाने के लिए ४० ५९ लाख रु० तथा १,७०० प्राथमिक विद्यालय खोलने के लिए, २ करोड़ रु० से अधिक के अनुदानों को स्वीकृति दी गई। इसके अतिरिक्त, १० डिग्री कालेज भी खोले गए।

दूसरी पंचवर्षीय योजना

पहली पंचवर्षीय योजना में पुनर्वास के लिए १३६ करोड़ रु० की व्यवस्था थी, पर दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस कार्य के लिए केवल ८५ ५ करोड़ रु० रखे गए हैं, क्योंकि पश्चिम-पाकिस्तान के विस्थापित

व्यक्तियो को बसाने का काम प्रायः पूरा हो चुका है। परन्तु आवास-योजनाओ और नई बस्तियो तथा नए उपनगरो मे बेरोजगारी कम करने की ओर ध्यान देने की अभी और जरूरत है। इसके अलावा, प्रशिक्षण और शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओ को जारी रखना भी बहुत जरूरी है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे जो रकम रखी गई है, उसका एक बड़ा हिस्सा पूर्व-पाकिस्तान के विस्थापितो पर खर्च किया जाएगा।

अन्य सहायता-कार्य

बाढ, अकाल तथा भूकम्प-जैसी परिस्थितियो मे सहायता पहुचाने के लिए लगभग सभी राज्यो और सघीय क्षेत्रो में सकटकालीन सहायता-सघटन स्थापित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, कानपुर मे संकटकालीन सहायता-सम्बन्धी प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्रीय सस्थान भी स्थापित कर दिया गया है।

नवम्बर १९५७ मे प्रधान मन्त्री का राष्ट्रीय सहायता-कोष स्थापित किया गया था। इस कोष से भूकम्प, बाढ, सूखा, अकाल, आग, आदि से पीडित जनता को सहायता पहुचाई जाती है। अब तक इस कोष में से लगभग २ करोड रु० खर्च किए जा चुके हैं।

अध्याय १६

समाज-कल्याण

शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, श्रम-कल्याण, आदि-जैसे क्षेत्रो मे सामान्य रूप से संगठित समाज-सेवाओ के अतिरिक्त, समाज के कमजोर, उपेक्षित और विकलांग-वर्गों के उत्थान के लिए अनेक प्रकार के काम किए जा रहे हैं। भूतकाल मे समाज-सेवा का काम मुख्य रूप से स्वयंसेवी संस्थाएं या परोपकारी लोग ही करते थे। परन्तु भारत एक कल्याण-कारी राज्य , इसलिए उसमे समाज-सेवा का भार मुख्य रूप से स्थानीय निकायो को सम्भालना होगा। इस बीच, सरकार गैर-सरकारी संस्थाओं को भी सहायता देना जारी रखेगी, ताकि वे इस शुभ कार्य को पूर्ववत् करती रहें।

केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड

गैर-सरकारी संस्थाओ को सहायता अधिकतर केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड और राज्यो मे उसकी शाखाओं के माध्यम से दी जाती है। केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड की स्थापना अगस्त १९५३ मे पहली पंचवर्षीय योजना के एक अंग के रूप में की गई थी और इसके लिए ४ करोड़ रु० की रकम रखी गई थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बोर्ड के लिए ६.२ करोड रु० की रकम रखी गई है। कल्याण-कार्यों में लगी संस्थाओं को अनुदान देने के अलावा, यह बोर्ड कल्याण-कार्य के लिए एक बड़े उप-योगी समन्वयकारी संघटन के रूप में भी कार्य करता है। प्राथमिकताएं निर्धारित करने के अतिरिक्त, बोर्ड उन सुपात्र संस्थाओं को अनुदान भी देता है, जो स्त्रियों, बच्चों और विकलांगो के कल्याण और पुनर्वास-कार्यों में सक्रिय योग देती हैं। कल्याणकारी संस्थाओं को अनुदान इस आधार पर दिया जाता है कि बोर्ड-द्वारा उन्हें जितना अनुदान मिले, उतनी ही रकम वे नक़द, सेवाओ या सामान के रूप में स्वयं जुटाएं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याण-विस्तार-परियोजनाओ का सगठन करना बोर्ड की एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। प्रत्येक परियोजना के अन्तर्गत लगभग २० हजार से २५ हजार की आबादी के लगभग २५ गाव होते है। आम तौर पर, केन्द्रीय बोर्ड कल्याण-परियोजना चलाने का आधा खर्च देता है और बाकी खर्च राज्य-सरकारो, स्थानीय निकायो और गैर-सरकारी सस्थाओ-द्वारा दिए गए अनुदान मे से पूरा किया जाता है। इन परियोजनाओ के अन्तर्गत बालवाडिया, प्रसूतिका और शिशु-स्वास्थ्य-गृह, महिलाओ के लिए साक्षरता और समाज-शिक्षा-केन्द्र, कला-कौशल-केन्द्र तथा मनोरजन-केन्द्र आदि खोलने की व्यवस्था की जाती है। चिकित्सा-सेवाए प्रदान करने के अलावा, मातृत्व-सहायता, लोक-स्वास्थ्य, साक्षरता और स्त्रियो को काम सिखाने और बच्चो को बुनियादी शिक्षा देने की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है।

आशा है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक इन परियोजनाओ की सख्या ६६० हो जाएगी और इनके अन्तर्गत ६,६०० केन्द्र, ६६,००० ग्राम तथा ५,७६,००० की जनसख्या आ जाएगी। लक्ष्य यह है कि प्रत्येक जिले मे चार-चार परियोजनाए आरम्भ की जाए। इन सेवाओ के विस्तार मे एक सबसे बडी बाधा यह है कि अच्छे प्रशिक्षित कर्मचारी नही मिलते। इसके लिए बोर्ड ने स्त्रियो को ग्राम-सेविकाओ, कला-सहायको तथा दाइयो, आदि का प्रशिक्षण देने की योजना बनाई है।

नारी-कल्याण-कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए एक नागरिक परिवार-कल्याण-योजना आरम्भ की गई है, जिसके अन्तर्गत चुने हुए नागरिक क्षेत्रो में छोटे पैमाने के उद्योग आरम्भ करने के लिए औद्योगिक सहकारी सस्थाए स्थापित की जाती है। प्रत्येक उद्योग में निम्न मध्यम-वर्ग के परिवारों की लगभग ५०० स्त्रियों को (मुख्यतया उनके घरों पर) काम दिलवाया जाता है। ऐसी पाच इकाइयां स्थापित की जा चुकी हैं। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक २० इकाइयां स्थापित करने का लक्ष्य है।

इसके अतिरिक्त, मध्यम-वर्ग की तथा थोड़ी आयवाली नौकरीपेशा स्त्रियो के लिए नगरो में होस्टल खोलने की योजना में भी बोर्ड सहायता

प्रदान कर रहा है। अब तक ऐसे २५ संस्थानो को अनुदान दिए जा चुके हैं।

स्त्रियो और बच्चो के अनैतिक व्यापार का दमन करने और इस बुराई के शिकार बच्चों का उद्धार करके उनकी देखभाल करने की ओर समाज-कल्याण बोर्ड विशेष ध्यान दे रहा है। इस योजना के अन्तर्गत ८० देखभाल-केन्द्र, ३३० जिला-आश्रयगृह तथा ८० उत्पादन-इकाइयां स्थापित करने की योजना है। दिसम्बर १९५९ तक ४८ राज्यीय केन्द्र, १३३ जिला-आश्रयगृह तथा २० उत्पादन-इकाइयां स्थापित की जा चुकी थी। इन स्थानो पर वेश्यावृत्ति से उबारी गई स्त्रियों तथा जेलो और सुधार-संस्थाओ से निकले बच्चो को काम सिखाने और उनके पुनर्वास की व्यवस्था है।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड के लिए जो धनराशि निर्धारित की गई है, उसके अतिरिक्त, राज्यों-द्वारा पुनर्वास और देखभाल, आदि-जैसे कार्यों पर तथा सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य-कार्यक्रमो पर ३ करोड रु० खर्च किए जाएंगे। गृह-मन्त्रालय भी ऐसी योजनाओ पर लगभग इतनी ही रकम खर्च करेगा।

समाज-कल्याण-कार्यक्रमो के अन्तर्गत दूसरी पंचवर्षीय योजना की शेष अवधि मे नागरिक क्षेत्रो मे नमूने की १०० कल्याण-विस्तार-परियोजनाए चलाने, २५-३० वय-वर्ग की महिलाओ को उपयुक्त शिक्षा देने, महत्वपूर्ण औद्योगिक नगरो में रैन-बसेरे बनाने, छोटी-छोटी उत्पादन-इकाइयो को आर्थिक सहायता देने तथा ग्रामदान के गावों में बुनियादी कल्याण-सेवाए, आदि आरम्भ करने-जैसे कार्य किए जाएगे। इसके अतिरिक्त, हाली डे होम (अवकाश-गृह) भी चलाए जाते है।

अन्य कार्यक्रम

बाल-अपराधियो तथा भिखारियों के कल्याण के लिए भी कुछ कार्यक्रम है। अधिकांश राज्यों में बाल-अपराधियों के लिए कानून बना दिए गए हैं। बाल-अपराधियो के लिए तीन प्रकार के सुधार-संस्थान हैं— सुधार स्कूल, बोर्स्टल स्कूल और सर्टिफाइड स्कूल। मोटे तौर पर,

पहली और तीसरी किस्म के स्कूल १६ साल से कम वयवाले बच्चों के लिए और बोर्स्टल स्कूल उनसे बड़े बच्चो के लिए है। इन सस्थानो में शिक्षा के अतिरिक्त, व्यावसायिक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

यो तो, अनेक राज्यो मे सार्वजनिक स्थानो पर भीख मागने पर कानूनी रोक लगा दी गई है, पर यह समस्या ऐसी है कि इसे हल करने में अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि में कल्याण-योजनाओ के अन्तर्गत भिक्षावृत्ति बन्द करने और भिखारियो को समाज के उपयोगी और उत्पादक सदस्य बनाने की समस्याओ की ओर भी ध्यान दिया जाएगा। समाज के इस वर्ग के लिए केन्द्र और राज्य-सरकारे लगभग ५ करोड़ रु० खर्च करेंगी।

मद्यनिषेध

भारत के सविधान में राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तो के अन्तर्गत मादक पेयो और औषधियो पर रोक लगाने के लिए भी कहा गया है। योजना-आयोग-द्वारा नियुक्त एक मद्यनिषेध-जाच-समिति ने सितम्बर १९५५ में सिफारिश की थी कि मद्यनिषेध के कार्यक्रम को भी राष्ट्रीय विकास-योजनाओ का एक अभिन्न अग बना दिया जाए। ससद् ने भी सिफारिश की है कि देश-भर में तेजी से मद्यनिषेध के लिए एक कार्यक्रम बनाया जाए।

इस समय जम्मू-कश्मीर, पश्चिम-बगाल तथा बिहार को छोड़ कर भारत के शेष सभी राज्यो मे मद्यनिषेध-सम्बन्धी कार्य आरम्भ हो चुका है। अधिकाश राज्यो मे मद्यनिषेध-बोर्ड भी स्थापित कर दिए गए है। कुछ इलाको में—जैसे, दिल्ली में—सार्वजनिक स्थानो पर शराब पीने पर कुछ बदिशें हैं।

इसी तरह, अफीम और दूसरी नशीली चीजो के सेवन पर रोक लगाने के लिए सक्रिय कदम उठाए गए हैं। विचार है कि धीरे-धीरे इन चीजो पर भी पूरी रोक लगा दी जाए।

पिछड़े वर्ग

गाधीजी ने स्वाधीन लोगों के एक ऐसे समाज की कल्पना की थी, जिसका प्रशासन सहकारिता पर आधारित हो। इस आदर्श को उन्होंने 'सर्वोदय' नाम दिया। सविधान की दृष्टि से, प्रत्येक व्यक्ति समान है तथा अस्पृश्यता-उन्मूलन को मूल अधिकारों में शामिल किया गया है।

पिछड़े वर्गों में सबसे प्रमुख हैं अनुसूचित जातियां और अनुसूचित आदिम जातिया, जिनकी जनसख्या क्रमश लगभग ५.५३ करोड तथा २.२५ करोड है। प्राचीन हिन्दू-समाज मे अनुसूचित जातियो को पीढी-दर-पीढी घटिया-से-घटिया काम दिए जाते रहे हैं, यहा तक कि उच्च वर्ग उनका स्पर्श तक नही करते और उन्हे अछूत कहा जाता है। परन्तु अब अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, १९५५ के अन्तर्गत छुआछूत पर आचरण करनेवाले व्यक्ति को कानूनी रूप से दडित किया जा सकता है।

परन्तु केवल कानून बना देने से ही सदियो पुरानी प्रथा का अन्त नहीं हो सकता। इसलिए कानूनी कार्रवाई के अलावा, इन जातियो को आत्म-विकास, अभिव्यक्ति और उन्नति के अवसर प्रदान किए जा रहे है, ताकि इन लोगो को भी शेष समाज मे न्यायोचित स्थान मिल सके।

अनुसूचित जातिया और अनुसूचित आदिम जातिया जब तक शिक्षा और अर्थ की दृष्टि से शेष समाज के समान सम्पन्न नही हो जाती, तब तक विधानमडलो मे उनके लिए स्थान सुरक्षित रखने की सावैधानिक व्यवस्था है। लोकसभा मे अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित आदिम जातियो के लिए क्रमश ७६ और ३१ स्थान सुरक्षित हैं। इसी प्रकार, राज्यो के विधानमडलो में इनके लिए क्रमश ४७० तथा २२१ स्थान सुरक्षित है।

सरकारी नौकरियों का भी एक उचित भाग इन जातियों के लिए सुरक्षित रखा जाता है। सरकारी नौकरियो में इन जातियो को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने को दृष्टि से वय-सीमा मे छूट, योग्यता के मानदंडों में रिआयत, आदि-जैसी सुविधाएं दी जा रही हैं। अनुमान है कि इस समय अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित आदिम जातियों के २,८२,६२० सदस्य भारत-सरकार की नौकरी में हैं।

अनुसूचित तथा आदिम जातीय क्षेत्रों का प्रशासन

संयुक्त खासी-जैन्तिया पहाडियो, गारो पहाड़ियो, मिज़ो पहाडियो, उत्तर-कछार की पहाडियो तथा मिकिर पहाडियो के ज़िलो मे एक प्रादेशिक परिषद् तथा ५ जिला-परिषदे स्थापित कर दी गई है। प्रत्येक जिला-परिषद् मे अधिक-से-अधिक २४ सदस्य होते है और इनमे से तीन-चौथाई वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं।

संविधान की पाचवी अनुसूची मे अनुसूचित क्षेत्रवाले राज्यो मे आदिम जातीय सलाहकार परिषदो की स्थापना की व्यवस्था है। अब तक असम, आंध्रप्रदेश, उडीसा, पजाब, पश्चिम-बगाल, बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश, मद्रास तथा राजस्थान मे ऐसी परिषदे स्थापित की जा चुकी हैं। ये परिषदे अनुसूचित आदिम जातियो की कल्याण-विषयक बातो पर राज्यपालो को सलाह देती है।

कल्याणकारी तथा सलाहकार संस्थाएं

केन्द्र मे अनुसूचित जाति और अनुसूचित आदिम जाति-आयुक्त की व्यवस्था की गई है। इस विशेष अधिकारी की सहायता के लिए १० सहायक आयुक्त भी है। असम में आदिम जातीय लोगों के लिए हुए कार्य को समीक्षा करने के उद्देश्य से एक आदिम जाति-कल्याण-अधिकारी भी है। इसके अतिरिक्त, भारत-सरकार ने आदिम जातियो तथा हरिजनो के कल्याण के लिए २ केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड भी बनाए है।

राज्यो मे भी कल्याण-विभाग विद्यमान है। असम, आंध्रप्रदेश, उडीसा, उत्तरप्रदेश, केरल, पजाब, पश्चिम-बगाल, बम्बई, बिहार, मणिपुर, मद्रास, मैसूर, राजस्थान, हिमाचलप्रदेश तथा त्रिपुरा मे ऐसे विभाग स्थापित किए जा चुके है।

कल्याणकारी योजनाएं

इन जातियो को अधिक-से-अधिक शिक्षा-सुविधाए देने के लिए प्रयत्न किए जा रहे है। अधिक बल व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण पर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियो को नि शुल्क पढ़ाई, पुस्तको, लेखन-सामग्री, आदि की भी सुविधाए दी जा रही है। कुछ स्थानो पर

दोपहर का भोजन देने की भी व्यवस्था है। इन जातियों को छात्रवृत्तिया, आदि सन् १९४४-४५ से दी जा रही है। सन् १९५८-५९ में सरकार ने अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो तथा अन्य पिछड़े वर्गों को क्रमश १२५ ८६ लाख रु०, २० ७६ लाख रु० तथा ७९ ४९ लाख रु० की छात्रवृत्तिया दी। इन जातियों के सुपात्र विद्यार्थियो को विदेशो मे भी अध्ययन के लिए भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने तकनीकी सस्थाओ तथा शिक्षालयो से प्रार्थना की है कि वे भी इन वर्गों को समुचित सुविधाए दे।

आर्थिक उन्नति के अवसर

२ २५ करोड आदिम जातीय लोगो मे से लगभग २६ लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष २२,५५,८१६ एकड भूमि मे बदल-बदल कर खेती करते है। इस किस्म की खेती पर नियत्रण रखने के निमित्त असम मे १६ मार्गदर्शक परियोजना-केन्द्र तथा आध्रप्रदेश मे ४ बस्ती-योजनाए आरम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत, उडीसा मे २,४९६, बिहार मे ४६०, मध्यप्रदेश मे ३६६ तथा त्रिपुरा मे ५,३३९ परिवार बसाए गए है।

अधिकाश राज्यो मे सिचाई की सुविधाओ मे सुधार करने, बेकार भूमि का पुनरुद्धार करने तथा इन जातियो मे इस भूमि को बाट देने की कई योजनाए चालू है। इसके अतिरिक्त, पशु, उर्वरक, कृषि-औजार, उन्नत बीज, आदि खरीदने के लिए भी उन्हे सुविधाए दी जा रही है। कुटीर-उद्योगो, पशुपालन और मछलीपालन तथा बहूद्देश्यीय सहकारी समितियो का भी विकास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, इन वर्गों को आर्थिक सहायता, मकान बनाने के लिए मुफ्त या मामूली कीमत पर भूमि तथा कानूनी सहायता देने की भी व्यवस्था है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

इस योजना में आदिम जातीय क्षेत्रो मे ३,१८७ विद्यालय और छात्रावास तथा २०० सामुदायिक और सामूहिक केन्द्र खोलने और ३ लाख आदिम जातीय विद्यार्थियो को छात्रवृत्तिया, आदि देने का लक्ष्य है। इसी प्रकार, अनुसूचित जातियो के लिए भी ६,००० विद्यालय और

छात्रावास खोलने तथा ३० लाख विद्यार्थियो को छात्रवृत्तिया, आदि देने का विचार है। निरधिसूचित जातियो के लिए भी १ १६ लाख छात्र-वृत्तिया, आदि देने की व्यवस्था है।

आदिम जातीय क्षेत्रो मे १० २०० मील लम्बे पहाडी रास्ते तथा ४५० पुल-पुलिया बनाने की राज्यीय याजनाओ के अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार ने भी ४५० मील लम्बी मोटर चलने-योग्य सडके तथा ७२० मील लम्बे पहाडी रास्ते बनाने की याजना बनाई है जिस पर करीब ४ करोड रु० खर्च होगे। इसके अलावा दवाखाने खोलने स्वास्थ्य-कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने, आदिम जातीय क्षेत्रा मे ४१,००० कुए और २ जलाशय बनाने तथा अनुसूचित जातियो के लिए २,३४,००० कुए और निरधिसूचित जातियो के लिए १,२६,३०० मकान (व्यय ५ २५ करोड रु०) तथा आदिम जातिया के लिए ४५ ८०० मकान बनवाने की व्यवस्था है। योजना मे १२,००० आदिम जातीय परिवारो को १८६ बस्तियो मे बसाने तथा निरधिसूचित जातियो के १५ २४६ परिवारो के पुनर्वास के कार्यक्रम भी शामिल है। इसके अतिरिक्त, ३५० अनाज के गोलो का पूर्ण सहकारी सस्थाओ मे परिवर्तित करने तथा अन्य ८०० वन-विषयक बहूद्देश्यीय सहकारी सस्थाए आरम्भ करने की भी व्यवस्था है।

पहली पचवर्षीय योजना मे इन वर्गो के कल्याण के लिए २,५६७ ७८ लाख रु० खर्च हुए। दूसरी पचवर्षीय याजना मे ६ १२६ ३५ लाख रु० व्यय करने का लक्ष्य है। अनुमान है कि सन् १९५६-५७ से १९५८-५९ की अवधि मे इन जातियो पर राज्यीय योजनाओ के अन्तर्गत २ ४२८ २०७ लाख रु० तथा केन्द्रीय कार्यक्रमो के अन्तर्गत ८६६ २७३ लाख रु० खच हो चुके है।

अपराधजीवी जातिया

ब्रिटिश शासन-काल मे कुछ पहाडी जातियो को 'अपराधजीवी जातिया' नाम देकर सामान्यत उनका बहिष्कार किया जाता था। अगस्त १९५२ मे अपराधजीवी जातिया-अधिनियम मे सशोधन किया गया। अब इनके पुनर्वास और शिक्षा के लिए विशेष प्रयत्न किए जा रहे है।

अध्याय १७

परिवहन

ब्रिटिश शासन-काल मे परिवहन का विकास करने की किसी भी योजना में सबसे अधिक महत्व प्रशासन और फिर व्यापार को दिया जाता था। सडके तथा रेले सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इलाको मे ही बनाई जाती थी। परन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से परिवहन के विकास मे आर्थिक विकास की आवश्यकताओ की ओर अधिक-से-अधिक ध्यान दिया जाता है। दूसरी पचवर्षीय योजना इसका प्रमाण है। उसमें परिवहन और सचार के लिए १,३८५ करोड रु० की व्यवस्था है।

रेलें

यो तो, भारत मे अब भी पैदावार का अधिकाश बैलगाड़ियो-द्वारा ही ढोया जाता है, फिर भी भारत मे स्थल पर रेल ही यातायात का मुख्य साधन है। भारत मे सर्वप्रथम रेलवे-लाइन १६ अप्रैल १८५३ को चालू हुई। आज भारत की रेल-प्रणाली विस्तार की दृष्टि से एशिया मे सबसे बड़ी और दुनिया मे चौथे नम्बर पर है। इस समय भारतीय रेल-पटरियो की लम्बाई लगभग ३५,०८१ मील है। अनुमान है कि देश मे रेलो से ८० प्रतिशत माल ढोया जाता है और ७० प्रतिशत मुसाफिर भी इन्ही से यात्रा करते हैं। सन् १९५९ मे रेल से प्रतिदिन औसतन ४० लाख व्यक्तियो ने यात्रा की और लगभग ३.७ लाख टन सामान ढोया गया। सन् १९५८-५९ के अन्त मे रेलों पर लगभग १,३६३ करोड रु० की पूजी लगी हुई थी तथा ३९२ करोड रु० की सकल आय प्राप्त हुई थी। इस वर्ष रेलो मे ११,४३,९१८ व्यक्ति काम करते थे, जिन्हें मजदूरी और वेतन के रूप में लगभग १८३ करोड रु० दिए गए।

दुर्भाग्य से, रेलो के विकास मे अनेक बाधाएं खड़ी होती रही है। पहली पंचवर्षीय योजना के चालू होने से लगभग दस वर्ष पूर्व विश्व-

युद्ध और देश के बटवारे के कारण उन पर बडा भारी दबाव पडा। साधनो में निरन्तर ह्रास हुआ और सवारी डिब्बे, माल-डिब्बे, रेल-इजिन, आदि की अदला-बदली समय पर नही की जा सकी। यही कारण है कि पहली पचवर्षीय योजना मे रेल-कार्यक्रम मे रेलो के पुनस्सस्थापन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। अब कही जाकर यथार्थ मे विस्तार-कार्य आरम्भ करना सम्भव हुआ है, हालाकि पुनस्सस्थापन का कार्य पूरा होने मे अभी काफी समय लगेगा।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद रेलो के विकास-कार्य मे पहला महत्वपूर्ण कदम यह उठाया गया कि जहा पहले ३७ रेल-क्षेत्र थे, वहा उनका उपयुक्त वर्गीकरण करके उन्हे ८ मुख्य रेल-क्षेत्रो मे बाट दिया गया। इससे रेलो मे समन्वय और एकरूपता की वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, रेलो को यथासम्भव स्वावलम्बी बनाने के लिए भी कुछ कदम उठाए गए है। चित्तरजन (पश्चिम-बगाल) मे रेल-इजिन बनाने का कारखाना बनाया गया है। टाटा इजीनियरिंग ऐंड लोकोमोटिव कम्पनी के साथ छोटी लाइनो के लिए इजिन बनाने की भी व्यवस्था कर ली गई है। पेराम्बूर (मद्रास) के कारखाने मे हल्के वजन क इस्पात के जोडहीन सवारी डिब्बे बनते है। इसके अलावा, हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी मे भी सवारी डिब्बे बनने लगे है। पिछले कुछ वर्षो मे माल-डिब्बे बनाने के काम मे भी तिगुनी वृद्धि हुई है।

चित्तरजन के कारखाने मे पहला रेल-इजिन सन् १९५० मे बनाया गया। जनवरी १९५४ मे इस कारखाने ने १०० इजिन बनाए। अन्तत, इस कारखाने मे प्रतिवर्ष ३०० रेल-इजिन (स्टैंडर्ड) बनाने का लक्ष्य है। पेराम्बूर का कारखाना अक्तूबर १९५५ मे चालू हुआ। सन् १९५८-५९ मे इस कारखाने ने ३८० सवारी डिब्बे (बिना फर्नीचर के) बनाए। टाटा इजीनियरिंग ऐंड लोकोमोटिव वर्क्स ने सन् १९५८-५९ मे १०३ रेल-इजिन बना कर दिए। आशा है कि सन् १९५९-६० मे यह कारखाना १०० इजिन बना कर देगा।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे देश मे ४९६ रेल-इजिन, ४,३५१ सवारी डिब्बे तथा ४१,१९२ माल-डिब्बे बने।

दूसरी पचवर्षीय योजना में रेलो के विस्तार पर विशेष बल दिया जा रहा है, क्योकि देश में विकास के बडे-बड़े कार्यक्रम चालू होने से कृषि और उद्योग की आवश्यकताएं बढ़ रही हैं। अनुमान है कि सन् १९६०-६१ में रेलों को लगभग १६ करोड टन माल ढोना पडेगा। सन् १९५८-५९ में रेलो ने कुल १३.६१ करोड टन ही माल ढोया। इसका मतलब यह है कि रेल-इजिन, डिब्बे, आदि भारी परिमाण में बनाने और मंगवाने पडेगे तथा रेलों की क्षमता में वृद्धि करने के अलावा, रेलो के मरम्मत-कारखानो और निर्माणकारी कारखानों मे भी विस्तार करना पड़ेगा। योजना मे रेलो के लिए कुल मिला कर १,१२५ करोड रु० की व्यवस्था है, जिसमे रेलवे-मूल्यह्रास-निधि की २२५ करोड रु० की रकम भी शामिल है।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे रेल-इजिनो, सवारी डिब्बो, माल-डिब्बो, आदि के लिए रखी गई ३८० करोड रु० की रकम मे से १८३ करोड रु० विकास-कार्यों के लिए और १९७ करोड रु० पुनस्सस्थापन के लिए है। इस अवधि में बडी लाइन के ४६८ रेल-इजिन, १,७६४ सवारी डिब्बे और ६६,५७५ माल-डिब्बे तथा मध्यम लाइन के ४५१ इजिन, १६,८२० माल-डिब्बे और ३,३६४ सवारी-डिब्बे बनाने का लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त, बडी लाइन के ६६२ इजिनो, १४,८७९ माल-डिब्बो और ४,३९२ सवारी डिब्बो, मध्यम लाइन के ४०२ इजिनो, ४,९५२ माल-डिब्बो और १,४२२ सवारी डिब्बो, तथा छोटी लाइन के ८१ इजिनो, ४,०२१ माल-डिब्बो और ६३३ सवारी डिब्बो का पुनस्सस्थापन किया जाएगा।

सन् १९५८-५९ मे बड़ी लाइन के २६९ इजिन, १,०३२ सवारी डिब्बे और १३,७९७ माल-डिब्बे, मध्यम लाइन के ९६ इजिन, ६८३ सवारी डिब्बे और २,९०४ माल-डिब्बे; तथा छोटी लाइन के ६ इजिन और २५ सवारी डिब्बे इस्तेमाल मे लाए जाने लगे थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि मे २,१६१ रेल-इजिन, ८,७०८ सवारी डिब्बे तथा १,११,७३९ माल-डिब्बे (४ पहियोवाले) जुटाने का जो लक्ष्य है, उसमें से ३१ मार्च, १९५९ तक १,४९३ इजिन, ४,३२२ सवारी डिब्बे तथा ७५,६१२ माल-डिब्बे प्राप्त हो गए थे।

भारत में सन् १९५८-५९ मे रेलो से लगभग १४४ ०९ करोड यात्रियो ने यात्रा की और उनसे ११७ ५७ करोड रु० की आय हुई। इसी अवधि मे रेलो ने १३ ६१ करोड टन माल ढोया और इससे २३७ ०४ करोड रु० की आय हुई।

रेलो का जिन ८ क्षेत्रो में वर्गीकरण कर दिया गया है, उनके नाम और मुख्यालय इस प्रकार है दक्षिण-रेलवे (मद्रास), मध्य-रेलवे (बम्बई), पश्चिम-रेलवे (बम्बई), उत्तर-रेलवे (दिल्ली), उत्तर-पूर्व-रेलवे (गोरखपुर), उत्तर-पूर्व सीमान्त-रेलवे (पाडु) पूर्वी रेलवे (कलकत्ता), तथा दक्षिण-पूर्वी रेलवे (कलकत्ता)।

रेल-कर्मचारियो के कल्याण के लिए बडे विस्तृत कार्यक्रम चलाए जा रहे है। इन कार्यों पर पहली पचवर्षीय योजना मे प्रतिवर्ष ४ करोड रु० खर्च किए गए। दूसरी पचवर्षीय योजना मे प्रतिवर्ष १० करोड रु० व्यय करने का विचार है। पहली पचवर्षीय योजना में कर्मचारियो के लिए ४०,००० क्वार्टर बनवाए गए। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ६५,४०० क्वार्टर बनवाने का लक्ष्य है।

रेल-कर्मचारियो के लिए ७० अस्पताल तथा ४४ दवाखाने (सन् १९५८-५९ के अन्त तक) है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे १३ अस्पताल और ७५ दवाखाने खोलने के अलावा, रेल-कर्मचारियो को और भी अनेक सुविधाए दी जाएगी।

भारतीय रेलो मे यात्रा के लिए चार दर्जे है ताप-अनुकूलित (एयर कडीशड), पहला दर्जा, दूसरा दर्जा तथा तीसरा दर्जा। भारत मे तीसरे दर्जे मे यात्रा करना सम्भवत दुनिया-भर मे सबसे सस्ता पडता है। अनुमान है कि डाकगाडी-द्वारा १००० मील सफर करने का किराया केवल २८ रु० है।

रेलो का समस्त नियत्रण रेलवे-बोर्ड के हाथ मे है।

सड़के

पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे भारत मे लगभग ९८,००० मील लम्बी पक्की सडके और लगभग १,५१,००० मील लम्बी कच्ची

सड़कें थी। योजना मे सडके बनाने के लिए १०० करोड़ रु० की व्यवस्था थी तथा लगभग २४,००० मील लम्बी नई पक्की सडकें और लगभग ४७,००० मील लम्बी कच्ची सड़कें बनाई गई।

सविधान के अनुसार, राष्ट्रीय सडकों (राजपथो) तथा सामरिक और अन्य दृष्टियो से महत्वपूर्ण कुछ अन्य सडको की देखभाल का काम केन्द्रीय सरकार, तथा राज्यीय सडको एव ज़िला और ग्रामीण सडकों की देखभाल राज्य-सरकारे करती है।

राष्ट्रीय सडको की कुल लम्बाई लगभग १३,८०० मील है। सबसे लम्बी सडक ग्रैंड ट्रक रोड है, जो लगभग डेढ हज़ार मील लम्बी है और कलकत्ते से लेकर अमृतसर तक जाती है। जब सन् १९४७ में केन्द्रीय सरकार ने राज्य-सरकारो से इन सडको का काम लिया, तब कई सडके टूटी हुई थी और रास्ते में पडनेवाली नदियो के ऊपर पुल भी न होने के ही बराबर थे। पहली पचवर्षीय योजना मे इस आवश्यकता की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस अवधि में लगभग ६४० मील लम्बी सडके बनाने के साथ-साथ, ४० बडे पुल भी बनाए गए तथा लगभग २,५०० मील लम्बी सडको का सुधार किया गया। इसके अलावा, बनिहाल में एक सुरग का भी निर्माण किया गया, जिससे कश्मीर और शेष भारत के बीच बारहो महीने यातायात सम्भव हो गया है। इस सुरग मे दो रास्ते होगे। एक रास्ता दिसम्बर १९५८ से खुल चुका है।

दूसरी पचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय राजपथो के लिए ५५ करोड रु० की व्यवस्था है। इस योजना की अवधि मे मुख्य रूप से लिंक सडकें और पुल बनाए जाएगे तथा वर्तमान सडको मे सुधार किया जाएगा। राज्यों की सडक-योजनाओ के अन्तर्गत लगभग २१,००० मील लम्बी पक्की सडके तथा ३७,००० मील लम्बी कच्ची सडके (मुख्यतया सामुदायिक विकास-क्षेत्रो में) बनाने का विचार है।

सडक-विकास के लिए एक नई दीर्घकालीन योजना विचाराधीन है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक गाव को सड़कों के द्वारा आपस में जोड़ दिया जाएगा। यदि यह योजना कार्यान्वित हो गई, तो प्रत्येक १०० वर्गमील

क्षेत्र मे औसतन ५२ मील लम्बी सडकें हो जाएगी। (इस समय इतने क्षेत्र में केवल २८ मील लम्बी सडके है।)

सडक-विकास पर कुल मिला कर २४६ करोड रु० खर्च करने की योजना है। इसके अतिरिक्त, २५ करोड रु० केन्द्रीय सडक-निधि में से भी खर्च किए जाएगे। इस निधि मे से राज्यो को सडकें बनाने के लिए अनुदान भी दिए जाते है। यह निधि सन् १६२६ मे स्थापित की गई थी।

सडक-परिवहन-निगम-अधिनियम, १६५० के अन्तर्गत राज्य-सरकारो, रेलो और गैर-सरकारी आपरेटरो-द्वारा त्रिदलीय आधार पर अनुविहित परिवहन-निगम बनाए जा रहे है। अधिकाश राज्यो मे सरकार बसो, आदि की व्यवस्था स्वय कर रही है।

३१ मार्च, १६५८ को भारत मे कुल ५४,२८७ मोटर-साइकिले, ३,४४१ आटो-रिक्शा, २,०४,५५७ प्राइवेट कारे, १८,४६६ जीपें, ४१,१५६ सार्वजनिक गाडिया, १५,०६२ मोटर टैक्सिया, १,३३,४७६ भारवाहक तथा २८,२२२ विविध गाडिया थी।

अन्तर्देशीय जल-परिवहन

रेल की तुलना मे जल-परिवहन हर दृष्टि से सस्ता पडता है। देश के नौगम्य जलमार्ग लगभग ५,००० मील लम्बे है। अधिक महत्वपूर्ण जलमार्गो मे गगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी और कृष्णा, केरल के बाध और नहरे, बकिंघम नहर, मद्रास और आन्ध्रप्रदेश की तटवर्ती नहरे तथा उडीसा मे महानदी की नहरे उल्लेखनीय है। सन् १६५२ मे, पहली पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, एक गगा-ब्रह्मपुत्र जल-परिवहन-बोर्ड की स्थापना की गई थी। दूसरी पचवर्षीय योजना मे जल-मार्गों को गहरा बनाने के लिए ३ करोड रु० की व्यवस्था है, ताकि इनमे बिजली से चलनेवाले आधुनिक जहाज और नावे चल सके।

अन्तर्देशीय जल-परिवहन-समिति ने अपनी रिपोर्ट में एक केन्द्रीय तकनीकी सगठन और प्रशिक्षण-प्रतिष्ठान स्थापित करने, नदी-घाटी-परियोजनाओ मे जहाजरानी की सुविधाएं देने तथा मल्लाहो की सहकारी समितियो को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की है।

जहाज़रानी तथा बन्दरगाह

जहाज़रानी

भारत की तट-सीमा लगभग ३,५०० मील लम्बी है। इससे भारत का अन्य देशो के साथ खूब व्यापार होता है। परन्तु जहाजरानी का विकास करने का काम, वास्तव मे, सन् १६४७ के बाद ही आरम्भ हुआ। भारत का सारा-का-सारा तटवर्ती व्यापार भारतीय जहाज़ ही सम्भाले हुए है, परन्तु विदेशी व्यापार के मामले में स्थिति सन्तोषजनक नही है।

जहाजरानी-कम्पनियो को ऋणो के रूप मे सरकारी सहायता देने के बावजूद, भारतीय जहाज़ो मे वृद्धि की गति बडी धीमी है। पहली पचवर्षीय योजना से पूर्व भारत में ३,६०,००० टन वजन के जहाज़ थे। योजना के अन्त मे लगभग ६,००,००० टन वजन के जहाज हो गए। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक लगभग ६,००,००० टन वजन तक के जहाजो की व्यवस्था करने का लक्ष्य है।

दिसम्बर १६५६ के अन्त मे भारत मे ७.३६ लाख टन के जहाज थे, जिनमे से २ ७४ लाख टन के ८६ जहाज़ तटीय व्यापार मे तथा ४.६५ लाख टन के ६८ जहाज़ विदेशी व्यापार मे लगे हुए थे।

जहाज़रानी के सम्बन्ध मे नीति-विषयक बातो पर परामर्श देने के लिए सरकार ने एक राष्ट्रीय जहाजरानी-बोर्ड बना दिया है। भारतीय जहाजरानी-कम्पनियो को ऋणादि देने के लिए भी एक निधि है।

मार्च १६५२ मे सरकार ने सिंधिया कम्पनी से विशाखापत्तनम् शिपयार्ड (जहाज़-निर्माण-घाट) खरीद कर उसकी व्यवस्था का भार हिन्दुस्तान शिपयार्ड को सौंप दिया। इसकी दो-तिहाई पूजी सरकार के हाथ मे है। इस कारखाने मे अब तक २३ समुद्री जहाज़ो तथा ३ छोटे जहाज़ो का निर्माण हो चुका है, जिनका वज़न १,११,६०० टन है।

व्यापारिक जहाज़ो मे वृद्धि करने के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र को पहली पचवर्षीय योजना में २४ करोड रु० दिए गए थे। इसी प्रयोजन के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना मे १२ ५ करोड़ रु० की व्यवस्था है। इसके

अतिरिक्त, पूर्वी और पश्चिमी जहाजरानी-निगम भी है, जिनकी अधिकृत पूजी दस-दस करोड रु० है।

बन्दरगाह

भारत मे छ मुख्य बन्दरगाह है—काडला, कलकत्ता, कोचीन, बम्बई, मद्रास तथा विशाखापत्तनम्। देश-विभाजन के बाद कराची बन्दरगाह पाकिस्तान के हिस्से मे चला गया। इस कमी को पूरा करने के लिए काडला बन्दरगाह का निर्माण किया गया। पहली पचवर्षीय योजना मे काडला के विकास और विस्थापितो के लिए गाधीधाम नामक उपनगर बसाने के लिए १२ करोड रु० की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त, अन्य मुख्य बन्दरगाहो मे सुधार, आदि करने के लिए भी योजना मे व्यवस्था की गई थी।

सन् १९५८-५९ मे बन्दरगाहो पर २ ८८ करोड टन माल लादा-उतारा गया।

बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के बन्दरगाहो का प्रशासन अनुविहित बन्दरगाह-प्राधिकारियो के अधीन है और उन पर केन्द्रीय सरकार का नियत्रण रहता है। कोचीन, विशाखापत्तनम् और काडला बन्दरगाहो का प्रशासन सीधे सरकार के अधीन है। बन्दरगाह-न्यास और बन्दरगाह-अधिनियम के अन्तर्गत बन्दरगाहो का एकसमान प्रशासन करने की व्यवस्था की गई है।

मुख्य बन्दरगाहो के अलावा, भारत के समुद्र-तट पर २२५ छोटे बन्दरगाह भी है, जिन पर हर साल लगभग ५० लाख टन माल लादा-उतारा जाता है। दूसरी पचवर्षीय योजना में छोटे बन्दरगाहो के लिए ६ करोड रु० की व्यवस्था है।

बन्दरगाहो, विशेषकर छोटे बन्दरगाहो, के समन्वित विकास के लिए सन् १९५० से एक राष्ट्रीय बन्दरगाह-बोर्ड कार्य कर रहा है।

असैनिक उड्डयन

हाल के वर्षों मे भारत मे असैनिक (सिविल) उड्डयन के क्षेत्र में अन्तर्देशीय तथा विदेशी वायु-सेवाओ का राष्ट्रीयकरण करना एक प्रमुख

घटना थी। इन सेवाओ को सचालित करने का काम दो निगमो—एयर-इडिया इटरनेशनल तथा इडियन एयरलाइन्स—के हाथ मे है।

सन् १६५६ मे भारतीय विमानो ने लगभग ३ ०२ करोड मील की उडान भरी तथा वे लगभग ८ १४ लाख यात्री तथा १६ ७६ करोड पौड माल और डाक, आदि एक स्थान से दूसरे स्थान ले गए।

इडियन एयरलाइन्स कारपोरेशन के पास जनवरी १६६० में १० वाइकाउट, ५ स्काईमास्टर, ७ हेरोन तथा ५७ डकोटा विमान थे। एयर-इडिया इटरनेशनल के पास ६ सुपर-कान्स्टेलेशन विमान है, जो १६ देशो को जाते-आते है। भारत के लगभग प्रत्येक मुख्य नगर में विमान आते-जाते है।

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, उपर्युक्त दोनो निगमों के लिए ३० ५ करोड रु० की व्यवस्था है तथा इनके विमानो का आधुनिकीकरण करने का विचार है। एयर-इडिया इटरनेशनल धीरे-धीरे डकोटा विमानो को हटा कर उनके स्थान पर बडे और द्रुतगामी विमान खरीद रहा है। इसके अतिरिक्त, एयर-इडिया इटरनेशनल के लिए ३ जेट विमान भी खरीदे जाएगे। वायु-सेनाओ के विस्तार के साथ-साथ हवाई अड्डो तथा अन्य स्थल-सेवाओ का विकास भी किया जा रहा है। भारत-सरकार के असैनिक उड्डयन-विभाग के नियत्रण मे इस समय ८५ हवाई अड्डे है। ५ नए हवाई अड्डो का निर्माण हो रहा है।

भारत-सरकार छात्रवृत्तिया, उड्डयन-क्लबो को अनुदान और ग्लाइडिग को प्रोत्साहन देकर उड्डयन के क्षेत्र मे काफी सहायता कर रही है। इस समय देश मे सरकारी सहायता पानेवाले १६ उड्डयन-क्लब, ३ सरकारी ग्लाइडिग-केन्द्र तथा सरकारी सहायता पानेवाला एक ग्लाइडिग-क्लब है। इसके अतिरिक्त, असैनिक उड्डयन-विभाग के इलाहाबाद-स्थित प्रशिक्षण-केन्द्र मे उड्डयन-कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत ने अफगानिस्तान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इटली, इराक, जापान, नीदरलैण्ड, पाकिस्तान, फ्रास, फिलीपीन, ब्रिटेन, मिस्र, रूस, लेबनान, श्रीलका, स्याम, स्विट्जरलैण्ड तथा स्वीडन के साथ वायु-परिवहन-समझौते कर रखे है।

पर्यटन

प्राचीन काल से ही भारत यात्रियो के लिए एक आकर्षण का केन्द्र रहा है। परन्तु पर्यटन को प्रोत्साहन देने के विशेष प्रयत्न स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ही हुए है। परिवहन-मन्त्रालय के अधीन एक विभाग है, जो पर्यटन को प्रोत्साहन देने और पर्यटको को सुविधाए, आदि प्रदान करने की व्यवस्था करता है।

सन् १९५९ में १,०९,४६४ (पाकिस्तानी पर्यटको को छोड कर) पर्यटक भारत आए। अनुमान है कि सन् १९५८ मे पर्यटको से भारत को लगभग १७ ५ करोड रु० की आय हुई थी।

विश्व के अनेक महत्वपूर्ण स्थानो पर भारत के पर्यटन-सूचना-कार्यालय विद्यमान है। देश मे भी महत्वपूर्ण स्थानो पर पर्यटन-कार्यालय है।

भारत मे होटलो का वर्गीकरण करने और उचित दरे निर्धारित करने के लिए भी व्यवस्था की जा रही है। पर्यटको को मुद्रा, सीमा-शुल्क तथा अन्य नियमो की भी छूट दी जाती है। पर्यटको के विशेष आकर्षण-स्थलो मे राज्य-सरकारो ने भी पर्यटन-कार्यालय खोल रखे है।

अध्याय १८

संचार-व्यवस्था

भारत मे रेलो के बाद सबसे बड़ा सरकारी प्रतिष्ठान डाक, तार, टेलीफोन-विभाग है। ३१ मार्च, १९५९ को डाक और तार विभाग मे ३,३६,१४५ कर्मचारी थे तथा पूजीगत व्यय १२१ करोड रु० का था। १ अप्रैल, १९५९ को इस विभाग के पास सगृहीत बचत के रूप मे २७.१३ करोड रु० थे।

भारत मे लगभग ५,५०,००० मे नगर और गाव है। इस संख्या को देखते हुए, भारत के डाकियो को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। सन् १९५९ में भारत मे ६४,९९३ डाकघर थे, जब कि सन् १९४७ मे इनकी सख्या केवल २२,११६ और सन् १९५१ मे, अर्थात् पहली पच-वर्षीय योजना के आरम्भ मे, ३६,०९४ थी। सरकार की यह नीति है कि दो मील की परिधि में बसे गावो के लिए कम-से-कम एक डाकघर जरूर हो। इस समय २,००० की जनसख्यावाले सभी गावो मे डाकघर की व्यवस्था है। आशा है कि दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे २०,००० और डाकघर खुल जाएगे।

भारत के मुख्य नगरो मे दिन में तीन-चार बार डाक बाटने की व्यवस्था है। भारत की डाक-सेवाओ की एक प्रमुख विशेषता यह है कि मुख्य नगरो मे सब पत्र और मनीआर्डर बिना किसी अतिरिक्त शुल्क के हवाई जहाज़-द्वारा पहुचाए जाते है। जिन नगरो में रात्रिकालीन हवाई डाक की व्यवस्था है, उनमें चलते-फिरते डाकघर भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी अधिक बार डाक बांटने की व्यवस्था की जा रही है।

डाक और तार-विभाग डाकघर-बचत-बैंक, डाकघर-जीवन-बीमा तथा राष्ट्रीय बचत-पत्रो की बिक्री की भी व्यवस्था करता है। यह विभाग अपनी आय का कुछ हिस्सा केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व में भी देता है।

सन् १९५८-५९ मे इस विभाग को ३७.८७ करोड रु० की आय हुई ।

तार-व्यवस्था

सन् १९५८-५९ मे देश मे कुल १०,७४६ तारघर थे (जिनमे लाइसेंस-प्राप्त तारघर भी शामिल हैं), जिनसे ३ ४३ करोड तार भेजे गए । इस वर्ष ८ २६ करोड रु० का राजस्व प्राप्त हुआ ।

हिन्दी में तार भेजने की व्यवस्था पहले-पहल १ जून, १९४९ को आरम्भ हुई । इस समय लगभग १,४०० तारघरो से ये तार भेजे जा सकते है । इसके अतिरिक्त, तार किसी भी भारतीय भाषा में देवनागरी लिपि मे भेजे जा सकते है ।

दूसरी पचवर्षीय योजना में १,४०० नए तारघर खोलने की व्यवस्था है । इसके अतिरिक्त तार-व्यवस्था मे कुछ और सुधार भी किए जाएगे ।

टेलीफोन-व्यवस्था

सन् १९५८-५९ मे भारत मे ३,७८ ००० टेलीफोन तथा ६,७१४ टेलीफोन-एक्सचेज थे । इस वर्ष टेलीफोन-सेवा से २० करोड रु० का राजस्व प्राप्त हुआ ।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे टेलीफोनो की सख्या लगभग दुगुनी हो गई थी । इस योजना मे ३०,००० की जनसख्यावाले प्रत्येक नगर में और प्रत्येक जिला-मुख्यालय मे टेलीफोन-एक्सचेज लगाने का लक्ष्य रखा गया था । दूसरी पचवर्षीय योजना मे १,८०,००० नए टेलीफोन और दूर-दूर टेलीफोन करने के लिए सार्वजनिक टेलीफोन-कार्यालय स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है ।

टेलीफोन-यत्रो का निर्माण करने के लिए बगलोर के समीप एक कारखाना है, जिसकी अधिकृत पूजी ४ करोड रु० है । इस कारखाने ने सन् १९५९ में ८४,३०० टेलीफोन बनाने के अतिरिक्त, विविध प्रकार का सामान भी तैयार किया ।

समुद्रपारीय सचार-व्यवस्था

विश्व क रगमच पर भारत के महत्व मे उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण भारत और अन्य देशो के बीच दूर-सचार-सेवाओ मे भी निरन्तर विकास हुआ है। पहली पचवर्षीय योजना के आरम्भ में केवल ६ देशो के साथ सीधी बेता -सेवाए विद्यमान थी। परन्तु अब २२ देशो के साथ सीधी और ४२ देशो के साथ लन्दन के मार्ग स रेडियो-टेलीफोन-सेवा, २० देशो के साथ रेडियो-तार-सेवा तथा ६ देशो के साथ सीधे और १० देशा के साथ लन्दन के मार्ग मे रेडियो-फाटो-सेवा उपलब्ध है। दूसरी पचवर्षीय याजना की अवधि मे इन सुविधाओ का विस्तार करने की व्यवस्था है।

मौसम-विभाग

परिवहन और सचार विशेषकर उड्डयन और जहाजरानी के लिए मौसम-सम्बन्धी सूचनाओ की व्यवस्था करना अत्यधिक महत्व रखता है। भारत का मौसम-विभाग ये सेवाए प्रदान करने की व्यवस्था करता है।

इस विभाग ने जल और बिजली-आयोग के सहयोग से महत्वपूर्ण नदियो के जलग्रहण-क्षेत्रो मे हाइड्रो-मेट्रियोलाजिकल अनुसधानशालाए स्थापित करने का जो कार्य किया वह विशेष रूप से प्रशसनीय है। इन अनुसधानशालाओ मे वर्षा और मौसम सम्बन्धी अन्य तथ्यो का सकलन किया जाएगा जो नदी-घाटी और बाढ-नियत्रण परियोजनाओ के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगे।

मौसम-विभाग की प्रयोगशालाओ में आधुनिक उपकरण लगाने और उनका विस्तार करने का काम जारी है। इसके अतिरिक्त, एक केन्द्रीय अन्तरिक्ष-अनुसधानशाला स्थापित की जा रही है।

अध्याय १

वास्तुकला

वास्तुकला की दृष्टि से भारत अत्यन्त समृद्ध देश है। सामान्यत भारतीय वास्तुकला को पाच युगो में विभक्त किया जाता है—बौद्ध-पूर्व बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम तथा आधुनिक।

भारतीय वास्तुकला का प्राचीनतम रूप सिन्धु-घाटी-सभ्यता के प्राचीन नगर-अवशेषो मे दृष्टिगोचर होता है जिसकी तिथि इतिहासकारो ने अनुमानत ईसा से ३००० वर्ष पूर्व स्थिर की है। सन् १६२२ मे सिन्ध-प्रदेश मे 'मोहेन-जो-दडो तथा पजाब मे हड़प्पा' नामक स्थानो पर जो खुदाई की गई, उससे स्पष्ट हो गया कि इतने प्राचीन काल मे भी भारत में नगरो का निर्माण वैज्ञानिक रीति और याजनाबद्ध तरीके से किया जाता था। नगरो मे राजमार्ग, वीथिया, चौडी सडके, गलिया, दुकाने और धान्यागार होते थे। मकानो का निर्माण पकाई हुई ईंटो से किया जाता था और उनकी छते थापी हुई ईंटो से बनाई जाती थी। प्राय प्रत्येक घर मे स्नानागार अथवा गुसलखाना होता था और पानी की निकासी की भी पर्याप्त व्यवस्था रहती थी। घरो मे ईंटो के बने पक्के कुए भी होते थे।

ईसा-पूर्व की पन्द्रहवी से छठी शताब्दी, अर्थात् वैदिक काल, की वास्तुकला के नमूने बहुत कम उपलब्ध है। परन्तु वेदो में किलेबन्द नगरो का उल्लेख आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युग मे भव्य मकान बहुत कम बनाए जाते थे और लोग अधिकतर फूस के मकानो मे रहते थे। बौद्ध-ग्रन्थो में योजनानुसार निर्मित नगरो और भव्य राज-प्रासादो के उल्लेख मिलते है। सम्भवत उनका निर्माण पाटलिपुत्र और मौर्य-प्रासादो के अनुकरण पर ही किया जाता था। अशोककालीन वास्तु-कला (लगभग सन् २७३-२३७ ईसा-पूर्व) अधिक उन्नत और वैभवशाली है, क्योकि उस युग में पहली बार लकडी के स्थान पर पत्थर का उपयोग

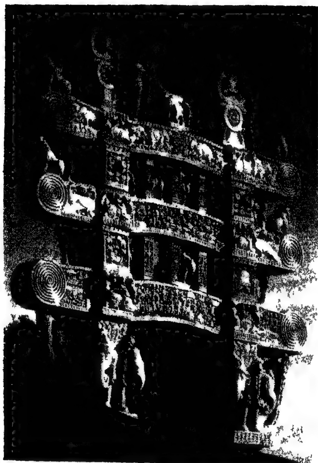
आरम्भ हुआ। इस युग की उत्कृष्ट कला के दर्शन उन शिला-स्तम्भों में मिलते हैं, जिन पर सम्राट् अशोक ने अपनी उद्घोषणाएं उत्कीर्ण करवाई थीं। सारनाथ-स्थित सुप्रसिद्ध सिंह-स्तम्भ में चार सिंह हैं, जो स्तम्भ के शीर्ष-भाग में एक चौरस पट्टी के ऊपर एक-दूसरे की ओर पीठ किए बैठे हैं। इस पट्टी के चारों ओर चार धर्मचक्र बने हुए हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत ने इसी सिंह-स्तम्भ के शीर्ष भाग को अपना राष्ट्रीय चिह्न बनाया।

अशोककालीन युग में वास्तुकला ने जो उन्नति की, वह ईसा-पूर्व २०० से सन् २० ईसवी तक जारी रही। यह 'चैत्यों' और 'स्तूपों' का युग था। विशेष प्रसिद्ध चैत्य और स्तूप बेदसा, कार्ले, भरहुत तथा साची में विद्यमान है। ये स्तूप स्मारक-चिह्न हैं और इनकी आकृति टीले-जैसी है। इनका निर्माण पुण्यात्माओ, मुख्यत: महात्मा बुद्ध, के अवशेषो पर किया जाता था। कार्ले-स्थित चैत्य, जिसका काल अनुमानत ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी है, कन्दरा-वास्तुकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। साची के स्तूपो की निर्माण-तिथि भिन्न-भिन्न है। स्तूप-सख्या १ का मध्य-भाग सम्भवत मौर्य-काल में निर्मित हुआ था। स्तूप-संख्या २ और ३ का निर्माण बाद मे हुआ तथा तोरण-द्वार का निर्माण तो सम्भवत. उसके भी बाद हुआ। साची के तोरण-द्वार पर उत्कीर्ण मूर्तिया अलंकरण और कथा-अकन के अद्‌भुत उदाहरण है। मुख्य प्रसग महात्मा बुद्ध के जीवन और जातक-कथाओ से ग्रहण किए गए है।

इसी युग मे निर्मित दक्षिण-भारत के भव्य स्मारकों में अमरावती-स्थित स्तूप विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तव में, गुप्त-काल (सन् ३२०-६५० ईसवी) प्राचीन भारतीय वास्तुकला तथा मूर्तिकला के चरम उत्कर्ष का युग था। बोध गया-स्थित सुप्रसिद्ध महाबोधि-मन्दिर की अवस्था सम्भवतः पुनरुद्धार के पश्चात् भी प्रारम्भिक गुप्त-कालवाली ही है। इस मन्दिर में सीधे किनारेवाले पिरामिड के आकार की नौ मंजिलें हैं। सुप्रसिद्ध अजन्ता की गुफाओं का भी निर्माण इसी युग में हुआ।

गुप्त-काल के पश्चात् वास्तुकला की अभिवृद्धि मे दक्षिण के चालुक्यों,



साची-स्तप का प्रवश-द्वार

राष्ट्रकूटो और पल्लवो ने तथा पूर्व मे पालो ने विशेष योगदान किया। सातवी शताब्दी मे बौद्धो का नालन्दा-विश्वविद्यालय चरमोत्कर्ष पर था। चालुक्यकालीन (सन् ५५०-७४६ ईसवी) वास्तुकला के उदाहरण ऐहोल, पट्टदकल तथा बादामी के सुप्रसिद्ध मन्दिरो मे दृष्टिगोचर होते है। राष्ट्रकूटो ने जिन प्रसिद्ध स्मारको का निर्माण किया, उनमे एलोरा-स्थित कैलाश-मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। इस मन्दिर मे भारतीय मूर्ति-कला के उत्कृष्ट नमूने देखने को मिलते हैं। वर्तमान बम्बई के निकटस्थ एलिफैंटा की गुफाग्रो का दर्शनीय शिव-मन्दिर, जो त्रिमूर्ति-शिल्प के लिए विशेष प्रसिद्ध है सम्भवत इसी युग की कृति है।

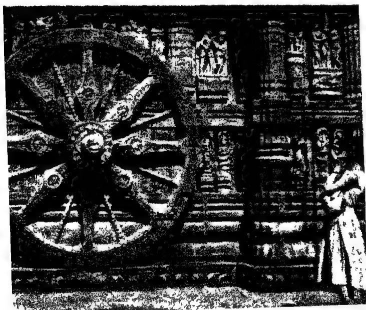
महाबलिपुरम का रथ



सन् ४०० तथा ७५० ईसवी के मध्य दक्षिण मे पल्लवो का शक्तिशाली राज्य था। महाबलिपुरम् के मन्दिर उनकी अत्यन्त अमूल्य देन हैं। कांची में पल्लवकालीन कैलाशनाथ-मन्दिर है, जिसका निर्माण आठवी शताब्दी मे हुआ था।

उत्तर-मध्यकाल (सन् ९०० से १३०० ई० तक) मे इतने मन्दिर और स्मारक निर्मित हुए कि यहा उन सबका उल्लेख करना सम्भव नही हैं। खजुराहो के भव्य मन्दिरो का निर्माण सन् ९६० से १०५० ईसवी के मध्य हुआ। इन मन्दिरो में एक भव्य मुख्य मीनार के इर्द-गिर्द छोटे-छोटे मीनारो का निर्माण किया गया है, जो सौन्दर्य में चार चाद लगाते है। खजुराहो मे सबसे उत्कृष्ट भवन कन्दरिया महादेव का मन्दिर है, जो ११६ फुट ऊचा है। ये मन्दिर 'नागर'-शैली मे बने हैं। इसी शैली

कोणार्क के सूर्य-मन्दिर का रथ-चक्र

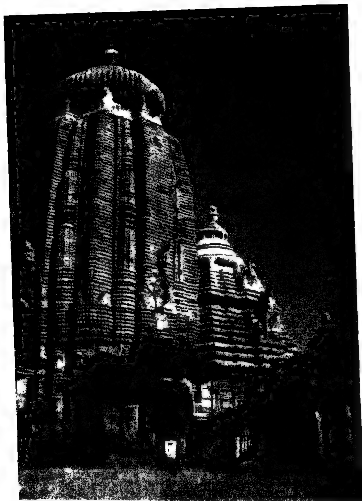




तजौर का वृहदेश्वर-मन्दिर

से राजस्थानी शिल्प के नए रूपो का विकास हुआ। माउट आबू के जैन-मन्दिर इसके प्रमाण है।

सातवी से तेरहवी शताब्दी मे निर्मित उडीसा के मन्दिरो मे नागर-शैली की विशेषताओ का भव्य उद्घाटन हुआ है। लिगराज (भुवनेश्वर)



भुवनेश्वर का लिंगराज-मन्दिर

का मनोरम मन्दिर बड़ा ही प्रभावशाली है । कोणार्क का रमणीय सूर्य-मन्दिर भी रचना और शिल्प की दृष्टि से अनुपम है ।

उत्तरकालीन चालुक्य-शैली तथा होयसल-शैली के मन्दिर धारवाड के समीप मैसूर और बेलूर, हालेबीड तथा सोमनाथपुरम् में दृष्टिगोचर होते हैं।

चोलों की मन्दिर-निर्माण-कला के उत्कृष्ट उदाहरण तंजावूर के शिव-मन्दिर (११-वीं शताब्दी के आरम्भ में), गंगइकोंडा-चोलापुरम् के मन्दिर (११-वीं शताब्दी) तथा चिदम्बरम् के 'नृत्य चैत्य' में देखने को मिलते हैं। विजयनगर-मन्दिर का निर्माण भी इसी परम्परा में हुआ है।

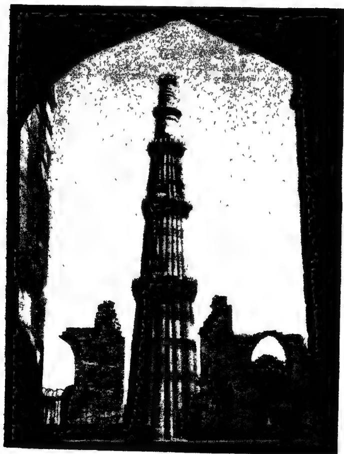
मुस्लिम-वास्तुकला

बारहवीं शताब्दी के अन्त में उत्तर-भारत में मुस्लिम-शासन की स्थापना के साथ दो भिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में एक नई कला का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे मुस्लिम-कला के नाम से पुकारा जाता है। अरबी मेहराब तथा सीरिया मिस्र, उत्तर-अफ्रीका और ईरान के अन्य प्रभावों एवं भारतीय परम्परा के संश्लेषण के परिणामस्वरूप ही इस विशिष्ट कला का जन्म हुआ।

मुस्लिम-वास्तुकला के विकास में दिल्ली का विशेष महत्व है। तुर्की-अफगान युग के आरम्भिक दिनों की सबसे प्रसिद्ध इमारत कुतुब मीनार है। २३४ फुट ऊंचा यह मीनार बनाया तो इस उद्देश्य से गया था कि इस पर चढ़ कर मुल्ला अजान दे सके, परन्तु बाद में यह एक विजय-स्तम्भ के रूप में प्रसिद्ध हो गया। लगभग इसी युग में आलीशान मस्जिदों का भी निर्माण किया गया, जिनमें से आज केवल अलाउद्दीन की मस्जिद और अलाई दरवाजा के कुछ भाग ही सुरक्षित हैं। तुगलकों के आगमन (चौदहवीं शताब्दी) के साथ दिल्ली की वास्तुकला में एक नया मोड़ आया, जिसके फलस्वरूप सजावट और अलंकरण का स्थान सादगी ने ले लिया। तुगलककालीन वास्तुकला का सबसे उल्लेखनीय स्मारक है, कोटला फीरोजशाह, जिसकी आकृति एक दुर्गनुमा महल-जैसी है। इसका निर्माण फीरोजशाह तुगलक ने अपने लिए करवाया था और इसमें एक अशोक-स्तम्भ भी रखवाया था, जो अम्बाले से लाया गया था।

इस बीच प्रान्तीय राजधानियों में वास्तुकला की कुछ बिल्कुल भिन्न

और स्वतन्त्र शैलियो का विकास होता रहा। बगाल मे मुस्लिम-शासको ने बगाली वास्तुकला की कुछ विशिष्ट बाते (यथा, छोटे-छोटे अनुपातो



दिल्ली का कुतुब मीनार

में बने ईंटो के चौकोर स्तम्भ, छतो पर पच्चीकारी, इत्यादि) ग्रहण की। गुजरात के शासकों ने वास्तुकला को पर्याप्त सरक्षण प्रदान किया। अहमदाबाद की मस्जिदे और इमारते दिल्ली की मस्जिदो और इमारतो से होड करती थी। अहमदाबाद का 'तीन दरवाजा', जो शाही महल के बाहरी अहाते मे प्रविष्ट होने का द्वार था, अपनी ललित पच्चीकारी के लिए दर्शनीय हैं। अहमदाबाद मे रानी शिप्री की जो मस्जिद है, उसकी गणना विश्व की सुन्दरतम इमारतो मे की जाती है। सुल्तानो की वास्तुकला के दो अन्य उत्कृष्ट उदाहरण हैं—'हिडोला महल' और 'जामा मस्जिद'। ये माडू मे है। वाराणसी से कुछ दूर जौनपुर मे स्थित 'अटाला मस्जिद' भी दर्शनीय हैं। जौनपुर मे इस युग की अन्य उल्लेखनीय इमारतें है पड्आ की मस्जिद, दौलताबाद का किला, गुलबर्ग की मस्जिद, बीदर मे अहमद वलीशाह का मकबरा तथा महमूद गावन कालेज।

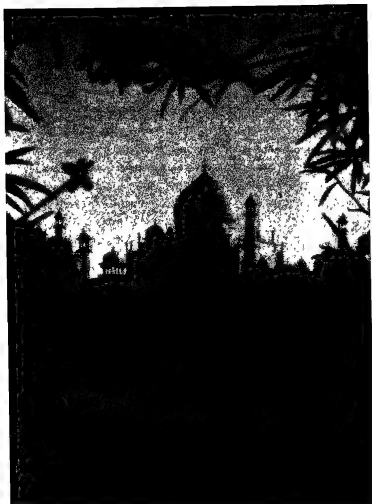
परन्तु मुस्लिम-वास्तुकला के उत्कृष्टतम उदाहरण मुगल-काल में ही देखने को मिलते है। प्रारम्भिक मुगल-शासको, बाबर और हुमायू, ने तो वास्तुकला के क्षेत्र मे बहुत कम योग दिया, किन्तु अकबर ने इसे सही अर्थों मे नवजीवन प्रदान किया। दिल्ली में हुमायू का मकबरा, जिसका निर्माण सन् १५६४-६६ ईसवी मे हुआ, विश्व की महानतम इमारतो मे गिना जाता हैं। अकबर महान् की कलाप्रियता के विशेष दर्शन फतहपुर सीकरी मे मिलते हैं। आगरा दरवाजा, जोधाबाई का महल, बीरबल का महल, दीवान-ए-खास, जामा मस्जिद, तथा बुलन्द दरवाजा, मुस्लिम-वास्तुकला के कुछ उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। अकबर के पश्चात् जहागीर ने कुछ बडे सुन्दर आरामबाग बनवाए, जो आज भी उत्तर-भारत मे विद्यमान है। श्रीनगर का शालीमार बाग इनमे सुन्दरतम है। जहागीर के शासन-काल की वास्तुकला का एक उज्ज्वल रत्न है, आगरे मे एतमाद-उद-दौला का मकबरा।

आगे चल कर मुस्लिम-वास्तुकला मे एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि लाल पत्थर तथा सगमरमर, दोनो का बहुतायद से इस्तेमाल होने लगा। इस प्रथा का प्रचलन शाहजहा ने किया। इसी मुगल-सम्राट् ने



दिल्ली-स्थित हुमायूं का मकबरा

आगरे का ताजमहल, आगरे और दिल्ली में लाल किले, तथा दिल्ली में जामा मस्जिद का निर्माण करवाया। दिल्ली की जामा मस्जिद अपने सामने खड़े लाल किले से होड़ लेती है। आगरे के ताजमहल की जितनी



आगरे का ताजमहल

प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। उत्कृष्ट वास्तुकला के अतिरिक्त, संगमरमर पर पच्चीकारी और किताबत का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। वस्तुत

यह स्मारक शिल्पकारो की प्रतिभा और सौन्दर्य के प्रति मुगल-सम्राट् की अभिरुचि का एक अमर प्रमाण है।

बीजापुर मे आदिलशाही वश ने एक नई शैली का सूत्रपात किया, जिसका उदाहरण मुहम्मद आदिलशाह (सन् १६२६-१६५६ ईसवी) के मकबरे 'गोल गुम्बज' मे देखने को मिलता है। इस शैली की प्रमुख विशेषताओ मे आठ कोणोवाले गुम्बज, मुडेरे के नीचे कार्निस तथा अत्यन्त कुशलता से सजाई गई मेहराबे उल्लेखनीय है। बीजापुर की एक सुन्दर इमारत है, रोजा-ए-इब्राहीम। अग्रेजो के आगमन से पूर्व की प्रसिद्ध इमारतो मे ग्वालियर, दतिया और अम्बर-स्थित राजमहल तथा जयपुर का हवाई महल विशेष उल्लेखनीय है। जयसिह-द्वारा निर्मित जयपुर, उज्जैन तथा वाराणसी के जन्तर-मन्तर भी विशेष दर्शनीय है।

आधुनिक काल

मध्ययुगीन भारत मे भारतीय वास्तुकला के विकास मे कई बातो का हाथ रहा है—जैसे, उन दिनो वास्तुकला की एक समृद्ध परम्परा थी, कला को शासक-वर्ग का सरक्षण प्राप्त था तथा देश मे चारो ओर समृद्धि और सुरक्षा का वातावरण व्याप्त था। किन्तु अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दियो मे वास्तुकला को अनुकूल परिस्थितिया नही मिली, यद्यपि मराठो और कुछ राजपूत शासको तथा अवध के नवाबो ने कुछेक सुन्दर राजमहलो और दुर्गों का निर्माण करवाया। अग्रेजो के प्रभुत्व मे आने के साथ, भारतीय वास्तुकला मे जो सश्लेषण हुआ था, वह तिरोहित हो गया। ईस्ट इडिया कम्पनी ने लन्दन मे प्रचलित शैलियो के अनुकरण पर भारत मे इमारतो का निर्माण आरम्भ किया। इस शताब्दी के आरम्भ मे स्वदेशी आन्दोलन के जन्म के साथ वास्तुकला का राष्ट्रीय स्वरूप अपनाने की भी जोरदार माग की जाने लगी। ब्रिटिश शासको ने कुछ सरकारी इमारतो के निर्माण मे पूर्वी शैलियो को भी अपनाने का प्रयत्न किया, जो कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल तथा बम्बई के जनरल

पोस्ट ग्राफिस (बडा डाकघर) ग्रौर प्रिंस ग्राफ वेल्स म्यूजियम मे परिलक्षित होता है। परन्तु इस पुनरुत्थानवादी विकास का भविष्य उज्ज्वल नही था।

नई दिल्ली की इमारतो मे नई भारतीय शैली के प्रादुर्भाव के स्थान पर ग्रधिक ग्रभिव्यक्ति ब्रिटिश शैली को ही मिली। इस शैली की वास्तुकला के मुख्य उदाहरण हैं—राष्ट्रपति-भवन, सचिवालय की इमारतें तथा ससद्-भवन। नए भवन-निर्माता मकानो, ग्रादि के निर्माण मे स्पष्टत उपयोगितावाद पर बल दे रहे हैं, किन्तु सार्वजनिक इमारतो के निर्माण मे वे कुछ परम्परागत भारतीय विशेषताग्रो के साथ-साथ ग्राधुनिक तत्वो का भी सश्लेषण करने का प्रयत्न करते प्रतीत होते हैं। भारत मे वास्तुकला ग्रौर नगर-निर्माण के क्षेत्र मे सबसे ग्रद्‌भुत प्रयोग पजाब की नई राजधानी चडीगढ में किया गया है, जिसका निर्माण ली कारबुसियर (एक फ्रासीसी वास्तुकला-विशारद) के नेतृत्व में हुग्रा है।



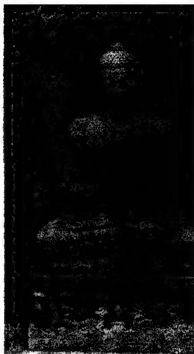
अध्याय २

मूर्तिकला

यद्यपि मूर्तिकला वास्तुकला का ही एक अग है तथापि भारत मे मूर्तिकला का विकास प्राचीन काल मे ही एक पृथक् कला के रूप मे हुआ है। भारत मे मूर्ति-पूजा का प्रचलन होने के कारण अधिकाश मूर्तिया तो देवी-देवताओ की ही है, फिर भी प्राचीन काल मे ही धर्मेतर विषयो की मूर्तियो का भी निर्माण होता रहा है।

मोहेन जो-दडो तथा हडप्पा मे मिले सिन्धु-घाटी-सभ्यता के अवशेषो मे अनेक प्रकार की छोटी मूर्तिया निकली है। खुदाई के क्रम मे दाढीवाले पुरुषो की चूने के पत्थर की आकृतिया, स्त्रियो की मृण्मूर्तिया तथा पशुओ की आकृतिया प्राप्त हुई है। एक मूर्ति गैंडे की भी है। वहा चीनी मिट्टी की नीले रग की एक टिकिया भी मिली है जिस पर एक आकृति

पालथी लगाए बैठी है और उसके दाए-बाए उपासक झुके हुए है। अनुमान है कि यह मूर्ति परवर्ती बौद्ध-कला का नमूना होगी। मिट्टी की अनेक गाडिया, जो सम्भवत. बच्चो के खिलौने थे, तथा साड की आकृतिवाली मुद्राए भी प्राप्त हुई है।



भगवान् बुद्ध, सारनाथ में अपना प्रथम उपदेश देते हुए

बुद्ध के प्रादुर्भाव तक आर्य और द्रविड-जातियो के सश्लेषण की प्रक्रिया प्राय पूर्ण हो चुकी थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मन्दिरो में मूर्ति-पूजा का प्रचलन द्रविडो ने किया। द्रविड-प्रथाओ के सश्लेषण ने तथा पितृ-पूजा और वीर-पूजा-सम्प्रदायो के आविर्भाव ने प्राचीन मूर्तिकला के विकास के मुख्य आधार स्थिर किए। मूर्तिकला-सम्बन्धी एक प्राचीन ग्रन्थ में नृपतियो और राजपुरुषो को चित्रित करने की विधि का उल्लेख किया गया है।

भारत की उन प्राचीनतम मूर्तियो मे, जिनकी तिथि स्थिर की जा सकती है, विख्यात पारखान-प्रतिमा (६१८ ईसा-पूर्व) तथा यक्षी की प्रतिमा उल्लेखनीय है। पारखान-प्रतिमा इस समय मथुरा के सग्रहालय मे तथा यक्षी की प्रतिमा कलकत्ते के सग्रहालय मे सुरक्षित है। ये प्रतिमाए बड़ी ओजस्विनी है और इनमे भावुकता अथवा अन्त परीक्षण का कोई लक्षण दृष्टिगोचर नही होता।

ईसा-पूर्व की आठवी और पाचवी शताब्दियो के मध्य ब्राह्मण, बौद्ध और जैन, ये तीनो मत साथ-साथ फूले तथा अशोक के शासन-काल में बौद्ध धर्म राजधर्म के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। अशोक महान् ने अनेक स्तम्भ स्थापित करवाए और उन पर अपनी घोषणाए खुदवाई। उनके शीर्ष-भाग मे वृषभ, गज, सिह और अश्व की प्रतिमाए होती थी। अशोक की परवर्ती मूर्तिकला मे स्तूपो की वेदिकाओ (रेलिंग) और तोरण-द्वारो पर बुद्ध के जीवन तथा उनके पूर्वजन्म के वृतान्तो के चित्र अकित है। इससे पहले बुद्ध की कोई प्रतिमा नही मिलती। उस काल मे बुद्ध को बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, सिहासन, छत्र अथवा उनके पदचिह्नो के रूप मे चित्रित किया गया है। भरहुत और साची की उत्कीर्ण मूर्तियो मे उत्कृष्ट कला का निदर्शन मिलता है। लेकिन वैदिक देवी-देवताओ को, जिन्हे अन्य धर्मो ने भी ग्रहण कर लिया था, विस्मृत नही किया गया। पूना के समीप भुज नामक स्थान में पत्थर को काट कर बनाए गए विहार में रथ पर सूर्य-देवता तथा हाथी पर इन्द्र-देवता की मूर्तिया उत्कीर्ण है। चूकि उस काल में हिन्दू और बौद्ध-मत में कोई प्रतिद्वन्द्विता नही थी, इसलिए बौद्ध-मन्दिरो और विहारो मे हिन्दू देवी-देवताओ के भी भित्तिचित्र बनाए जाते थे।

अशोकयुगीन कला मे ईरानी प्रभाव परिलक्षित होता है। इधर, यूनानी प्रभाव के फलस्वरूप गान्धार-कला का जन्म हुआ। ईसा की दूसरी शताब्दी में उत्तर-भारत मे कुशान-शासक और दक्षिण मे आन्ध्र-शासक सिहासनारूढ थे। कुशानकालीन मूर्तिया लाल रग के पत्थर को काट कर बनाई जाती थी तथा मथुरा मे बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा का निर्माण किया गया था। मौर्यकालीन दीर्घकाय मूर्तियो की परम्परा मे यह प्रतिमा कलात्मकता तथा निर्माण-शैली मे प्रगति की सूचक है, यद्यपि उस काल मे बुद्ध की मुखाकृति पर वह सौम्य भाव नही था, जो उत्तर-कालीन प्रतिमाओ में विशेष रूप से परिलक्षित होता है। वास्तव मे, उत्तर-गुप्त-काल मे बुद्ध-मूर्तिया मथुरा मे निर्मित बुद्ध-प्रतिमा की अपेक्षा गान्धार-शैली की बुद्ध-प्रतिमा के अनुकरण पर बनी। स्तूपो की वेदिकाओ और स्तम्भो पर उत्कीर्ण पीनपयोधर और क्षीणकटि अप्सराओ, आदि की



पार्वती (अहिच्छत्र)

मूर्तियो के लिए भी मथुरा विख्यात है। जैन-मत मे भी मूर्तिकला को स्थान मिला। ये मूर्तिया रेखाकन-कला के अद्भुत उदाहरण है। इसी बीच, अमरावती मे आंध्र-मूर्तिकला की विलक्षण अभिव्यक्ति हुई। कला-मर्मज्ञो की दृष्टि में स्तूपो की वेदिकाओ पर उत्कीर्ण ये मूर्तिया पूर्व-गुप्त-काल की सुन्दर मूर्तिकला तथा कलात्मक कौशल की अन्यतम उदाहरण हैं। कार्ले तथा कन्हेरी की गुफाए भी इसी युग की हैं।

चौथी शताब्दी में गुप्त-वश के आविर्भाव के साथ एक ऐसे युग का सूत्रपात हुआ, जो सामान्यत. वास्तुकला और मूर्तिकला का स्वर्ण-युग कहा जाता है। इस समय राजनीतिक दृष्टि से गुप्त-साम्राज्य सगठित था और यह पहला अवसर था, जब एक राष्ट्रीय सस्कृति का विकास हुआ। सजीवता और सुघड़ता इस युग की मूर्तिकला की विशिष्टता है और प्राय: इसे वास्तुकला से पृथक् नही किया जा सकता। वस्त्रो की सज्जा इतनी

उत्कृष्ट है कि उनकी रेखाए मूर्ति की बनावट के साथ चलती हैं। इस युग की बौद्ध-मूर्तिकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण सारनाथ और मथुरा तथा अजन्ता और बाग की गुफाओ मे दृष्टिगोचर होते है। बुद्ध की मुख-मुद्रा में अनन्त शान्ति विराजमान है और इस प्रकार शाश्वत स्वप्नो मे लीन शाश्वत बुद्ध का आविर्भाव हुआ।

इस युग में जिन सिद्धान्तो के आधार पर उत्कृष्ट बौद्ध-मूर्तियो का निर्माण हुआ, वही सिद्धान्त ब्राह्मण-धर्म मे भी प्रयुक्त किए गए और सर्वप्रथम इसी युग मे ब्राह्मण-मूर्तिकला ने समस्त देवी-देवताओ की मूर्तियो को जन्म दिया, जो सख्या मे बौद्ध-मत की मूर्तियो की अपेक्षा कही अधिक थी। ब्राह्मण-मूर्तिकला के उदाहरण ऐहोल, बादामी और उदयगिरि में दृष्टिगोचर होते है। बादामी में वैष्णव गुफाओ के स्तम्भ-कोष्ठक तो अपना सानी नही रखते। देवगढ के दशावतार-मन्दिर तथा ऐहोल की मूर्तियो में अति गम्भीर भक्ति-भाव की अनुभूति व्याप्त है।

सातवी और आठवी शताब्दियो मे ब्राह्मण देवी-देवताओ की मूर्तिया अद्‌भुत शक्ति से पूर्ण और अत्यन्त सजीव है। यद्यपि इनके रूप-विधान का आधार सरल था, तथापि समग्र रूप मे इनका प्रभाव शक्तिशाली गति का ही परिचायक है।

इस युग की सर्वोत्कृष्ट मूर्तिकला के उदाहरण एलोरा, एलिफैंटा और महाबलिपुरम् मे मिलते है। एलोरा की गुफाओ मे समस्त हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तिया उत्कीर्ण है। एलिफैंटा मे शिव के तीनो रूपो—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—की एक उत्कृष्ट कलाकृति विद्यमान है। महाबलिपुरम् में एक ही पत्थर को काट कर बनाई गई गुफाओ मे मूर्तिकला के कुछ उत्कृष्ट नमूने देखने को मिलते है।

मध्य-युग मे मुख्य रूप से मन्दिरो के स्तम्भो, दीवारो तथा कोष्ठको के अलंकरण मे मूर्तिकला का उपयोग किया गया। देवी-देवताओ के विविध रूपो का चित्रण करने के लिए उनके कई मुख बनाए गए। पूर्व-भारत की पाल-कला के अन्तर्गत प्रस्तर और धातु-निर्मित मूर्तियो मे बडा वैविध्य है, यद्यपि धातु-निर्मित मूर्तिया दक्षिण-भारत के चोल-युग मे अधिक उपलब्ध होती हैं। भुवनेश्वर, कोणार्क, खजुराहो और माउट आबू के



त्रिमूर्ति शिव (एलिफंटा)

मन्दिरो मे विविध विषयो से सम्बन्धित मूर्तिया उत्कीर्ण है, जिनमें से कुछ का निर्माण काम-दृश्यो को लेकर हुआ है, परन्तु इन सभी में एक गम्भीर नाटकीयता मिलती है ।

तेरहवी शताब्दी मे जब उत्तर-भारत मुसलमानो-द्वारा पदाक्रान्त

हुआ, तब अनेक मन्दिर ध्वस्त हुए और मन्दिर-निर्माण का कार्य न्यूनाधिक दक्षिण मे ही सीमित रहा। दक्षिण मे होयसल और काकतीय शैलियो मे सुन्दर अलंकरण से युक्त मन्दिरो का निर्माण हुआ। मन्दिरो में मूर्तिकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चोलो और पाड्यो के युग के हैं। चोल तजावूर और गगईकोड-चोलपुरम् के मन्दिरो के लिए, और पाण्ड्य मदुरा के मन्दिर के लिए सुविख्यात है। नायकवशी राजाओ ने भी इस निर्माण-कार्य मे अपना महत्वपूर्ण योग दिया। दक्षिण की सुप्रसिद्ध कास्य-मूर्तिया, जिनमे सौदर्य और भक्ति-भावना की अपूर्व अभिव्यंजना हुई है, चोल-काल की हैं। मन्दिरो की मूर्तिया तथा कास्य-मूर्तिया मूर्तिकला और नृत्यकला मे अति निकट का सम्बन्ध स्थापित करती प्रतीत होती है। यही कारण है कि कास्य-मूर्तिकारो का सबसे प्रिय विषय नटराज रहा है। दक्षिण-भारत के कुछ प्रसिद्ध मंदिर विजयनगर-काल के हैं।

इस्लाम मे मूर्ति-पूजा का निषेध है, इसलिए मुस्लिम-शासन-काल मूर्तिकला की अपेक्षा वास्तुकला का युग था। फिर भी, उस समय हिन्दू-मन्दिरो और घरो में प्राचीन मूर्तिकला का आग्रह बना रहा। परम्परागत मूर्तिकार और खिलौने बनानेवाले (गणेश और दुर्गा की मिट्टी की मूर्तिया बनानेवालो की तरह) आज भी अपने पूर्वजो की कला को कुछ परिवर्तनो के साथ अपनाए हुए है।

आधुनिक मूर्तिकला मे चित्रकला की भाति पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि सामान्य प्रवृत्ति सामाजिक चेतना और रूप-विधान की सरलता की ओर है, तथापि कुछ मूर्तिकार ऐसे है, जो गुप्तकालीन लय और अलकरणमूलक परम्परा का ही अनुसरण करते आ रहे हैं। कुछ मूर्तिकारो पर यूरोपीय कला का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। इन शैलियो मे प्रयोगवादी प्रवृत्तियो के साथ-साथ कक्रीट और लकडी-जैसे नए साधनो की सम्भावनाओ का भी अन्वेषण किया जा रहा है।

अध्याय ३

चित्रकला

चित्रकला के माध्यम का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि वास्तुकला और मूर्तिकला की तरह प्राचीन भारतीय चित्रकला के उदाहरण प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध नही होते। फिर भी, सौभाग्य से, हमारे पास इतने प्राचीन चित्र है कि उनके आधार पर यह सुगमतापूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय चित्रकला का इतिहास चित्रो के माध्यम से भारतीय सभ्यता की कथा है।

आधुनिक कलाकारो के विपरीत प्राचीन भारतीय कलाकार अज्ञात रह कर निर्धारित सहिताओ तथा नियमादि की सीमा के अन्दर कला-साधना करने मे आत्मतोष अनुभव करता था। प्राचीन भारतीय कला कलाकार-समुदाय की आत्माभिव्यजना का एक माध्यम थी और उसकी सार्थकता मुख्यतः व्यवसायगत समाज में थी।

अजन्ता की गुफाओ के गाढे नीले, लाल और पीले रगोवाले भित्ति-चित्र अधिकतर जातक-कथाओ तथा तथागत के पूर्वजन्म की घटनाओं पर आधारित है। सौभाग्यवश, कलाकार के मानस मे पौराणिक और सम-सामयिक परिस्थितियों के अन्तर का स्पष्ट चित्र नही था, फलत॰ कुछ भित्तिचित्रो में तत्कालीन समाज के कुछ पहलुओ का बड़ा सजीव चित्रण हुआ।

औरगाबाद से लगभग ६० मील की दूरी पर स्थित अजन्ता में कुछ अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध चित्र उपलब्ध है। अश्वनाल के आकार की पर्वतीय उपत्यकाओ मे २६ गुफाओ और चार चैत्योवाले इस बौद्ध-विहार की दीवारो और छतो पर बहुलता से चित्रकारी मिलती है। अनुमान है कि ये चित्र ईसा-पूर्व पहली शताब्दी से आरम्भ होकर कई शताब्दियो की अवधि मे पूर्ण हुए। समय की गति और नासमझ लोगो के हाथो इन चित्रो की कलात्मकता को बडी क्षति पहुची है और इस समय कुछ ही गुफाए सुरक्षित अवस्था में है। कलाकारो ने अजन्ता के इन चित्रो मे विलासी और

आध्यात्मिक जीवन की विविध स्थितियो का अदभुत अकन किया है। भारतीय इतिहास के स्वण-युग की कला अपनी सारी समृद्धि के साथ इनमें मुखरित हुई है। बुद्ध क जीवन की घटनाओ को चित्रित करके कला आचार्यों



पद्मपाणि बोधिसत्व (अजन्ता)

ने मानव-जीवन की विविध परिस्थितियो का दिग्दर्शन कराया है। इन चित्रों में सबसे सुन्दर और आश्चर्यजनक उदाहरण मानवता के कल्याण के प्रतीक अवलोकितेश्वर पद्मपाणि बुद्ध हैं। अजन्ता के कलाकारों की कला एक 'समृद्ध, उत्कृष्ट, समुन्नत तथा देदीप्यमान जीवन' का चित्र उपस्थित करती है और सनातन काल से ही अजन्ता सभी भारतीय कलाओं का प्रेरणा-स्रोत रही है।

परन्तु भित्तिचित्र केवल बौद्ध-कला की ही विशेषता नही हैं; विविध धर्म-सम्प्रदायो ने भी इन्हे अपनाया। उदाहरण के लिए, ईसा की छठी शताब्दी में उनके माध्यम से ब्राह्मणवादी हिन्दू-मत के मूल्यो और सिद्धातो का निरूपण किया गया। बीजापुर मे बादामी की गुफाएं ब्राह्मण-चित्रकला के प्राचीनतम अवशिष्ट उदाहरण हैं। इनमें शिव-पार्वती के दैवी-युग्म, उनके पाणिग्रहण तथा शिव के ताण्डव का सशक्त चित्रण हुआ है। दक्षिण-भारत मे सित्तनवासल के जैन-भित्तिचित्र सातवी या आठवीं शताब्दी मे पूर्ण हुए।

एलोरा की गुफाओ की कला मे शिव की लीलाओं तथा विष्णु के अवतारो का प्रस्फुटन हुआ है। इन चित्रो में अजन्ता-पद्धति का तो अनुसरण नही किया गया, परन्तु इनकी गणना भारतीय चित्रकला की सर्वोत्तम कृतियो में की जाती है।

नौवी शताब्दी के आरम्भ तक भित्तिचित्रों की कलात्मकता मे काफी ह्रास दृष्टिगोचर होने लगता है। उनके स्थान पर अब लघु आकार के चित्रो का प्रचार बढा तथा (नौवी से बारहवी शताब्दी तक) बगाल की पाल-शैली का प्रादुर्भाव हुआ। पाल-शैली मे बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों की पांडुलिपियो पर छोटे-छोटे अभिराम चित्र बनाए गए। पालकालीन चित्रों की सरल चित्रण-शैली और सजीव रेखाकन उनकी विशेषता हैं।

इसी प्रकार, ग्यारहवीं और पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य गुजराती चित्र-शैली का प्रसार हुआ। इस शैली मे जैन-धर्मग्रन्थों पर लघु आकार के चित्र बनाए गए। आरम्भ में, तालपत्रों की पाडुलिपियों को चित्रित किया गया। चौदहवीं शताब्दी तक कागज़ का भी प्रयोग होने लगा था। गुजराती चित्र-शैली के कुछ उत्तम उपलब्ध नमूने सक्रमण-काल के



बसन्त-रागिनी (दक्षिणी कलम)

है। इनके निर्माण-काल तक तालपत्रो के स्थान पर कागज का उपयोग होने लगा था। यद्यपि आरम्भिक चित्र केवल जैन-ग्रन्थो तक ही सीमित रहे परन्तु बाद मे वे हिन्दू-वैष्णव धर्मावलम्बियो के धर्म-ग्रन्थो पर भी बनाए जाने लगे। प्रणय-निवेदन और वसन्तोल्लास इनके मुख्य विषय रहे हैं।

लघु आकार के चित्र

सोलहवी शताब्दी के मध्य तक, मध्यकालीन चित्रकला का अन्त हुआ तथा राजस्थानी शैली के लघु आकार के चित्रो की सृष्टि आरम्भ हुई। वास्तव मे गुजराती शैली गुप्त-काल के भित्तिचित्रो तथा राजस्थान और पश्चिम-हिमालय (कागडा-घाटी) के छोटे चित्रो के बीच की एक कडी है। डा० आनन्द कुमारस्वामी राजस्थानी लघुचित्रो को विश्व की महान् कलाओ मे गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इस शैली की जडें वहा की मिट्टी और वहा के जनता-जनार्दन मे है और मुख्य विषय है, प्रणय। कलाकार परम्परागत भावनाओ की अभिव्यजना विविध रगो के माध्यम से करते है। इन चित्रो मे लौकिक तथा उपदेशात्मक, दोनो प्रकार की विशेषताए है तथा इनमे धार्मिक उत्साह के साथ-साथ भावात्मकता तथा काव्यात्मकता का अद्भुत और मनोहारी सयोग है। रग चमकीले, किन्तु दिखावटी या उच्छृङ्खल नही है।

राजस्थानी कला के अन्तर्गत रामायण और महाभारत के कुछ स्थलो का चित्रण बडे ही सजीव रगो मे किया गया है। सम्भवत भारतीय कला को राजस्थानी चित्रकला की स्थायी देन 'रागमाला' है। प्रत्येक 'राग' एक विशेष मनोभाव को प्रकट करता है।

जहा सोलहवी शताब्दी के लघुचित्रो की प्रमुख विशेषता उनकी सादगी और भावात्मकता मे निहित है, वहा अगली शताब्दी की कला




राधा-कृष्ण (कांगडा-शैली के दो चित्र)

अधिक समुन्नत दिखाई पडती है। प्रणय-भावो का अकन करने के लिए सर्वप्रथम प्रतीकवाद का सहारा लिया गया। सत्रहवी और उन्नीसवी शताब्दी के मध्य पश्चिम-हिमालय की दूरस्थ घाटियो के अक में पहाडी कलम पल्लवित-पुष्पित हुई। पहाडी शैली के लघुचित्रो मे कृष्ण की जीवन-लीला और गोप-बालाओ के साथ उनकी प्रणय-लीला तथा नृत्य और सगीत का अकन हुआ है। कागडा-कलम सुकुमार रगो के विन्यास और मधुर रेखाओ के लिए विश्रुत है। नारी-चित्रो के अकन मे विशेष सुकुमारता के दर्शन होते हैं।

मुगल-शैली

सोलहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे मुगल-चित्रशैली पर ईरानी परम्पराओ का प्रभाव पडा। यह कला मूलत लौकिक कला थी जिसका उद्देश्य बादशाहो और अमीर-उमरावो का मनोरजन करना था। मुगलकालीन चित्रकला मे छवि-अकन, चित्र दरबार की शान-शौकत, आखेट और युद्ध के दृश्य तथा फलो और पक्षियो के अध्ययन का चित्रण अधिक हुआ है।

धर्म, मत, पौराणिक गाथाओ तथा जन-जीवन में अमीर-उमरावो की रुचि नही थी और वे कला की बारीकी तथा शिल्प को अधिक महत्व देते थे। रेखाकन मे गिलहरी की पूछ के बालो से बनी कोमल कूची का उपयोग हुआ तथा कुछ कलाकारो ने एक बाल की तूलिका से कुछ उत्कृष्ट कलाकृतियो को जन्म दिया।

अपने लघु शासन-काल में हुमायू ने दो सुविख्यात ईरानी कलाकारो को नियुक्त किया था। हुमायू का उत्तराधिकारी अकबर एक महान् कला-मर्मज्ञ था। उसका दरबार देश की लगभग सभी चित्र-शैलियो का सगम बना। अकबर के सरक्षण मे जो कलाकृतिया तैयार हुई, उनमें राजस्थानी और ईरानी चित्रकला के सुन्दरतम अवयवों का समावेश दृष्टिगोचर होता है। अकबर ने भारतीय और ईरानी पाडुलिपियो को चित्रित करने के उद्देश्य मे भी अनेक कलाकार नियुक्त किए थे। शाही महल की दीवारो पर बडे-बडे भित्तिचित्र अकित किए गए। खेद का विषय है कि ये भित्तिचित्र अब तक नष्ट हो चुके है—केवल फतहपुर सीकरी में अकबर के महल मे ही कुछ नमूने बचे है। लघु आकार के चित्र बढिया भारतीय और चीनी कागज पर बनाए जाते थे और उन्हें दीवारो पर टागने की जगह सग्रहो (एल्बमो) मे सगृहीत किया जाता था।

अकबर के उत्तराधिकारी जहागीर के शासन-काल में चित्रकला पाडुलिपियो को अलकृत करने तक ही सीमित नही रही। वास्तव में, जहागीर के सरक्षण मे ही छवि-अकन की कला का प्रचार-विस्तार हुआ। जहागीर अक्सर कहा करता था कि पक्षियो का चित्रण करनेवाले कलाकारो मे उस्ताद मसूर महानतम तथा छवि-अकन में बिशनदास सर्वोपरि कलाकार है। शाहजहा की अधिक रुचि यद्यपि वास्तुकला में थी, तथापि उसके शासन-काल में चित्रकला को भी सरक्षण मिलता रहा तथा छवि-अकन की एक नई शैली का आविर्भाव हुआ। परन्तु औरंगजेब के शासनारूढ होने के साथ ही कलाकारो को राजकीय सरक्षण मिलना बन्द हो गया और उन्हें अन्यत्र स्थानीय छोटे दरबारों की शरण लेनी पडी।

मुगलकालीन कला घोर व्यक्तिवादी थी और कलाकार अपने नाम को अज्ञात नही रखते थे। किन्तु मुगल-काल के उत्तरार्द्ध की कला एक

ढाँचे में ढल गई। यह भी द्रष्टव्य है कि यद्यपि मुगल-कला पर निर्विवाद रूप से ईरानी प्रभाव था, तथापि अन्तत इस पर भारतीय रग चढ़ गया।

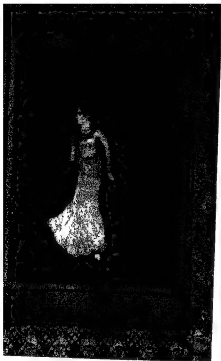


बाजबहादुर और रूपमती (मुगल-शैली)

आधुनिक काल

सन् १९०५ में धर्मशाला के भूकम्प ने चित्रकारों के पूरे समुदाय को मीठी नीद सुला दिया। मुगल और राजस्थानी कला के जन्म के पीछे जो प्रेरणा काम कर रही थी, उसका स्रोत इस समय तक नि शेष हो चुका था तथा उसके अनुकरण में जो लघु आकार के चित्र और पोर्ट्रेट चित्रित किए जाते थे, वे परिवर्तित परिस्थिति से बिल्कुल असम्पृक्त थे। यूरोपीय सस्कृति के ससर्ग से कलकत्ते में तथा कुछ प्रान्तीय नगरो में यूरोपीय पथ-प्रदर्शन में कुछ कला-शिक्षालयो की स्थापना हुई। इस युग के जिन कलाकारो ने पश्चिमी तकनीको का अनुकरण करने का प्रयास किया, उनमें से मात्र राजा रविवर्मा की ही कला मे शिल्पगत सूक्ष्मता के दर्शन होते है। रवि वर्मा के पौराणिक चित्र बडे लोकप्रिय सिद्ध हुए।

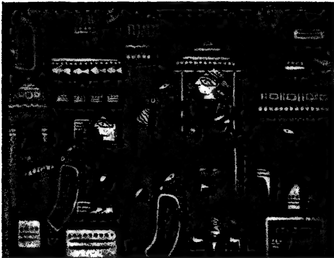
आगे चल कर हैवेल ने अजन्ता तथा राजस्थानी परम्परा के प्रति आग्रह किया। इन महानुभाव के सद्प्रयत्नो से ही भारतीय कलाकारो में पश्चिमी कला का अधानुकरण करने के प्रति विरक्ति पैदा हुई। वह कलकत्ते के कला-शिक्षालय के मुख्याध्यापक थे तथा उनकी गणना उन महानुभावो में होती है, जो प्रेरणा के लिए अपनी प्राचीन थाती का अनुसरण करने के प्रबल पक्षपाती थे। फलत अनेक कलाकारों ने तैल-चित्रों की जगह फिर से पानी के रगों से चित्र बनाने आरम्भ किए। पृष्ठभूमि का यथावत् चित्रण, यथार्थ के सादृश्य पर बल, आदि-जैसे



अभिसार
(अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कलाकृति)

पाश्चात्य सिद्धातो को त्याग कर, कलाकार अपने वर्ण्य विषयो के लिए रामायण, महाभारत और कालिदास के ग्रन्थों की ओर उन्मुख हुए। इसके अतिरिक्त, उन्होने चीनी और जापानी चित्रकला से भी प्रेरणा ग्रहण की। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने चीनी अक्षर-लेखन, जापानी रग-विन्यास तथा ईरानी परिष्करण (फिनिश), आदि की परम्पराओ का एक अपना सश्लिष्ट रूप विकसित किया। नन्दलाल बसु में कला-परम्पराओ को आत्मसात् करने की असीम क्षमता थी। उन्होने अजन्ता में पद्मपाणि का चित्रण करनेवाले बौद्ध-कलाकारो से पूर्ण तादात्म्य स्थापित किया।

बगाली कलाकारो से कुछ अलग जाकर बम्बई के कलाकारो ने अन्य शैलियो की विशिष्टताओ को भी ग्रहण किया। सन् १९१९ मे पश्चिमी तकनीक को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया तथा माडल-कक्षाए आरम्भ हुई। परन्तु अधिकारियो को आशका हुई कि माडल के आधार पर कला की शिक्षा को कही आवश्यकता से अधिक बल न दिया जाने लगे। इसलिए, कला-शिक्षा के यथार्थवादी पक्ष के साथ-साथ अलकारमूलक चित्रकला की भी एक पृथक् कक्षा आरम्भ की गई। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप, बम्बइया तथा बगला-शैलियो मे मतभेद किसी सीमा तक कम हो गया।



मेडोन्ना और संत जान
(यामिनी राय की आधुनिक शैली की एक कलाकृति)

परन्तु पुनरुत्थानवादी तथा परम्परागत पाश्चात्य तकनीको को लेकर जो विवाद उठा, उसमे एक बडी महत्वपूर्ण समस्या भुला दी गई। दोनो मे से किसी भी वर्ग ने यह अनुभव नही किया कि आधुनिक मन स्थिति की व्याख्या करने के लिए एक नई शैली की आवश्यकता है। यूरोप मे प्रचलित आधुनिक शैलियो का विभिन्न कलाकारो पर पृथक्-पृथक् प्रभाव पडा। गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, यामिनी राय तथा अमृता शेरगिल आधुनिक भारतीय कला के महान् प्रवर्तक थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक रचनात्मक साहित्यकार थे तथा उन्होने पौराणिक गाथाओ का अवलम्ब नही लिया। गगनेन्द्रनाथ शैली की दृष्टि से अधिक समर्थ कलाकार थे; इसलिए उन्होने सम-सामयिक समाज और उसकी समस्याओ के प्रति अधिक जागरूकता दिखाई तथा निर्बाध उगलियों से अंकित सफेद और काले

रेखाचित्रो मे अनेक सामाजिक दुर्बलताओ पर तीखा व्यग्य किया । कुछ समय तक उन्होंने विविध कोणो से एक वस्तुविशेष को एक ही चित्र मे घनवाद (क्यूबिज्म) की सहायता से चित्रित करने के प्रयोग किए तथा प्रकाश को चित्रात्मक सम्भावनाओ का विकास किया । उन्होने उन युवक कलाकारो में आत्मविश्वास का मत्र फूका, जो स्वतन्त्र अभिव्यजना की खोज मे पुनरुत्थानवादी आन्दोलन से दूर हटते जा रहे थे ।

यामिनी राय पाश्चात्य शैलियो मे बनाए गए अपने आरम्भिक चित्रो से सन्तुष्ट नही थे । अत वह लोक-कला की ओर उन्मुख हुए तथा रूप के लिए पट, मिट्टी के खिलौनो तथा ग्रामीण बर्तनो पर किए जानेवाले अलकरणो से उन्होने प्रेरणा प्राप्त की । उन्हे पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के कलाकारो का शिल्प प्रिय नही था, क्योकि वे कलाकार साहित्यिक परम्पराओ की ओर अधिक झुके हुए थे और परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कम प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारो को रूप-कल्पना के विषय मे अपना मार्ग खोजने मे कठिनाई होती थी ।

अमृता शेरगिल की कलाकृतियो मे गम्भीर भक्ति-भावना प्रस्फुटित होती है । अमृता शेरगिल अजन्ता की आत्मा को आत्मसात् करने की पक्षपाती तो थी, किन्तु यह नही चाहती थी कि विषय अथवा शैली के लिए भी उसे अवलम्ब बनाया जाए । उनकी दृष्टि मे अजन्ता, कलाकार के सन्देश तथा शैली और रग के उसके चुनाव के बीच एक अवयवभूत सम्बन्ध का प्रतीक है । अमृता शेरगिल ने यह सिद्ध कर दिखाया कि जो कलाकार लौकिक विषयो का चुनाव करता है, वह उतनी ही ईमानदारी और श्रद्धा से अभिव्यजना कर सकता है, जितना कि वह कलाकार, जो धार्मिक विषयो पर तूलिका चलाता है ।

सम-सामयिक भारतीय काल का मूल्याकन करना इतना सरल नही है, क्योकि विविध प्रवृत्तिया एक साथ आगे बढ रही है । वास्तव मे, आधुनिक कला विभिन्न देशो से प्रभावित हो रही है ।

सन् १९५३ और १९५४ की अवधि मे भारत मे तीन कला-अकादेमियो की स्थापना की गई । उनमें से एक ललितकला-अकादमी (स्थापना अगस्त १९५४) है । यह अकादेमी चित्रकला, शिल्पकला,

वास्तुकला तथा अन्य व्यावहारिक कलाओ की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील है। इसकी स्थापना का उद्देश्य कला-सस्थाओ के बीच सहयोग बढाना, विभिन्न कला-शैलियो के बीच विचारो के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना तथा प्रादेशिक अथवा राज्यीय अकादेमियो की गतिविधियो मे समन्वय स्थापित करना है। ललितकला-अकादेमी के प्रयत्नो के फलस्वरूप दिल्ली कला और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गई है। राजधानी में आए दिन कला-प्रदर्शनियों का आयोजन होता रहता है और जनता मे भी कला के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक रुचि पैदा हो रही है।

अध्याय ४

भाषा और साहित्य

भाषा

भारत के सविधान मे १४ भाषाओ को मान्यता प्रदान की गई है तथा हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया है, किन्तु सन् १९५० से १५ वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा। अनुमान है कि भारत की लगभग ४६ ३ प्रतिशत जनता हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और पजाबी बोलती है।

भारतीय भाषाओ का चार शीर्षको के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जाता है। भारतीय आर्य-भाषाए, द्रविड-भाषाए, आस्ट्रिक भाषाए तथा चीनी-तिब्बती भाषाए। आर्य-भाषाओ की उत्पत्ति उन यूरोपीय आक्रमण-कारियो की पुरातन भाषा से हुई, जो यूरेशिया के मैदानों मे अपने मूल निवास-स्थान से निकल कर भारत-भूमि मे प्रविष्ट हुए। आर्य-भाषा का प्राचीनतम रूप वेदो मे मिलता है, जिनका रचनाकाल अनुमानत. ईसा से पूर्व दसवी शताब्दी माना जाता है। धीरे-धीरे वैदिक सस्कृत के कई रूप हो गए, जिन्हे मध्यकालीन भारतीय आर्यों की बोलिया कहते है। ईसा-पूर्व ६०० तथा १००० ईसवी के मध्य आर्यों ने अपना क्षेत्र-विस्तार किया और ये बोलिया धीरे-धीरे उत्तर-भारत मे फैली। बौद्ध-मत का प्राचीन वाङमय पाली-भाषा में है। ईसा की दसवी शताब्दी तक मध्यकालीन भारतीय आर्य-बोलियो ने आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ का रूप धारण कर लिया था।

इन भाषाओ में से हिन्दी-भाषी लोगो की सख्या सबसे अधिक है, यहा तक कि अन्य आर्य-भाषाए—यथा, बगला, असमिया, उडिया, मराठी, गुजराती और नेपाली—बोलनेवाले भी सामान्यत. इसे समझ-बोल सकते है। ये भाषाए देवनागरी-लिपि मे अथवा देवनागरी-लिपि के विभिन्न रूपो मे लिखी जाती है। देवनागरी एक ध्वन्यात्मक लिपि है तथा उसकी वर्णमाला मे ५२ अक्षर है।

दिल्ली उर्दू-भाषा का केन्द्र रही है। उर्दू की उत्पत्ति महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के आक्रमणो के फलस्वरूप हुई तथा दिल्ली में सुल्तानो के सिहासनारूढ़ होने के बाद इसका पर्याप्त प्रचार-प्रसार हुआ। वास्तव में, उर्दू-भाषा का जन्म फारसी और स्थानीय भाषा-रूपों के परस्पर-ससर्ग से हुआ। उर्दू, फारसी-वर्णमाला मे दाए से बाएं लिखी जाती है। उत्तर-पश्चिम-भारत और ऊपरी गगा के मैदान मे इसका खूब प्रचार हुआ और बाद मे यह भाषा दक्षिण में भी फैली।

द्रविड-भाषाओ मे तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम प्रमुख है। लगभग २० प्रतिशत लोग ये भाषाए बोलते है। तमिल इन चारो मे सबसे पुरानी भाषा है तथा इसमें पाचीन द्रविड-भाषा का रूप और शब्दावली प्रचुर मात्रा मे सुरक्षित है। तेलुगु-भाषियों की सख्या लगभग ३,३०,००,००० है और हिन्दी-भाषियो के बाद इन्ही का स्थान है। इन सब भाषाओं की लिपिया, देवनागरी-लिपि की तरह ही, आरम्भिक ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है। तेलुगु और कन्नड-लिपियों मे पर्याप्त समानता है और उनकी वर्णमाला मे ५२ अक्षर है। तमिल-वर्णमाला में ३५ तथा मलयालम-वर्णमाला में ५३ अक्षर है।

बंगाल और बिहार के जगलो-पहाडो में बसनेवाले आदिवासी, जिनकी जनसख्या कुल आबादी का लगभग १.३ प्रतिशत है, विभिन्न बोलियां बोलते है। कुछ समय पूर्व तक उनकी कोई लिपि नहीं थी। ऐसी धारणा है कि इन बोलियो का सम्बन्ध दक्षिण-पूर्व एशिया से है। इसके अतिरिक्त, इन्हे आस्ट्रो-एशियायी भाषाए भी कहा जाता है।

चीनी-तिब्बती अथवा भोट-चीनी बोलिया हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर रहनेवाले छोटी-छोटी जातियो में तथा उत्तर-बगाल और असम मे बोली जाती है।

साहित्य

भारतीय सस्कृति की समस्त विधाओं मे एक साथ ही जिन दो परम्पराओ के प्रति आग्रह और विकास के दर्शन होते हैं, वे हैं—सस्कृत की परम्परा तथा प्रादेशिक परम्पराए। कला की अन्य विधाओं की अपेक्षा

भारतीय वाङमय मे इस विशेषता का अधिक समावेश है । सस्कृत-व्युत्पत्ति के साहित्यिक रूपों, मूल्यो और आलोचना-सिद्धातो के प्रति सदा आग्रह रहा है । इसके साथ ही, लोक-रूपो को भी आत्मसात् किया जाता रहा है । इन दो विभिन्न रूपो को 'मार्ग' और 'देशी' नाम दिए गए है ।

आधुनिक काल मे 'मार्ग'-साहित्य को सस्कृत तथा पश्चिमी साहित्य से समानरूपेण प्रेरणा प्राप्त हुई है । परन्तु बिरहा-गायको, चारण-भाटो, लावनीकारो तथा कीर्तनकारो-द्वारा अलिखित साहित्य की रचना, वाचन तथा पठन-पाठन की परम्परा अभी तक अक्षुण्ण है ।

अधिकाश सभ्यताओ की भाति भारत में भी लेखन-कला से पूर्व साहित्य-सृष्टि होती रही । वेदो को श्रुति-ग्रन्थ भी कहते है, जिसका तात्पर्य यह है कि लेखबद्ध होने से पूर्व कई पीढियो तक मौखिक रूप से उनका पठन-पाठन होता रहा । चारो वेद, जिनमे आरण्यक और उपनिषद् भी सम्मिलित हैं, 'श्रुति' तथा मनु और अन्य धर्म-शास्त्रकारो की सहिताए 'स्मृति' कहलाती है । रामायण और महाभारत तथा पुराण-ग्रन्थो को 'इतिहास' तथा अन्य वाङ्मय को 'काव्य' कहा गया है ।

भारतीय साहित्य मे वाल्मीकीय 'रामायण' और कृष्णद्वैपायन व्यास-कृत 'महाभारत' तथा 'भागवत' महापुराण का न केवल सस्कृत, प्रत्युत् समस्त भाषाओ पर प्रभूत प्रभाव पडा है । परन्तु महात्मा बुद्ध के आविर्भाव तक सस्कृत-भाषा को शास्त्रीय भाषा का स्थान मिल चुका था तथा वह सुशिक्षित-वर्ग की भाषा बन चुकी थी, जनसाधारण की भाषा पाली और प्राकृत थी । महात्मा बुद्ध तथा महावीर जनता की स्थानीय भाषाओ में बोलते और उपदेश देते थे । त्रिपिटक तथा बौद्ध-धर्म के जातक-ग्रन्थ पाली मे ही हैं । परन्तु आगे चल कर सस्कृत पुन' साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी तथा नागार्जुन और अश्वघोष ने सस्कृत मे साहित्य-रचना की ।

भास, कालिदास, भवभूति, भारवि, हर्ष, बाण तथा दण्डी सस्कृत-साहित्य-क्षितिज के जाज्वल्यमान नक्षत्र सिद्ध हुए । इन सबमे 'अभिज्ञान शाकुन्तल', 'विक्रमोर्वशीय', 'मालविकाग्निमित्र', 'ऋतुसहार', 'रघुवश', 'मेघदूत', तथा 'कुमारसभव' के रचयिता कविकुलगुरु कालिदास का स्थान

अन्यतम हैं। कालिदास के रचना-काल के सम्बन्ध में बडा मतभेद है। अधिकांश विद्वानो का मत है कि कालिदास ने ईसा-पूर्व ५७ तथा पाचवीं शताब्दी के मध्य किसी समय काव्य-रचना की।

संस्कृत-साहित्य मे टीकाकारो, आलकारिको तथा वैयाकरणों को भी बडा सम्मान दिया जाता था। वैयाकरणो मे पाणिनि तथा पतंजलि अग्रगण्य हैं। टीकाकारो में भरत, आनन्दवर्द्धन तथा मम्मट के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

दसवी शताब्दी के आते-आते सस्कृत मे सृजनात्मक साहित्य के महान् युग पर पटाक्षेप हुआ, यद्यपि उसके बाद भी सस्कृत-साहित्य रचा जाता रहा है, जो पृष्ठपेषण-मात्र तथा इतिवृत्तात्मक और चेतनाशून्य-सा है।

दक्षिणी भाषाएं

सृजनात्मक साहित्य की अवनति के साथ ही मातृभाषाओ में साहित्यिक कृतियो का युग आरम्भ होता है। सुदूर दक्षिण मे तमिल-साहित्य बडा प्राचीन है। कुछ ऐसे तमिल-ग्रन्थो के भी उल्लेख मिलते हैं, जिनका रचना-काल ईसा से भी पूर्व माना जाता है, परन्तु ऐसे ग्रन्थो की सख्या अधिक नही है, जो सस्कृत-प्रभाव से अछूते हो। प्राचीनतम उपलब्ध तमिल-साहित्य 'सगम-युग' (पहली से चौथी शताब्दी) का है। सुविख्यात ग्रन्थ 'शिलप्पदिकारम्' मे सम-सामयिक जीवन का बडा ही सजीव चित्रण मिलता है। 'तिरुक्कुरल', जिसको तमिल-वेद के नाम से पुकारा जाता है, ईसा की पाचवी शताब्दी में रचा गया। इसके कुछ काल पश्चात् भक्ति-आन्दोलन चलानेवाले नयनार, अलवार, शैव और वैष्णव सन्तो का आविर्भाव हुआ। कम्बन की 'रामायण' का रचना-काल ईसा की १२-वी शताब्दी है।

तमिल और कन्नड के साहित्य-गगन पर एक लम्बे समय तक जैन-रचनाकार छाए रहे। कन्नड-साहित्य मे काव्यकारो की त्रिमूर्ति—पम्पा, रन्ना तथा पोन्ना—का रचना-काल दसवी शताब्दी है। तमिल और तेलुगु-साहित्यो की तरह, कन्नड-साहित्य को बारहवी शताब्दी में बासवेश्वर-द्वारा संचालित धर्म-सुधारक वीरशैव मत के अनुयायी कवियो ने समृद्ध

किया। कन्नड़-साहित्य में कुमारव्यास, लक्ष्मीसा और सर्वज्ञ के नाम उल्लेखनीय है।

तेलुगु-साहित्य की सर्वप्रथम उल्लेखनीय रचना नण्णैया-कृत 'महाभारत' (बारहवी शताब्दी के आरम्भ मे) है। सोमनाथ तथा नण्णेचोड़ा प्रमुख वीरशैव कवि थे। तिक्कण्णा (तेरहवी शताब्दी), जो नण्णैया के महाभारत को पूर्ण करने के लिए विख्यात है, तेलुगु-काव्य मे महानतम कवि समझे जाते है। तेलुगु-साहित्य का विशेष विकास विजयनगर के रायो के राज्यकाल मे हुआ, जिनकी राजसभाओ मे श्रीनाथ (सन् १३६५-१४४०) को आश्रय प्राप्त था। श्रीनाथ के बहनोई पोतण्णा अपने ग्रन्थ 'भागवत' के लिए सुविख्यात है। स्वय सम्राट् कृष्णदेव राय भी एक प्रसिद्ध साहित्यिक थे। वेमण्णा और तिमण्णा की भी गणना उल्लेखनीय कवियो में की जाती है।

मलयालम-साहित्य द्रविड-साहित्यो मे अल्पवयस्क है और उसमे उपलब्ध प्राचीन साहित्य मे चौदहवी शताब्दी का 'उन्नुनीलि सन्देशम्' उल्लेखनीय है, यद्यपि इससे पूर्व भी पर्याप्त लोक-गीत, आदि विद्यमान थे। आरम्भिक साहित्य-स्रष्टाओ मे पुनम नम्बूतिरि, राम पणिक्कर तथा चेरुशेरी नम्बूतिरि के नाम भी उल्लेखनीय है। मलयालम-साहित्य के अद्वितीय स्रष्टा एलुतच्छन थे, जिन्होने आधुनिक मलयालम का रूप स्थिर किया। एलुतच्छन का रचना-काल १६-१७-वी शताब्दी है। उन्होने 'रामायण' और 'महाभारत' का किलिपाटु-शैली मे अनुवाद किया।

१६-वी शताब्दी के अन्त तथा बीसवी शताब्दी के आरम्भ में इन चारो भाषाओ मे जो पुनर्जागरण हुआ, उसमें तमिल मे सुब्रह्मण्य भारती (मृत्यु सन् १६२४), तेलुगु मे वीरेशलिगम् पतुलु (मृत्यु सन् १६१६), कन्नड मे बी० एम० श्रीकंठैया (मृत्यु सन् १६४४) तथा मलयालम मे वल्लत्तोल (मत्यु सन् १६५७) का विशेष स्थान है।

बंगला

पूर्वी क्षेत्र मे सर्वप्रथम महान् कवि जयदेव हुए, जिन्होने सस्कृत मे 'गीतगोविन्द' की रचना की। गीतगोविन्द से वैष्णव-परम्परा

में नई रचनाओं को प्रेरणा मिली । जयदेव के पश्चात् बंगला में चैतन्य, चंडीदास तथा विद्यापति का स्थान है । चैतन्य एक वैष्णव धर्म-सुधारक थे । कृष्णदास कविराज ने चैतन्य का एक जीवन-चरित लिखा, जो बंगला गद्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है । बंगला की प्रसिद्धतम रामायण की रचना कृत्तिवास (जन्म सन् १३४६) ने की । शौर्य और भक्ति के आख्यानों तथा प्रणय-गीतों का बंगला में प्रमुख स्थान था । १९-वीं शताब्दी के बंगला-पुनर्जागरण-आन्दोलन में बंकिमचन्द्र चटर्जी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा माइकेल मधुसूदनदत्त अग्रगण्य थे । इनके पश्चात् रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जिनका स्थान आधुनिक भारतीय साहित्यकारों में प्रमुखतम है और जिन्हें सन् १९१३ में नोबेल-पुरस्कार से सम्मानित किया गया, तथा महान् उपन्यासकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए । आधुनिक बंगला-साहित्य पर तो रवीन्द्र का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अन्य भारतीय साहित्य पर भी बंगला-साहित्य का प्रभूत प्रभाव पड़ा है ।

असमिया

असमिया में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के शंकरदेव तथा अन्य लेखकों की रचनाओं में भक्तिपरक उत्कृष्ट साहित्य उपलब्ध होता है । असमिया-साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता गद्यात्मक वृतान्त है, जिन्हें 'बुरजी' कहते हैं । इनकी रचना अहोमों के आख्यानों के अनुकरण पर की गई । स्मरण रहे, अहोमों का स्यामवासियों के साथ पारिवारिक सम्बन्ध था और उन्होंने सन् १२२८ में असम को जीता था ।

मराठी

सन्त ज्ञानेश्वर मराठी-साहित्य के सर्वप्रथम महान् रचयिता थे । इनका रचना-काल सन् १२९० के आसपास था । सन्त ज्ञानेश्वर ने भगवद्-गीता की एक टीका भी लिखी । ज्ञानेश्वर के पश्चात् संत कवियों और सुधारकों की एक लम्बी परम्परा है, जिनमें नामदेव (सन् १४२५), एक-नाथ, तुकाराम तथा रामदास (१६-वीं शताब्दी के आरम्भ में) ने बहुत ख्याति अर्जित की । महाराष्ट्र के पोवाडों में मराठा-इतिहास की उपकथाएं वर्णित हैं । आधुनिक मराठी-गद्य की नींव चिपलूणकर, आगरकर, रानाडे

तथा तिलक ने रखी । हरिनारायण आप्टे ने उपन्यास के माध्यम से नई जागृति उत्पन्न की ।

गुजराती

गुजराती-साहित्य के आरम्भिक कवियो मे १५-वी शताब्दी के सन्त नरसी मेहता अग्रगण्य है, जिनका 'वैष्णव जन तो' गीत महात्मा गांधी को बडा प्रिय था । मीराबाई हिन्दी और गुजराती, दोनो मे विश्रुत है । अखो की गणना भी प्रसिद्ध कवियो मे की जाती है । नर्मदाशकर (सन् १८३३-१८८६) तथा गोवर्द्धनराम (सन् १८५५-१६०७) आधुनिक गुजराती के अग्रणी साहित्यकार थे । गुजराती गद्य-साहित्य मे महात्मा गांधी का स्थान अन्यतम है ।

उडिया

उडिया-भाषा का रूप लगभग चौदहवी शताब्दी मे जाकर स्थिर हुआ । अन्य भाषाओ की तरह ही उडिया-साहित्य मे भी साहित्यिक रचना महाकाव्यो से उद्भूत थी । फकीर मोहन सेनापति को आधुनिक उडिया-साहित्य का महारथी कहा गया है ।

पंजाबी

पजाबी-साहित्य का महानतम् ग्रन्थ है, आदिग्रन्थ । गुरु नानक तथा अधिकाश सिख-गुरु प्रसिद्ध साहित्यकार भी थे । गुरुमुखी-लिपि की उद्भावना प्रथम गुरु ने की थी । पजाबी मे वारिस शाह की 'हीरराझा' तथा बुल्हे शाह (१६८०-१७५८) का 'काफिया' प्रणय तथा रहस्यवादी काव्य के अद्वितीय उदाहरण है । भाई वीरसिह (मृत्यु सन् १६५७) पजाबी-साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत कहे जा सकते है ।

उर्दू

उर्दू-भाषा दिल्ली के अतिरिक्त दक्षिण मे भी पल्लवित-पुष्पित हुई । दक्षिण मे गोलकुडा का शासक, मुहम्मद कुली कुतुब शाह (सन् १५८०-१६११) उर्दू का एक प्रतिभाशाली कवि भी था । मुगल-काल मे वली कवि

का स्थान उर्दू-काव्य में सर्वोपरि था। मुगलोत्तर-काल में सर्वोत्तम उर्दू-गद्य की रचना उन लेखकों ने की, जिन्हें 'फोर्ट विलियम के लेखक' कहा जाता है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में रतननाथ सरशार के 'फसाना-ए-आजाद' नामक उपन्यास ने विशेष ख्याति अर्जित की। उर्दू के सर्व-प्रथम आधुनिक साहित्यकारो में हाली तथा मुहम्मद हुसैन आजाद की विशेष गणना की जाती है, परन्तु निस्सन्देह उन सबके सिरमौर थे इकबाल, जिनकी रचनाए सर्वत्र बडी रुचि से पढी जाती हैं। कथाकारों में मुशी प्रेमचन्द का विशेष स्थान है, जो जन-भाषा मे साहित्य-सृजन करते थे।

हिन्दी

साधारणत हिन्दी-साहित्य के इतिहास को तीन प्रमुख कालो में बाटा जाता है—आदिकाल (१४०० ई० से पूर्व), मध्यकाल (१४००-१८०० ई०), तथा आधुनिक काल (सन् १८०० के बाद)।

हिन्दी-साहित्य का आरम्भ कब हुआ, इसके सम्बन्ध में मतैक्य नही है। कुछ इतिहासकारो ने यह तिथि आठवी, दसवी अथवा बारहवी शता-ब्दी निश्चित की है। इस अनिश्चयात्मकता का एक कारण यह है कि हिन्दी के पुराने नमूने स्थानीय अपभ्रशो मे घुले-मिले है और दोनो को अलग करना सरल नही है। तो भी, आदिकालीन साहित्य को दो धाराओ में विभक्त किया गया है—नाथ-साहित्य-धारा तथा चारण-साहित्य-धारा। नाथो का साहित्य नाथ-सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, जिसकी स्थापना गुरु गोरखनाथ ने की थी। सम्भवत इनका आविर्भाव दसवी शताब्दी में हुआ। दूसरी धारा चारण-साहित्य की है। तत्कालीन परिस्थितियो के अनुकूल राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाताओ के शौर्य और पराक्रम का वर्णन अनूठी उक्तियो में करते थे और युद्ध मे अपनी वीरोल्लास-भरी कविताओ से वीरो को उत्साहित किया करते थे। भारतीय इतिहास में यह वह युग था, जब मुसलमानों के आक्रमण उत्तर-पश्चिम की ओर से लगातार होते रहते थे। इसी भू-भाग की जनता की चित्तवृत्ति की छाप उस काल के साहित्य पर भी है। इस युग की प्रतिनिधि-रचना 'पृथ्वीराज रासो' है, जिसके रचयिता चन्दवरदाई (चन्द बलद्दिउ) थे।

मध्यकालीन साहित्य पर प्राचीन संस्कृत-साहित्य तथा साहित्यिक भाषा का प्रभाव है। इस काल के साहित्य के भी दो युग है—भक्तिकाल (१४००-१६०० ई०) तथा रीति अथवा शृंगारकाल (१६००-१८०० ई०)। भगवान् के रूप और गुण के आधार पर भक्ति-काव्य के निर्गुण और सगुण-धारा नाम से दो भेद किए गए। निर्गुण-धारा की भी दो शाखाए है—ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर थे, जो कर्मकाड के विरोधी और धार्मिक एकता के प्रबल पक्षपाती थे। अपनी अनूठी उक्तियो और उलटबासियो से कबीर ने जन-साधारण का हृदय जीत लिया। प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत वे सूफी कवि जाते है, जिन्होने प्रेमगाथाओ के रूप मे उस प्रेम-तत्व का वर्णन किया है, जो ईश्वर के निकट पहुचाता है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप मे मिलता है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि थे, मलिक मुहम्मद जायसी, जिनका 'पद्मावत' ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। इस काल की सगुण-धारा की भी दो शाखाए है—रामभक्ति-शाखा तथा कृष्णभक्ति-शाखा। रामभक्ति मे रामानन्दी सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास थे, जिन्होने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का आधार लेकर अपने 'रामचरितमानस' मे मानव-जीवन की बडी व्यापक समीक्षा की। कृष्णभक्ति-शाखा मे वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत अष्टछापी कवियो मे सर्वश्रेष्ठ थे सूरदास, जिनके वात्सल्य, शृगार, भक्ति और विनय के पद विश्व-साहित्य मे बेजोड है। सूर के पद 'सूरसागर' मे सगृहीत है।

भक्ति-काव्य मे हिन्दी-काव्य प्रौढता को प्राप्त हुआ तथा देश की तत्कालीन शान्ति और सुरक्षापूर्ण परिस्थितियो ने रीति-काव्य को जन्म दिया। रीति-काव्य के अन्तर्गत दो प्रकार के ग्रन्थ है—सलक्षण और अलक्षण। सलक्षण-ग्रन्थो मे काव्य-रचना काव्याग-लक्षण के उदाहरण-रूप हुई है, साथ ही लक्षण भी दिए गए है। अलक्षण-ग्रन्थो मे लक्षण नही है, वरन् लक्षणो का ध्यान रख कर उनके उदाहरण-रूप काव्य की रचना हुई है। इस काल के श्रेष्ठ कवियो मे केशवदास, बिहारी, सेनापति, मतिराम, घनानन्द, भिखारीदास, पद्माकर, आदि उल्लेखनीय हैं। रीति-काल के समकक्ष एक भिन्न धारा भूषण-सदृश कवियो ने चलाई, जिन्होने अपने

आश्रयदाताओ अथवा सुविख्यात ऐतिहासिक व्यक्तियो के जीवन-चरित्र का वीररसपूर्ण वर्णन किया ।

भारत में अग्रेजी शिक्षा और मुद्रण-कला के प्रचार के साथ हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल आरम्भ होता है, जिसमे गद्य-साहित्य का प्रभूत विकास हुआ । इस युग को तीन चरणो में बाटा जाता है । पहला चरण भारतेन्दु के व्यक्तित्व से ओतप्रोत है । भारतेन्दु-युग खडी बोली का विकास-युग है तथा इसमे हिन्दी पत्रकारिता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, निबन्ध, आदि का विकास आरम्भ हुआ । इस काल मे अनेक पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन भी आरम्भ हुआ । हिन्दी-काव्य मे सामाजिक और राजनीतिक विषयो का समावेश पहली बार इसी युग मे किया गया । दूसरे चरण को द्विवेदी-युग के नाम से अभिहित किया गया है । महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खडी बोली को माजा-सवारा । काव्य मे खडी बोली को प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी उन्ही को है । इस युग के लेखको पर पाश्चात्य विचारधाराओ और साहित्य का गहरा प्रभाव पडा । इस युग के प्रतिनिधि कवियो मे मैथिलीशरण गुप्त का नाम उल्लेखनीय है । स्वयं द्विवेदीजी उच्च कोटि के आलोचक थे । इस काल के अन्य आलोचको में मिश्रबन्धु, पद्मसिह शर्मा, कृष्णविहारी मिश्र, आदि प्रमुख है । तृतीय चरण मे रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, आदि का आविर्भाव हुआ । इस युग मे हिन्दी-साहित्य के विकास पर विदेशी साहित्य और विचारधाराओ का प्रभूत प्रभाव पडा । वास्तव में, यह युग एक दृष्टि से विचित्र साहित्यिक युग है । इसका कथा-साहित्य यथार्थवादी, नाटक-साहित्य ऐतिहासिक, आलोचना पुरातनवादी और शास्त्रीय तथा कविता रोमाटिक है । हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्दजी प्रौढता लाए । जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, यशपाल, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन, आदि अन्य प्रमुख कथाकार है । नाटक-क्षेत्र मे प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटको की रचना की । अन्य नाटककारो मे डा० रामकुमार वर्मा, प्रेमी, गोविन्द-वल्लभ पत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', आदि उल्लेखनीय है । समालोचना के क्षेत्र मे रामचन्द्र शुक्ल अद्वितीय थे ।

उनके उत्तराधिकारियो मे हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, आदि उल्लेखनीय है। इधर हिन्दी-रंगमच की परम्परा का भी स्वस्थ विकास हो रहा है तथा रेडियो के माध्यम से साहित्य की अन्य विधाओं को बल मिल रहा है।

पुस्तकालय

राजनीतिक उथल-पुथल के परिणामस्वरूप प्राचीन और मध्ययुगीन भारत के महान् पुस्तकालय नष्ट हो चुके थे। परन्तु प्राच्यवादी अग्रेजों—अर्थात् ऐसे अग्रेज, जो भारतवासियो को प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और सस्कृत, फारसी, अरबी तथा देशी भाषाएं पढ़ाने के पक्ष मे थे—से आधुनिक पुस्तकालयो की स्थापना मे विशेष योग मिला। प्रमुख विश्वविद्यालयो तथा बम्बई और कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटियों मे बडे-बडे पुस्तकालय है, परन्तु भारत का सबसे बडा पुस्तकालय कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी है। एक ससदीय अधिनियम के अन्तर्गत भारत मे प्रकाशित सभी पुस्तको की प्रतिया चार केन्द्रीय पुस्तकालयो को भेजने की व्यवस्था है।

पुस्तक-प्रकाशन

भारत-सरकार ने सन् १९५४ मे साहित्य-अकादेमी की स्थापना की। यह अकादेमी एक स्वतत्र निकाय है और इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य भारतीय भाषाओ की साहित्यिक गतिविधियो में अभिवृद्धि और समन्वय-स्थापना है।

प्राइवेट प्रकाशको तथा विद्वत्-सभाओ के अतिरिक्त, सरकारी सघटन भी लोकप्रिय तथा तकनीकी ग्रन्थो का प्रकाशन करते हैं। साहित्य-अकादेमी अपने प्रकाशनो-द्वारा अन्य भाषा-भाषियो के लिए प्रत्येक भाषा का उत्कृष्ट साहित्य प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। हाल मे ही 'नेशनल बुक ट्रस्ट' नामक एक सस्था भी स्थापित की गई है। अनुमान है कि अप्रैल १९५९ से मार्च १९६० तक भारत में विभिन्न भाषाओ में लगभग २५,००० पुस्तके प्रकाशित हुई। इनमे सबसे अधिक सख्या अग्रेजी की तथा उसके बाद हिन्दी की पुस्तको की थी।

अध्याय ५

संगीत

साहित्य, वास्तुकला, चित्रकला तथा अन्य कला-विधाओं की अपेक्षा भारतीय संगीतकला में परम्परागत रूढ़ियों के प्रति अधिक आग्रह परिलक्षित होता है। यद्यपि आधुनिक लोकप्रिय संगीत पर पाश्चात्य संगीत का प्रभूत प्रभाव पड़ा है, तथापि शास्त्रीय संगीत का स्वरूप यथार्थतः भारतीय ही है तथा उसकी लोकप्रियता मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

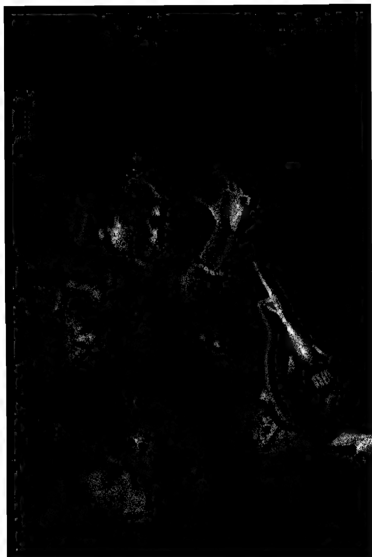
भारतीय संगीत सुनने मे अत्यन्त मधुर है। इसमें 'राग' और 'ताल' का विशेष महत्व है। वास्तव मे, भारतीय संगीत की आत्मा वैयक्तिक है तथा शास्त्रीय संगीत मुख्यतः भक्तिपरक है।

भारतीय संगीत को सात सुरों (सप्तक) मे विभक्त किया जाता है और इन सात सुरों को विभिन्न राग-रागिनियों में बदल दिया जाता है—

षडज	ऋषभ	गान्धार	मध्यम	पंचम	धैवत	निषाद
सा	रे	ग	म	प	ध	नी

'सप्तम' में २२ श्रुतियां होती हैं। सातों सुरों में एक सुर से दूसरे सुर तक ध्वनि को जो अन्तर पूरा करना पड़ता है, उसको श्रुति कहते हैं, बशर्ते कि वह ध्वनि पहचानी जा सके।

'राग' का शाब्दिक अर्थ है, जो रंजन करे—रंजयति इति रागः। इसमें एक अनुक्रम मे केवल कुछ स्वरों से ही काम लिया जाता है। भारतीय संगीतशास्त्र मे सभी स्वरों और उनके संयोग का अपना विशेष सौन्दर्य है। इसलिए, प्रत्येक भाव, चित्तवृत्ति, यहां तक कि समयविशेष के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियां हैं। वास्तव में, राग-रागिनियों की प्रतीकात्मकता इतनी लोकप्रिय हुई कि अनेक चित्रकारों ने एक राग की भिन्न-भिन्न व्याख्या चित्रित की। इस प्रकार के चित्र 'रागमाला'-चित्र



कर्नाटक-संगीत की सुप्रसिद्ध आराधिका
एम० एस० शुभलक्ष्मी 'मीरां' फिल्म के एक दृश्य में

कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त, राग में भी दो भेद किए गए है—मार्ग और देशी। वे राग, जिनका आविष्कार देवी-देवताओ ने किया, 'मार्ग' तथा जो राग व्यावहारिक नियमो के आधार पर विशेषज्ञो ने बनाए, वे 'देशी' कहलाते हैं। इसी प्रकार, जो राग दोपहर के १२ बजे से रात के १२ बजे तक गाए जाते है, वे पूर्व-राग तथा जो रात के १२ बजे से दोपहर के १२ बजे तक गाए जाते हैं, उनको उत्तर-राग कहा जाता है। वे राग, जो संधि-काल मे गाए जाते है, सन्धि-प्रकाश कहलाते हैं।

शास्त्रीय सगीत की दो मुख्य पद्धतिया है : हिन्दुस्तानी पद्धति तथा कर्नाटक-पद्धति। दोनो मे अन्तर इतना सैद्धातिक नही है, जितना कि व्यावहारिक। दोनो पद्धतियो के उपजीव्य ग्रन्थ समान ही हैं, और इनमें भरत का 'नाट्यशास्त्र' तथा सारगदेव का 'संगीत-रत्नाकर' विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनो पद्धतियो ने प्रभूत मात्रा मे अन्य प्रभावो को आत्मसात् किया है तथा लोकधुनो को भी ये निरन्तर ग्रहण करती रही है। इनमे से कइयो को इन्होने राग-रागिनियो के पद पर भी प्रतिष्ठित किया है। इसके अतिरिक्त, दोनों पद्धतिया एक-दूसरी से भी प्रभावित हुई हैं। हिन्दुस्तानी पद्धति समस्त उत्तर और पूर्व-भारत तथा दूसरी दक्षिण-भारत मे प्रचलित है और उस पर फारसी प्रभाव अधिक है।

इस समय लगभग २५० राग-रागिनिया उत्तर-भारत मे तथा कुछ दक्षिण मे प्रचलित हैं। सगीत-रचनाओ में अधिक महत्वपूर्ण ये है : उत्तर में ध्रुपद अथवा ध्रुवपद, धमार, खयाल, ठुमरी, टप्पा, दादरा और गज़ल तथा दक्षिण मे वर्णम्, कृति, रागमालिका, यावाली पद्य तथा श्लोकम्। गायक को किसी राग-रागिनी को विस्तार देने तथा उसकी सूक्ष्म भावनाओ को अभिव्यजित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इस अलाप अथवा अलापना के पश्चात्, गायक बोलो को स्वर देता है। वह यदि चाहे, तो कुछ बोलो को स्वरो की सहायता से विलम्बित भी कर सकता है। इस प्रकार, समय की बदिश गायक पर नही होती और एक गीत पुनः ठीक वैसे ही नही गाया जा सकता।

'ताल' गीत की लय का आवर्तन है। यह आदि से अन्त तक तबले पर बजा कर व्यक्त किया जाता है। ताल सरल अथवा मिश्रित भी हो सकते

है । जब गायक गीत के बोलो का सधान करता है, तब तबलची अथवा मृदंगवादक इस बीच तबले पर थाप देकर उन बोलो को व्यक्त करता है ।

वाद्ययंत्र

उत्तर-भारत में गायक के साथ आम तौर पर सारगिया तथा दक्षिण मे बेलावादक तथा अनिवार्यत. तबलची अथवा मृदगवादक रहता है । थाप देकर बजाए जानेवाले भारतीय यत्रो की अनेक किस्मे है, जिनमे से तबला, मृदग, पखावज, चन्दई तथा ढोलक का आम तौर पर प्रयोग किया जाता है ।

किन्तु भारत का सर्वप्रसिद्ध वाद्ययत्र है वीणा, जिसका गुणगान रामायण, महाभारत तथा अन्य पौराणिक साहित्य मे भी उपलब्ध है । वीणा को सरस्वती की सहचरी कहा गया है । तारवाले अन्य वाद्ययंत्रो



वीणा

मे सितार (जिसका सम्भवत चौदहवी शताब्दी में अमीर खुसरो न आविष्कार किया था), सरोद, तम्बूरा तथा दक्षिण-भारत का गोट्टु-वाद्यम् उल्लेखनीय है । दक्षिण मे यूरोपीय वायलिन का भी पर्याप्त प्रचार है ।

फूक कर बजानेवाले यत्रो मे बासुरी या वंशी अत्यधिक लोकप्रिय है। यह श्रीकृष्ण की सतत सहचरी थी । विवाह-पर्वो तथा मगल उत्सवो में दक्षिण मे नादस्वरम् तथा उत्तर में शहनाई बजाई जाती है । इसके अतिरिक्त, दक्षिण में रथ-यात्राओ के साथ नागस्वरम् का होना अनिवार्य है । लोक-सगीत तथा आदिम जातीय सगीत में अनेक प्रकार के शृंगी बाजे तथा तुरहियो का प्रयोग किया जाता है । सैनिक तथा पुलिस



सुप्रख्यात शहनाई-वादक बिस्मिल्ला खा

सगीत-टुकडिया मे सामान्यत पश्चिमी ढग के वाद्ययत्र ही बजाए जाते है। उत्तरी पद्धति के सगीतज्ञो मे अमीर खुसरो, स्वामी हरिदास तानसेन, बैजू बावरा सदारग, अदारग तथा मुहम्मदशाह रगीला का विशेष स्थान है। दक्षिणी सगीतज्ञो मे पुरन्दरदास, मुत्तुस्वामी दीक्षितार स्वाति तिरुनल अन्नमाचार्य तथा क्षेत्रज्ञ ने विशेष ख्याति अर्जित की है।

भारतीय सगीत के इतिहास तथा वास्तुकला से प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत मे वाद्यवृन्दो का प्रचार था, किन्तु पाश्चात्य पद्धति पर बजाया जानेवाला 'आर्केस्ट्रा' भारतीय सगीत का अग नही है। आकाशवाणी ने वाद्यवृन्द के क्षेत्र मे बडे सफल प्रयोग किए है तथा दिल्ली मे आकाशवाणी का वाद्यवृन्द सम्भवत हमारा सर्वप्रथम राष्ट्रीय वाद्य-वृन्द है।

सगीत हमारे मन्दिरो तथा राजप्रासादो मे पल्लवित-पुष्पित हुआ। परन्तु राजा-महाराजाओ तथा दरबारो की समाप्ति के बाद अब इसे

सर्वसाधारण से सरक्षण मिल रहा है। केन्द्र तथा राज्य-सरकारो ने भी संगीत की अभिवृद्धि तथा इसके प्रति सर्वसाधारण मे रुचि पैदा करने के लिए बडे स्तुत्य प्रयत्न किए हैं। इस प्रयोजन मे भारत मे एक सगीत-नाटक-अकादेमी की भी स्थापना की गई है, जिसकी सिफारिशो पर राष्ट्रपति महोदय प्रतिवर्ष विख्यात सगीतज्ञो को सम्मानित करते है। रेडियो के माध्यम से भी अनेक सगीतज्ञो को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है। अब तो नगर-नगर और गाव-गाव मे सगीत-सभाए स्थापित हो रही है। यह भी हर्ष का विषय है कि शिक्षा के एक अभिन्न अग के रूप मे शास्त्रीय सगीत का अध्ययन करनेवाले युवको-युवतियो की सख्या उत्तरोत्तर बढ रही है।

अध्याय ६

नृत्य

नृत्य मानवीय संवेदनाओ की अभिव्यक्ति का अत्यन्त सूक्ष्म और सर्वाधिक आकर्षक उपादान है। नृत्य मे आन्तरिक मनोभावो को उद्दीप्त करने की दिव्य शक्ति है। नर्तक नृत्य-द्वारा इन भावो को साकार बनाता है। इसीलिए नृत्य-कला मे रस और भाव का विशिष्ट स्थान है।

भारतीय नृत्यो मे जितनी विविधता तथा रजन और भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्य है उतनी विश्व के बहुत कम देशो के नृत्यो मे मिलेगी। आदि-वासी-नृत्यो लोक-नृत्यो तथा शास्त्रीय नृत्यो की दृष्टि से भारत अत्यन्त समृद्ध देश है तथा भारतीय नृत्य-कला अत्यन्त प्राचीन और सर्वगुण-सम्पन्न है। हमारी नृत्य-कला से आसपास के देशो—यथा, श्रीलका, हिन्देशिया (विशेषकर बाली और सुमात्रा), स्याम तथा जापान—की नानाविध कलाए प्रभावित हुई है। अपने देश मे भी, नृत्य-कला को मात्र सामाजिक ससग के एक माध्यम-रूप मे ही नही देखा जाता—हमारे देश मे उसका महत्व कलाभिव्यक्ति के एक माध्यम से कही अधिक है। वस्तुत वह तो आत्म-साक्षात्कार की एक पद्धति है। कहते है, त्रिपुर राक्षस का वध करने पर प्रसन्न होकर शिव ने नर्तन किया था। तभी से नृत्य की उत्पत्ति हुई। यह भी कहा जाता है कि शिव के 'ताडव' तथा पार्वती के 'लास्य' को उनके समस्त अनुचरो ने सीखा, तो गणेश ने 'ताडव' से 'ता' तथा 'लास्य' से 'ल' लेकर 'ताल' की रचना की।

शास्त्रीय नृत्य

सर्वत्र नृत्यकला मे अनेक कलाओ का समाहार है तथा उसमे अभिनय, गीत, सगीत तथा ताल-लय समाविष्ट है। भारत मे तो सौन्दर्य-शास्त्र मे नृत्य, सगीत तथा नाट्य को अविभेद्य ही माना गया है। इन तीनो कलाओ का आधार वही सिद्धात है, जिनकी विवेचना सर्वप्रथम भरत के

नाट्य-शास्त्र मे की गई है। भारत में शास्त्रीय नृत्य चार प्रकार के हैं . उत्तर-भारत का 'कत्थक', दक्षिण का 'कथकलि' और 'भरतनाट्यम्' तथा असम का 'मणिपुरी'। कुछ अन्य शैलियो मे आंध्र का 'कुचिपुडि', उडीसा का 'ओडीसी' तथा केरल का 'मोहिनी आत्तम' उल्लेखनीय है। कर्नाटक का 'यक्षगान' लोक-नृत्य-नाट्य का ही एक स्वरूप है।

शास्त्रीय नृत्यो की अनेक विशेषताए एक-दूसरे मे न्यूनाधिक मात्रा मे देखने को मिलती है। इन सबमे भारतीय सगीत की ही भाति, 'ताल' का प्राधान्य है। पद-सचालन के साथ-साथ मुद्रा-सचालन तथा भाव-भगिमा का सयोग रहता है। भरतनाट्यम् तथा कथकलि मे सांकेतिक भाषा का प्रचुर प्रयोग किया जाता है। इससे मुद्राओ-द्वारा किसी भी परम्परागत मनोभाव की अभिव्यजना की जा सकती है।

भरतनाट्यम्

शास्त्रीय नृत्यो मे भरतनाट्यम् सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कारण, इसके पीछे धार्मिक परम्परा है तथा इसकी तकनीक बडी दुर्बोध तथा शैली श्रमसाध्य है। भरतनाट्यम् की जन्मभूमि तजावुर (तजौर) है। वास्तव मे, पहले-पहल यह नृत्य मन्दिरो मे पूजा-आराधना के रूप मे देवदासिया किया करती थी। इसके अतिरिक्त, राजसभाओ तथा सामाजिक उत्सव-पर्वो पर भी इसका आयोजन किया जाता था। देवदासी-प्रथा के अन्त के साथ ही भरतनाट्यम् में भी ह्रास दृष्टिगोचर होने लगा, पर बडे हर्ष का विषय है कि अब इस शास्त्रीय नृत्य का पुनरुत्थान हो रहा है।

भरतनाट्यम की एक मुद्रा



भरतनाट्यम् में भाव, राग और ताल, ये तीनो प्रमुख है। साधारणत भरतनाट्यम् मे मच-नृत्यो के विभिन्न गीत होते है जिनमें से कुछ य है अलारिपु वणम यतोस्वरम्, तिल्लाना तथा पद्म । ये सब नृत्य तथा अभिनय के अग है।



कथकलि

कथकलि

कथकलि हमारी पौराणिक --विशेषत रामायण और महाभारत मे वर्णित--महा-कथाओ को मच पर उतार लाने का सफल साधन है। यह मुद्राओ-द्वारा रस वर्षण का एक अद्भुत स्रोत है। इसमे नृत्य के साथ-साथ अभिनय का भी विशेष महत्व है। यह कथात्मक नृत्य है तथा साधारणत खुले मे रात्रिपर्यन्त चलता है। इसके कथानक साधारणत हिन्दू-पुराण-गाथाओ मे स लिए जाते है, जिनके पात्र अतिमानवीय एव अलौकिक हाते है। समस्त उपकरणो मे—अभिनय की वस्तुओ से लकर प्रकाश-व्यवस्था और बाह्य यत्रो तक मे—लोक-जीवन की गहरी छाप रहती है जिससे एक ऐसे विशिष्ट वातावरण की सृष्टि होती है जो दर्शक का सहज ही मत्रमुग्ध कर देता है। मजीरो और कास्यघनो की आह्लाद-पूर्ण ध्वनि तथा झाझ और मृदग की ओजपूर्ण गूज के साथ नृत्य प्रारम्भ होता है। यवनिका के पीछे नर्तक के रगमच पर प्रवेश के साथ ही नान्दी या मगलाचरण होता है। तत्पश्चात् एक और गीतकार छदो मे घटनाओ का सुमधुर वर्णन करता है और नर्तकगण अपने मूक अभिनय-द्वारा कथा को सजीव करते है। नर्तकगण भाव अनुभाव, सात्विक भाव सचारी भाव—सबका प्रदर्शन अग-भगिमाओ तथा मुख-विलास-द्वारा करते है।

यह पुरुष नृत्य है तथा स्त्री पात्रो का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। अतएव इसमें लास्य की कोमलता की अपेक्षा ताडव की कठोरता ही अधिक होती है।

कत्थक

परम्परागत कत्थक-नृत्य का उद्भव राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश के भक्तिपरक नृत्यो से हुआ। कत्थक आरम्भ में मन्दिरो मे आराधना का एक अग था। परन्तु मुस्लिम-आक्रमणो से इसकी अवनति हुई। बाद मे मुगल-शासको ने सशोधित रूप में इसे पुनर्जीवित किया। मुगल-दरबारो के आरामतलब और आमोद-प्रमोद के वातावरण का कत्थक पर बडा प्रभाव पडा तथा मन्दिरो से इसका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। फलत इसने एक लौकिक कला का रूप धारण किया।

मणिपुरी

मणिपुरी का जन्मस्थान पूर्व-भारत है। यह प्रकृति उपासको का नृत्य है। इसमे प्रकृति के परिवर्तनशील रूपो, ऋतुओ, वसन्त-समीर, शीतकालीन कोहरे, सूर्य तथा वर्षा का विशद चित्रण किया जाता है। वास्तव मे, इसका उद्भव एक लोककला के रूप मे हुआ, परन्तु समय बीतने के साथ-साथ इसकी शैली जटिलतर होती गई।

मणिपुरी नृत्य नाना प्रकार के है। इनम पुरुष-स्त्री, दोनो भाग लेते हैं। परन्तु सबसे प्रसिद्ध नृत्य रास है, जिसमे केवल स्त्रिया ही भाग लेती हैं। रास के अन्तर्गत अभिनय, गायन तथा नृत्य, तीनो का समावेश रहता है। इस नृत्य मे राधा और गोपियो के साथ कृष्ण की स्वच्छन्द केलि-क्रीडाओ का प्रदर्शन किया जाता है।

नई उद्भावनाए

भारतीय नृत्य के क्षेत्र मे मच-नृत्य (बैले) की उद्भावना आधुनिक है। देशी नृत्यो और कठपुतली का नाच-जैसी लोककलाओ के अध्ययन के पश्चात् नए मच-नृत्यो की रचना की गई है। इनमें उदयशकर



उदयशंकर और उनकी नृत्य-मंडली

की 'जीवन की लय' और 'बुद्ध' तथा लिटिल बैले-कृत 'पचतत्र' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कलाक्षेत्र' ने त्यागराज-कृत कुछ नाटकों को मच पर अभिनीत किया है। भारतीय मच-नृत्य से शास्त्रीय और लोक-नृत्यों, दोनों में ही काव्यमयता, कमनीयता और चित्रमयता आई है तथा आधुनिकतम मच-सज्जा में सश्लेषण का आविर्भाव हुआ है। इन्होंने देश-विदेश में प्रभूत ख्याति अर्जित की है।

विभिन्न शैलियों तथा उनके आधुनिक रूपों का प्रशिक्षण देने के लिए देश में अनेक अकादेमिया तथा सस्थान हैं। इस प्रकार, भारत में नृत्य-कला की पुन अभिवृद्धि होने लगी है। नृत्य-कला के क्षेत्र में सगीत-नाटक-अकादेमी ने बडा स्तुत्य कार्य किया है। इसके अतिरिक्त, सरकार भी प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को छात्रवृत्तिया, आदि देकर इस विशिष्ट कला की अभिवृद्धि में यथेष्ट योग दे रही है।

लोकनृत्य तथा आदिम जातीय नृत्य

कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा सौराष्ट्र से मणिपुर तक, भारत का ग्रामीण जीवन नैसर्गिक आह्लाद से स्पन्दित है और इसकी अभिव्यक्ति लोकनृत्यो मे होती है। गावो मे फसल पकने एव त्योहारो, आदि पर नृत्यो का आयोजन होता है तथा ईश-वन्दना के नृत्यो, वर्षा के लिए नृत्यो, खेतो और घर मे श्रम-परिहारक नृत्यो मे ग्रामीण स्त्री-पुरुष आनन्दविभोर होकर नाचते-गाते हैं। विशेषकर दशहरा दिवाली, होली और सक्राति के अवसरो पर ग्रामीण जनता नाच-गान का आयोजन करती है।

प्रत्येक प्रदेश के अपने विशिष्ट नृत्य है। राजस्थान का झूमर, गुजरात का गरबा, पजाब का भागडा और गिद्दा, तमिलनाड और कर्नाटक का कोलात्तम् और बगाल का कीर्तन-नृत्य विशेष उल्लेखनीय है।

असम बिहार, उडीसा तथा मध्यप्रदेश मे नाना प्रकार के आदिम जातीय नृत्य है। अधिकाश आदिम जातियो के जीवन मे नृत्य एक धार्मिक कर्म-सा है। असम के नागा-नृत्य वेशभूषा और अलकारो की मनोहारी छटा के लिए दर्शनीय है। आदिम जातियो के कुछ प्रसिद्ध नृत्यो मे बिहार और उडीसा के सथालो के छो नृत्य, गोडो के कर्मा नृत्य तथा बजारो और लम्बानियो के नृत्य विशेष उल्लेखनीय है।

अध्याय ७

रंगमंच

भारत व्यावसायिक तथा साहित्यिक रगमच के अलावा, लोक-नाट्यो की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध देश है। वर्ष-पर्यन्त देश के कोने-कोने मे खुले नाटक, आदि अभिनीत होते देखे जा सकते है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट परम्पराए है। इस सम्बन्ध मे बगाल की यात्रा, उत्तरप्रदेश की नौटकी, महाराष्ट्र का तमाशा, आध्रप्रदेश का विधिनाटकम्, मैसूर का वयलाटा तथा केरल का ओट्टन तुलल विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त, कई प्रकार के कठपुतली के नाच तथा पर्दे पर परछाई दिखा कर खेले जानेवाले नाटक भी है।

भारत की साहित्यिक रगमच की परम्परा लगभग दो हजार वर्ष पुरानी है। मन्दिरो तथा राजप्रासादो मे अभिनीत किए जानेवाले शास्त्रीय नाटको मे अभिनय, सगीत तथा नृत्य, इन तीनो का बडा मनोहर सयोग रहता था। प्राचीन नाटक कुछ रूढियो और प्रथाओ की लक्ष्मण-रेखा मे ही रचे एव अभिनीत किए जाते थे। उदाहरण के लिए, दु खान्त नाटको का पूर्ण निषेध है, यद्यपि भास-जैसे एक प्राचीन नाटककार ने रगमच पर मृत्यु दिखाई है। कथावस्तु का चयन विभिन्न क्षेत्रो से किया जाता था तथा सम्बन्ध-निर्वाह मे भी काफी वैविध्य परिलक्षित होता है। प्रहसन, व्यग्य, भावना-प्रधान और प्रेम-प्रधान नाटक लिखे तथा अभिनीत किए जाते थे। अभिनय-सामग्री प्रतीक रूप मे रहती थी तथा दृश्यावली का आयोजन करने की परम्परा न होने से अभिनेतागण अपनी भाव-भगिमाओ-द्वारा ही वास्तविक स्थिति का ज्ञान करवाते थे। प्राचीन भारतीय रगमच का विन्यास बडा जटिल था। रगशाला का निर्माण और अलकरण परम्परागत वास्तुकला के सिद्धातो के अनुसार बडी सावधानी से किया जाता था। मध्यम आकार की रगशाला मे, भरत के अनुसार, लगभग ४०० दर्शक बैठ कर नाटक देख सकते थे। कुछ रगमचो के दो तल्ले होते

थे—ऊपरी तल्ले का प्रयोग सुरलोक के दृश्य प्रस्तुत करने के लिए तथा निचले तल्ले का प्रयोग सांसारिक दृश्यों को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता था। मुखावरणों (मास्क) का प्रयोग नहीं होता था तथा भावों की अति सूक्ष्म प्रतिक्रिया का प्रदर्शन मौखिक भावों, मुद्राओं तथा वाणी-द्वारा किया जाता था। यवनिका का दक्षता से प्रयोग करके उपयुक्त प्रभाव की सृष्टि की जाती थी। संस्कृत-साहित्य के कुछ महान् नाटकों में कालिदास-कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल', शूद्रक-रचित 'मृच्छकटिक' तथा विशाखदत्त-विरचित 'मुद्राराक्षस' की गणना की जाती है।

उत्तरकालीन हिन्दू-राजवंशों के अवसान और उत्तर-भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों के फलस्वरूप, उत्तर-भारत में नाटक-परम्परा लगभग समाप्त ही हो गई। परन्तु दक्षिण-भारत तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में यह पूर्ववत् फलती-फूलती रही और वहां यह आज भी जीवित है। उत्तर में ग्रामीण मंडलियों-द्वारा अभिनीत किए जानेवाले नाटक बड़े लोकप्रिय हुए। संस्कृत-नाटकों का अध्ययन-अध्यापन शिक्षालयों में जारी रहा, किन्तु यदा-कदा ही उनको अभिनीत किया जाता था। ग्रामीण मंडलियों-द्वारा अभिनीत किए जानेवाले नाटकों में संस्कृत-नाटकों-जैसे ठोस रचना-शिल्प और चरित्र-निर्वाह के स्थान पर ऊल-जलूल तरीके से घटनाओं को जोड़-तोड़ कर हास्यास्पद प्रसंगों में प्रस्तुत किया जाता था। इनकी कथावस्तु पौराणिक होती थी और शौकिया मंडलियां अथवा घुमक्कड़ व्यवसायी इनका यत्र-तत्र प्रदर्शन करते थे। इन्हें खुले में अभिनीत किया जाता था तथा नाटक आधी रात को आरम्भ होकर प्रभात-वेला में समाप्त होता था। यह मध्यकालीन परम्परा आज भी जीवित है और जनता में महाभारत-रामायण के चरित्रों और घटनाओं तथा संगीत और गीत के प्रति विशेष अनुराग पाया जाता है।

भक्ति-आन्दोलन तथा जयदेव के 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर महापुरुषों की जीवनियां तथा रामायण-महाभारत के प्रसंगों को अभिनीत करने की परम्परा चली। बंगाल के श्रीचैतन्य महाप्रभु अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेता थे। असम में शंकरदेव (१६वीं शताब्दी) ने नाटक-

साहित्य तथा रंगमंच-सज्जा-सम्बन्धी बड़ा उत्कृष्ट साहित्य तैयार किया।

आधुनिक युग

१९-वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय रंगमंच पर यूरोपीय प्रभाव पड़ने लगा। कलकत्ता इस मामले में सबसे आगे था, जहां शेक्स-पीयर के नाटक अभिनीत होने लगे। कलकत्ते में रवीन्द्र बाबू के पितामह द्वारिकानाथ ठाकुर की दानशीलता से प्रथम अंग्रेजी रंगमंच की स्थापना सम्भव हुई। मधुसूदनदत्त तथा ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे नाटककारों ने स्वच्छन्दता से ग्रीक, अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी साहित्य का रूपान्तर किया, जिसके परिणामस्वरूप बंगला-रंगमंच ने पाश्चात्य प्रभाव को आत्मसात् किया। सन् १८७२ में गिरीशचन्द्र घोष ने एक राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की। यह तथा कुछ ऐसी ही अन्य सोसाइटियां भारतीय और अंग्रेजी के पौराणिक साहित्य पर आधारित नाटकों के अलावा ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक भी अभिनीत करने लगीं। तत्पश्चात् बंगला-रंगमंच



'रामलीला' नृत्य-नाटक का एक दृश्य

पर रवीन्द्र बाबू तथा द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको की धूम मची। उन्ही दिनो पारसी कम्पनियो ने आधुनिक गुजराती तथा उर्दू-रंगमचो की आधारशिला रखी।

यद्यपि हिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे 'नौटकी' तथा 'राम' काफी लोकप्रिय थे, तथापि हिन्दी का अपना कोई रगमच नही था। इसका प्रमुख कारण यही बताया जा सकता है कि मुगलो ने अन्य कला-रूपो को तो प्रश्रय दिया, किन्तु कतिपय धार्मिक कारणो से वे नाटको के प्रति विरक्त ही रहे।

हिन्दी मे आधुनिक नाटक-आन्दोलन का विकास १९-वी शताब्दी के अन्तिम दशको मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आविर्भाव के साथ आरम्भ होता है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'भारत-दुर्दशा' नामक उनके उत्तम नाटक आज भी उतने ही लोकप्रिय है। सन् १९०० और १९२५ के मध्य हिन्दी-नाटको के क्षेत्र मे आगा हश्र कश्मीरी, पंडित राधेश्याम पाठक, नारायण प्रसाद 'बेताब', तुलसी दत्त 'शैदा' तथा हरिकृष्ण जौहर की धूम मची रही। इनके अधिकाश नाटक पारसी रगमच की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रख कर ही लिखे गए थे। बाद मे जयशकर 'प्रसाद' हिन्दी-साहित्याकाश मे अवतरित हुए तथा उन्होने कुछ उच्च कोटि के नाटको की रचना की। आधुनिक युग में कई नए-पुराने नाटककार इस क्षेत्र को सम्पन्न बनाने की दिशा मे प्रयत्नशील है।

आधुनिक मराठी-रगमंच अपने समर्थ यथार्थवाद तथा सुधारवादी प्रवृत्तियो के लिए विश्रुत है। मराठी नाटको के क्षेत्र मे किर्लोस्कर, देवल, खाडिलकर, मामा वरेरकर, गदकरी तथा अत्रे उल्लेखनीय है।

नाटक-साहित्य मे उत्थानवादी प्रवृत्ति के जनको मे गुजराती मे रणछोडभाई और नानालाल कवि, तेलुगु मे वीरेशलिंगम्, अप्पा राव और राघवाचार, कन्नड़ मे सन्तकवि वरदाचार और कैलाशम्, असमिया मे लक्ष्मीनाथ बरुआ, मलयालम में केरल वर्मा और सी० वी० रमण पिल्लै, उडिया मे रामशकर राय और भिखारीचरण पट्टनायक; तथा तमिल मे मुदलियार अग्रगण्य है।

पिछले तीस-चालीस वर्षों मे लोकप्रिय मनोरजन के एक मुख्य साधन के रूप मे सिनेमा ने रंगमच को पीछे ढकेल दिया है, यद्यपि शौकिया

नाटक-मडलिया आज भी नाटक-क्षेत्र मे योगदान कर रही है। परन्तु साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि केवल वही रगमच सफल हो सकता है, जो व्यवसायी हो। आजकल केवल कलकत्ता ही ऐसी महानगरी है, जिसमे स्थायी रगमच है। अन्य नगरो मे यदा-कदा घुमक्कड़ व्यवसायी मडलिया नाटकादि अभिनीत करती रहती है तथा समय-समय पर नाटक-समारोहो आदि का भी आयोजन होता है। बड़े-बड़े नगरो में कालेज तथा बौद्धिक मडलिया प्रसिद्ध विदेशी नाटक अभिनीत करती है। इस समय देश मे इडियन नेशनल थियेटर, इडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन तथा थियेटर सेटर-जैसे सघटन विद्यमान है। नाटक को लोकप्रिय बनाने की दिशा में आकाशवाणी ने भी स्तुत्य कार्य किया है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र मे जो प्रगति परिलक्षित होती है, उसका बहुत-कुछ श्रेय सगीत-नाटक-अकादेमी तथा केन्द्रीय और राज्य-सरकारो को है, जो आर्थिक सहायता प्रदान करके इसे उन्नति के पथ पर अग्रसर कर रही है।

अध्याय ८

प्रसारण

भारत मे प्रसारण (ब्राडकास्टिग) का कार्य केन्द्रीय सूचना और प्रसारण-मन्त्रालय के अधीन है। आकाशवाणी (आल इडिया रेडियो), जो उक्त मन्त्रालय का एक विभाग है, के २८ केन्द्र सब राज्यो मे फैले हुए है और उनमे भारत की सब प्रादेशिक भाषाओ मे कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है।

इन केन्द्रो का वर्गीकरण निम्नलिखित ४ प्रदेशो मे किया गया है

उत्तर दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, पटना, जालधर, जयपुर-अजमेर, शिमला, भोपाल, इन्दौर तथा राची।

पश्चिम बम्बई, नागपुर, अहमदाबाद-बडौदा, पूना तथा राजकोट।

दक्षिण मद्रास, तिरुच्चिरापल्लि, विजयवाडा, त्रिवेन्द्रम, कोजीकोड, हैदराबाद, बगलोर तथा धारवाड।

पूर्व . कलकत्ता, कटक तथा गौहाटी।

इनके अतिरिक्त, रेडियो-कश्मीर के भी दो केन्द्र श्रीनगर तथा जम्मू मे है। ३१ मार्च, १९५९ को देश मे ३२ रेडियो-केन्द्र (रेडियो-मेटर), ५९ ट्रासमीटर तथा २८ रिसीविंग केन्द्र थे।

भारत मे प्रसारण का इतिहास सन् १९२७ से आरम्भ होता है, जब इडियन ब्राडकास्टिग कम्पनी ने बम्बई और कलकत्ते मे दो रेडियो-स्टेशन खोले थे। वित्तीय कठिनाइयो के कारण यह कम्पनी सन् १९३० में ही टूट गई। उसके बाद भारत-सरकार ने प्रसारण का कार्य स्वय सम्भाल लिया।

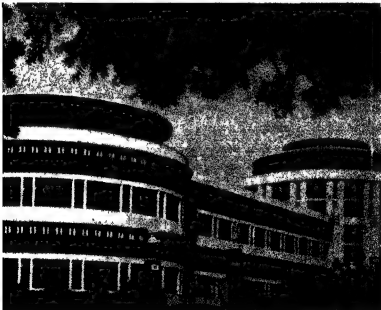
कार्यक्रम-नीति

अपने कार्यक्रमो की योजना बनाते समय आकाशवाणी न केवल श्रोताओ की रुचि, आदि का ध्यान रखती है, बल्कि वह उन महत्वपूर्ण

उद्देश्यो—यथा जनता का ज्ञानवर्द्धन, शिक्षा तथा मनोरजन—का भी पूरा-पूरा खयाल रखती है जो कि इस प्रकार की मस्था-द्वारा पूरे किए जाने चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि आकाशवाणी व्यापारिक विज्ञापनो, आदि का प्रसारण नही करती। भारत-जैसे देश मे जहा बहुत कम लोग लिखना-पढना जानते हैं आकाशवाणी लोकजागृति का एक बडा शक्तिशाली माध्यम सिद्ध हो सकती है। वास्तव मे देश के सास्कृतिक जीवन मे आकाशवाणी ने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आकाशवाणी ने लोक-सगीत के परिरक्षण तथा सगीत और साहित्यिक पुनर्जागरण में योग देने मे भी बडा उपयागी कार्य किया है।

विभिन्न केन्द्रो से दिन मे छ म दस घट तक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। अक्तूबर १९५७ से एक पचरगी कार्यक्रम विविध भारती चलाया

नई दिल्ली के आकाशवाणी-केन्द्र की इमारत



जा रहा है, जिसमे प्रतिदिन छः से आठ घटे तक मनोरजन के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। इसका प्रसारण दो शक्तिशाली ट्रासमीटरो-द्वारा एक साथ बम्बई और मद्रास मे किया जाता है और इसे देश-भर मे सुना जा सकता है।

आकाशवाणी के लगभग आधे कार्यक्रम सगीत के लिए नियत है। आकाशवाणी सामान्य कार्यक्रमो के अतिरिक्त, महिलाओ, बच्चो, ग्रामीण भाइयो, सशस्त्र सेनाओ, औद्योगिक श्रमिको तथा स्कूलो और कालेजो के विद्यार्थियो के लिए भी अनेक कार्यक्रम प्रसारित करती है।

सगीत

आकाशवाणी ने शास्त्रीय सगीत को लोकप्रिय बनाने तथा लोक-सगीत को सुरक्षित रखने की दिशा मे बडा महत्वपूर्ण कार्य किया है। शास्त्रीय सगीत के जाने-माने कलाकारो को आकाशवाणी के केन्द्रो मे सुना जा सकता है। हिन्दुस्तानी और कर्नाटक, शास्त्रीय सगीत की इन दोनो शैलियो का रसास्वादन करवाने की दिशा मे राष्ट्रीय सगीत-कार्यक्रम एक अपूर्व आयोजन है। हर शनिवार की रात को दिल्ली से वाद्यवृन्द (कन्सर्ट) मे प्रमुख कलाकारो को प्रस्तुत किया जाता है और इस कार्यक्रम को शेष सब केन्द्र रिले करते है। इसके अतिरिक्त, आकाशवाणी वार्षिक रेडियो-सगीत-सम्मेलन का भी आयोजन करती है। विभिन्न रेडियो-केन्द्र भी अक्सर आमत्रित श्रोताओ की उपस्थिति मे सगीत-सभाए करते रहते है।

आधुनिक सुगम सगीत का योजनानुसार विकास करना आकाशवाणी की सगीत-नीति की एक अन्य विशेषता है। शास्त्रीय तथा लोकधुनो पर आधारित तथा नए-पुराने काव्य, आदि का उपयोग करके आकाशवाणी का सुगम सगीत-कार्यक्रम अनेक केन्द्रो मे तैयार होता है और वहां से प्रसारित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, रेडियो-केन्द्र स्थान-स्थान पर जाकर लोक-सगीत के रिकार्ड भी भरते है। आकाशवाणी का वाद्यवृन्द भी भारतीय वाद्यवृन्द-सगीत प्रस्तुत करने की दिशा में बडा उपयोगी कार्य कर रहा है।

नाटक-वार्ताए

नाटक के क्षेत्र मे आकाशवाणी बडा महत्वपूर्ण योग दे रही है। नाटको के अखिल भारतीय कार्यक्रम मे किसी एक भाषा के चुने हुए नाटको का सभी प्रादेशिक भाषाओ मे रूपान्तर किया जाता है और एक ही रात सभी केन्द्रो से एक साथ प्रसारित किया जाता है। सगीत-नाटको को प्रोत्साहन देने के लिए एक अखिल भारतीय कार्यक्रम है। सुप्रसिद्ध व्यक्तियो की वार्ताए तथा विचार हर बुधवार का वार्ताओ के अखिल भारतीय कार्यक्रम मे प्रसारित किए जाते है और सब केन्द्र उन्हे रिले करते है। भारत की समस्त प्रादेशिक भाषाओ के सुप्रसिद्ध साहित्यकारो को भाषित कार्यक्रमो मे प्रोड्यूसर बना कर कार्यक्रम प्रस्तुत करने की जो नीति अपनाई गई है, उससे रेडियो-श्रोताओ के लिए उपयुक्त साहित्य के सृजन मे सहायता मिल रही है।

आकाशवाणी ने सन् १९५५ में स्वर्गीय सरदार पटेल की स्मृति मे एक वार्षिक व्याख्यानमाला आरम्भ की थी। इस माला में अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ महानुभावो के भाषण प्रसारित किए जा चुके है। 'लाड-स्मारक व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत बम्बई-केन्द्र मे मराठी सन्त-साहित्य के विभिन्न पहलुओ की विवेचना की जाती है।

रूपको के अखिल भारतीय कार्यक्रम मे देश की बहूद्देश्यीय परियोजनाओ, आदि की गतिविधियो के विवरण प्रसारित किए जाते हैं। पचवर्षीय योजनाओ की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने और उनका प्रचार करने के क्षेत्र मे भी आकाशवाणी बडा उपयोगी कार्य कर रही है।

विदेशो के लिए कार्यक्रम

आकाशवाणी के विदेशी कार्यक्रमो के अन्तर्गत १६ विदेशी भाषाओ मे कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल, गुजराती तथा कोकणी में भी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। देशी कार्यक्रमो के अन्तर्गत आकाशवाणी से आदिम जातीय लोगो के लिए भी कार्यक्रम प्रसारित किए जाने लगे है।

ग्रामीण कार्यक्रम

इन कार्यक्रमो मे वार्ताम्रो, वाद-विवादो, नाटको, वार्तालापो, श्रादि के माध्यम से ग्रामीणो को ग्रामीण जीवन के समस्त पहलुश्रो के बारे मे उपयोगी जानकारी दी जाती है ।

समाचार-कार्यक्रम

आकाशवाणी से प्रतिदिन ७६ समाचार बुलेटिन—४६ देशी कार्यक्रमो मे तथा ३० विदेशी कार्यक्रमो मे—प्रसारित किए जाते है । देशी कार्यक्रमो में अग्रेजी और हिन्दी मे प्रतिदिन चार बार, असमिया, उडिया, उर्दू, कन्नड, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पजाबी, बगला, मराठी और मलयालम मे तीन बार, कश्मीरी और डोगरी मे दो बार, तथा गोरखाली मे एक बार समाचार प्रसारित किए जाते है । सेनाओ के लिए भी हिन्दी मे प्रतिदिन एक बार समाचार प्रसारित किए जाते है । उर्दू, कश्मीरी तथा बगला मे प्रतिदिन समाचार-टिप्पणिया भी प्रसारित की जाती है । इसके अतिरिक्त, विभिन्न केन्द्रो से प्रादेशिक समाचार भी प्रसारित किए जाते है ।

आकाशवाणी के समाचार-प्रसारण-कार्यक्रमो ने सत्यनिष्ठा, यथार्थता तथा पत्रकारिता के उच्च मानदण्डो के लिए काफी ख्याति अर्जित की है । समाचार-दर्शन (न्यूज रील) का कार्यक्रम सन् १६५६ मे आरम्भ किया गया था । यह कार्यक्रम दिल्ली से सप्ताह मे दो बार अग्रेजी मे तथा एक बार हिन्दी मे प्रसारित किया जाता है । इसी प्रकार के कार्यक्रम प्रादेशिक भाषाओ मे भी आरम्भ कर दिए गए है । समाचार-प्रसारण-कार्यक्रम-विभाग राष्ट्रीय पर्वों, मेलो, उत्सवो, सम्मेलनो तथा महत्वपूर्ण खेल-प्रतियोगिताओ, आदि के बारे में आखो-देखा हाल भी प्रसारित करता है । आकाशवाणी ने अन्य देशो मे भी अपने सवाददाता नियुक्त कर रखे है, जो महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ के बारे मे समाचार भेजते है । इस विभाग ने समाचार-वृत्तचित्र तैयार करने का काम भी आरम्भ कर दिया है ।

साहित्यिक चर्चा

भारतीय साहित्य की अभिवृद्धि मे आकाशवाणी जो योग दे रही है, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । वार्ताओ, नाटको तथा

फीचरो के माध्यम से देश के प्रमुख साहित्यकारो को श्रोताम्रो के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। आकाशवाणी हर साल एक 'साहित्य-समारोह' का भी आयोजन करती है, जिसमे प्रमुख लेखक भाग लेते हैं और विभिन्न साहित्यिक समस्याम्रो पर, विशेषकर रेडियो-माध्यम के सदर्भ मे, विचार करते हैं। आकाशवाणी-केन्द्र नाटक-समारोहो तथा कवि-सम्मेलनो का भी आयोजन करते रहते है।

विविध कार्यक्रम

उद्योगो मे काम करनेवाले मजदूरो के लिए भी प्रमुख औद्योगिक नगरो से कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है।

आकाशवाणी ने एक 'कार्यक्रम-विनिमय यूनिट' की स्थापना की है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत के आकाशवाणी-केन्द्रो के बीच तथा विदेशी प्रसारण-सगठनो के बीच, विशेषकर ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, जापान, रूस तथा सयुक्त राष्ट्र-सघ के बीच, रिकार्ड की हुई सामग्री का आदान-प्रदान करने की व्यवस्था है। एक स्वराकन-सेवा (ट्रास्क्रिप्शन सर्विस) भी है, जो रिकार्ड की हुई सामग्री के सग्रहालय की व्यवस्था करती है। इस सग्रहालय मे गाधीजी के प्रार्थना के उपरान्त दिए गए व्याख्यान, आदि सगृहीत हैं।

पत्र-पत्रिकाए

आकाशवाणी-द्वारा निम्नलिखित ७ कार्यक्रम-पत्रिकाए प्रकाशित की जा रही है आकाशवाणी (अग्रेजी), सारग (हिन्दी), आवाज (उर्दू), बेतार जगत (बगला), वानोली (तमिल), वाणी (तेलुगु) तथा नभो-वाणी (गुजराती)। 'आकाशवाणी' साप्ताहिक तथा शेष पत्रिकाए पाक्षिक हैं। इनके अतिरिक्त, विदेशी श्रोताम्रो के लिए अग्रेजी, अरबी, फारसी, पश्तो, चीनी, बर्मी तथा इडोनेशियायी भाषाम्रो में भी कार्यक्रम-पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। अग्रेजी-पत्रिका 'इडिया कालिग' तीन संस्करणो में प्रकाशित की जाती है।

रेडियो-सेट

३० सितम्बर, १९५९ को देश मे कुल १७,२४,०१९ रेडियो-सेट थे तथा १४,९६२ रेडियो-सेट स्कूलो मे लगे हुए थे। इसके अतिरिक्त, मार्च १९६० के अन्त तक विभिन्न राज्य-सरकारो को ५८,००० सामुदायिक रेडियो-सेट दिए गए, जो ग्रामीण क्षेत्रो मे लगाए गए।

कुछ वर्ष पूर्व तक भारत को रेडियो-सेटो के लिए विदेशो पर निर्भर करना पड़ता था। परन्तु अब देश मे रेडियो-सेटो का निर्माण करने के लिए कुछ कारखाने लगा दिए गए है। अनुमान है कि सन् १९५९ मे मई मास तक देश में लगभग २०,००० रेडियो-सेट बने।

टेलीविजन

१५ सितम्बर, १९५९ को नई दिल्ली मे प्रयोगात्मक टेलीविजन का उदघाटन किया गया। अभी हर मंगलवार और शुक्रवार को एक-एक घंटे का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है जिसे दिल्ली मे १२ मील की परिधि मे देखा जा सकता है।

आकाशवाणी का सर्वोपरि अधिकारी एक महानिदेशक है। उसकी सहायता के लिए केन्द्रीय कार्यक्रम-सलाहकार-समिति तथा केन्द्रीय संगीत-सलाहकार बोर्ड है। इसी प्रकार, प्रत्येक रेडियो-केन्द्र मे सामान्य तथा ग्रामीण और शिक्षा-कार्यक्रमो के लिए सलाहकार समितियां विद्यमान है। रेडियो-केन्द्रो पर प्रस्तुत किए जानेवाले संगीतज्ञो के चयन और वर्गीकरण के निमित्त एक 'आडीशन टेस्ट' की प्रणाली भी बना ली गई है।

अध्याय ६

चलचित्र

चलचित्र बनानेवाले प्रमुख देशों में भारत की भी गणना होती है। सन् १६५६ में भारत में विभिन्न भाषाओं की ३१२ फिल्में बनी। इनके अलावा, ५८२ संक्षिप्त फिल्में प्रदर्शनार्थ स्वीकृत की गई।

फिल्म-उद्योग की गणना देश के प्रमुख मध्य पैमाने के उद्योगों में की जाती है तथा इसमें लगभग एक लाख व्यक्ति काम करते हैं। अनुमान है कि फिल्म-उद्योग में ४० करोड़ से भी अधिक की पूंजी लगी हुई है तथा प्रतिवर्ष बननेवाली फिल्मों से लगभग २५ करोड़ रु० की आय होती है। एक भारतीय फिल्म के निर्माण पर औसत रूप से तीन से पांच लाख रु० के बीच लागत आती है और एक सफल फिल्म से लगभग दस लाख रु० की आय होती है। अनुमान है कि सरकार को फिल्म-उद्योग से सेंसर-शुल्क तथा मनोरंजन-कर, आदि के रूप में आसनन १२ करोड़ रु० प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

राजकीय पुरस्कार

कला और शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा शिक्षाप्रद और सांस्कृतिक महत्व की फिल्मों, को प्रतिवर्ष राजकीय पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। यह योजना सन् १६५४ में आरम्भ की गई थी। फीचर फिल्मों, वृत्तचित्रों, तथा बाल-फिल्मों, आदि के लिए अलग से पुरस्कार दिए जाते हैं।

सन् १६५८ से श्रेष्ठ फिल्मों के लिए नकद पुरस्कार भी दिए जा रहे हैं। जो फीचर फिल्म सर्वोत्तम ठहरती है, उसको राष्ट्रपति का स्वर्णपदक तथा नकद २५,००० रु० देकर पुरस्कृत किया जाता है। बालोपयोगी सर्वोत्तम फिल्म को प्रधान मन्त्री का रजत-पदक तथा २५ हजार रु० प्रदान किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त दोनों प्रकार की दूसरे नम्बर की २ श्रेष्ठ फिल्मों को साढ़े बारह-बारह हजार रु० के पुरस्कार प्रदान

किए जाते हैं। वर्ष के सर्वोत्तम वृत्तचित्र को एक स्वर्ण-पदक तथा पाच हजार रु० नकद देकर पुरस्कृत किया जाता है।

राज्य-सरकारे भी श्रेष्ठ फिल्मो को पुरस्कृत करती हैं। कुछ राज्यो मे ऐसी फिल्मो को मनोरजन-कर से मुक्त कर दिया जाता है। फिल्म-जगत् के प्रमुख व्यक्तियो को देश मे विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाता है तथा राष्ट्रपति महोदय उन्हे राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित करते हैं।

फिल्म-विभाग

वृत्तचित्र तथा समाचारचित्र प्रमुख रूप से सूचना और प्रसारण-मन्त्रालय का फिल्म-विभाग ही बनाता है। सन् १९५९ के अन्त तक इस विभाग ने ५८६ समाचारचित्र तैयार किए तथा ४४७ वृत्तचित्र प्रदर्शन के लिए दिए।

अभिनेत्री नूतन एक भावपूर्ण मुद्रा मे



समाचारचित्रो के लिए फिल्म-विभाग ने देश के विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानो पर अपने कैमरामैन नियुक्त कर रखे है। ये कैमरामैन तथा विदेशी सघटन जो सामग्री भेजते है, उनकी सहायता से समाचारचित्र तैयार किए जाते हैं। फिल्म-विभाग ने विदेशी सघटनो के साथ सामग्री का आदान-प्रदान करने की भी व्यवस्था कर रखी है। हर सप्ताह एक समाचारचित्र तैयार किया जाता है। ग्रामीण दर्शको के लिए विशेष रूप से एक त्रैमासिक सस्करण भी तैयार किया जाता है, जिसमे प्रमुख रूप से पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत आर्थिक, औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी प्रगति का चित्रण किया जाता है। इनके अतिरिक्त, विदेशों में भारतीय दूतावासो के उपयोग के लिए भी एक मासिक सस्करण तैयार किया जाता है।

यो तो, अधिकाश वृत्तचित्र फिल्म-विभाग स्वय तैयार करता है, फिर भी अन्य गैर-सरकारी निर्माताओ तथा राज्य-सरकारो-द्वारा तैयार किए गए वृत्तचित्रो के वितरण का काम भी यही विभाग करता है। यह विभाग बालकथा-चित्र भी बनाता है। महात्मा बुद्ध की २,५००-वी जयन्ती के उपलक्ष्य मे स्मारको, चित्रो, आदि पर आधारित महात्मा बुद्ध पर एक पूरी लम्बाई का वृत्तचित्र इस विभाग ने बनाया था। इसके अतिरिक्त, फिल्म-विभाग ने भारत के लोकनृत्यो तथा गणतन्त्र-दिवस पर पूरी लम्बाई की दो अन्य फिल्मे भी बनाई है।

भारत के प्रत्येक सिनेमाघर के लिए अधिकारियो-द्वारा स्वीकृत छोटी फिल्मो का प्रदर्शन करना अनिवार्य है। फिल्म-विभाग बारी-बारी से प्रत्येक सिनेमाघर को एक समाचारचित्र तथा एक वृत्तचित्र उपलब्ध कराता है।

बच्चो के लिए छोटी फिल्मे तथा रेखाचित्रोवाली शिक्षाप्रद फिल्मे बनाने के निमित्त एक 'कार्टून-फिल्म-इकाई' भी स्थापित कर दी गई है।

मई १९५५ मे एक बाल-फिल्म-सस्था की स्थापना की गई, जिसका काम बालोपयोगी फिल्मो का प्रदर्शन करवाना तथा बालोपयोगी फिल्मो का निर्माण करने की दिशा में प्रोत्साहन देना है।

अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार

प्रतिवर्ष भारतीय फिल्मो को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म-समारोहो मे प्रदर्शित किया जाता है तथा अनेक अवसरो पर वे पुरस्कृत भी हुई है। उदाहरण के लिए, सन् १९५९ मे जलसा घर', 'अपुर ससार', 'पथेर पाचाली' (बगला), तथा फिल्म-विभाग-द्वारा निर्मित 'काल आफ दि माउण्टेन्स' तथा 'राधाकृष्ण' नामक दो वृत्तचित्रो को अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए। इससे पूर्व बूट पालिश', भारत-दर्शन', 'स्प्रिग इन कश्मीर' तथा 'सिम्फनी आफ लाइफ' भी पुरस्कृत हो चुकी हैं। 'पथेर पाचाली' तो इतनी लोकप्रिय हुई कि उसे अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारो मे लाद-सा दिया गया।

फिल्मो की जाच

सार्वजनिक प्रदर्शन से पूर्व प्रत्येक फिल्म के लिए प्रमाणपत्र लेना आवश्यक है। भारत मे फिल्मो का प्रमाणित करने के लिए सन् १९५१ मे एक केन्द्रीय फिल्म-जाच-बोर्ड (सेन्सर-बोर्ड) की स्थापना की गई, जिसका मुख्यालय बम्बई मे है। बम्बई मद्रास तथा कलकत्ते मे इसके प्रादेशिक कार्यालय भी है। अपने कार्य मे यह वार्ड प्रमुख नागरिको का योग लेता है। इन प्रमाणपत्रो की दो श्रेणिया हैं जो फिल्मे सर्वत्र तथा सब दर्शको को दिखाई जा सकती है उन्हे 'यू' (यूनिवर्सल) प्रमाणपत्र तथा जो फिल्मे केवल १८ वर्ष की वय से ऊपर के लोगो के देखने-लायक होती है, उन्हे 'ए' (अडल्ट) प्रमाणपत्र दिया जाता है। फिल्मो की जाच करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि फिल्मो स अपराध, व्यभिचार, अभद्रता, अशान्ति, हिसा तथा विधि-विधान को भग करने की प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन न मिले। सन् १९५१ तथा १९५९ के बीच सेन्सर-बोर्ड ने ७,३३९ भारतीय फिल्मो तथा १९ १६० विदेशी फिल्मो को प्रमाणपत्र दिए।

फिल्म-उद्योग के लिए आवश्यक सारी कच्ची फिल्म विदेशो से ही मगाई जाती है। सन् १९५९ मे (अक्तूबर तक) भारत ने २४३.०७ लाख रु० की कच्ची फिल्मो, ३४ ५८ लाख रु० की तैयार फिल्मो, १.४

लाख रु० के स्वर भरनेवाले उपकरणो तथा २१ ७३ लाख रु० के प्रोजेक्शन-उपकरणो का आयात किया। भारत को अपनी फिल्मो से काफी विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है। लगभग ५० देशो मे, विशेषकर पडोसी एशियाई देशो मे हम अपनी फिल्मो का निर्यात करते हैं। सन १९५९ मे (दिसम्बर तक) फिल्मो के निर्यात से भारत ने लगभग १ ५३ ७९,००० रु० की विदेशी मुद्रा कमाई।

अध्याय १०

पत्र-पत्रिकाएं

भारत के पत्र स्वतन्त्र तथा पर्याप्त शक्तिसम्पन्न है। यहा एक दर्जन से भी अधिक भाषाओ मे पत्र प्रकाशित होते है और उनमे समस्त राजनीतिक दलो के विचारो और नीतियो की झलक मिलती है।

भारतीय सविधान के अनुच्छेद १६ (१) के अनुसार, समस्त नागरिको को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है। न्यायालयो ने इस स्वतन्त्रता की व्याख्या मे पत्र-पत्रिकाओ, आदि की स्वतन्त्रता को भी सम्मिलित किया है।

समाचारपत्रो के रजिस्ट्रार के अनुसार, ३१ दिसम्बर, १६५६ को भारत मे कुल ७,६५१ पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हो रही थी, जिनमे ४६१ दैनिक समाचारपत्र, १,८८१ साप्ताहिक, ७०८ पाक्षिक, ३,०७६ मासिक, ६५१ त्रैमासिक (द्वैमासिक तथा अर्द्धवार्षिक-समेत) तथा ४८८ वार्षिक पत्रिकाए थी। सबसे अधिक पत्रिकाए (१,६८५) बम्बई-राज्य से प्रकाशित हुई। इसके बाद क्रमश पश्चिम-बगाल (१,०६३), उत्तर-प्रदेश (६१५), दिल्ली (८४४) तथा मद्रास (७५७) का स्थान था। भाषाओ के अनुसार सबसे अधिक पत्र-पत्रिकाए अग्रेजी मे तथा उसके बाद हिन्दी मे प्रकाशित हुई। इस वर्ष अग्रेजी की १,५५५, असमिया की १४, उडिया की ७८, उर्दू की ६२७, कन्नड की २२३, गुजराती की ५२२, तमिल की ३६१. तेलुगु की २४१, पजाबी की १२७, बगला की ५१०, मराठी की ४०१, मलयालम की १६२, सस्कृत की १२ तथा हिन्दी की १,४३६ पत्रिकाए प्रकाशित हो रही थी। द्विभाषी, बहुभाषी तथा अन्य भाषाओ की क्रमश ७६७, ४६७ तथा ११५ पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हो रही थी।

देश की विशालता, भाषाओ की विविधता, क्रय-शक्ति तथा साक्षरता की कमी—ये कुछ ऐसे कारण है, जो ग्राहक-सख्या अधिक नही बढने देते। भाषाओ के अनुसार सबसे अधिक ग्राहक-सख्या अग्रेज़ी की

पत्र-पत्रिकाओ की, अर्थात् ३९.९७ लाख या कुल ग्राहक-सख्या का २३.२ प्रतिशत, थी। इसके बाद हिन्दी-पत्रो का स्थान था, जिनकी ग्राहक-सख्या ३५ ५३ लाख, अर्थात् कुल ग्राहक-सख्या का २० ६ प्रतिशत, थी। अन्य भाषाओ के पत्रो की स्थिति इस प्रकार थी · तमिल २१ २५ लाख (१२ ३ प्रतिशत), गुजराती, ११ ५९ (६ ७ प्रतिशत), मराठी १० ५४ लाख (६.१ प्रतिशत), उर्दू १०.४७ लाख (६ प्रतिशत), बगला ९.२३ लाख (५ ३ प्रतिशत) तथा मलयालम ८ ०१ लाख (४.७ प्रतिशत)। अन्य भाषाओ की ग्राहक-सख्या कुल ग्राहक-सख्या के ४ प्रतिशत से भी कम थी। परन्तु भारत मे उन देशो के मुकाबले, जिनमे प्रत्येक व्यक्ति समाचारपत्र खरीद कर पढने की स्थिति मे है, एक समाचारपत्र की प्रति कई पाठक पढते है। इस वर्ष पचास हजार से ऊपर की ग्राहक-सख्यावाले ४२ पत्र थे। इनमें से ३ अग्रेजी दैनिको, एक तमिल दैनिक तथा एक अग्रेजी दैनिक के रविवारीय सस्करण की ग्राहक-सख्या एक लाख से भी ऊपर थी।

स्वामित्व

सन् १९५९ मे समाचारपत्रो की (क) १५ शृखलाए (अर्थात् जो विभिन्न केन्द्रो से एक स्वामित्व में एक से अधिक समाचारपत्रो का प्रकाशन करती थी), (ख) १६२ समूह (अर्थात् जो एक ही केन्द्र से एक स्वामित्व मे एक से अधिक समाचारपत्र प्रकाशित करते थे), तथा (ग) विभिन्न केन्द्रो मे एक ही नाम, भाषा तथा प्रकाशन-अवधि-वाले पत्र प्रकाशित करनेवाली एक स्वामित्व की ३० इकाइया थी। इनके नियत्रण मे पत्रो की सख्या क्रमश १०३, ४२४ तथा ८० एव इनकी ग्राहक-सख्या क्रमश २३ २३ लाख, २२ ३५ लाख और १३ ४९ लाख थी।

सन् १९५९ में १,३०२ नए पत्र प्रकाशित होने आरम्भ हुए। अदमान तथा निकोबार द्वीप-समूह से भी सर्वप्रथम पत्र इसी वर्ष छपना आरम्भ हुआ। सबसे अधिक पत्र-पत्रिकाए (२७८) हिन्दी मे प्रकाशित होनी आरम्भ हुई तथा हिन्दी में ही सबसे अधिक (८०) पत्र-पत्रिकाए बन्द भी हुई।

संवाद-समितिया

'प्रेस ट्रस्ट आफ इडिया' भारत की प्रमुख सवाद-समिति है। इसकी स्थिति एक न्यास (ट्रस्ट) की है तथा इस पर समाचारपत्रो का स्वामित्व है। इस सस्था के भारत-स्थित सवाददाता जो समाचार, आदि एकत्र करते है, उनके वितरण के अलावा, इस सस्था ने 'रायटर' (एक विदेशी सवाद-समिति) के साथ उसके द्वारा सग्रहीत विदेशी समाचारपत्रों को भारत मे वितरित करने की भी व्यवस्था कर रखी है। 'यूनाइटेड प्रेस आफ इडिया' नामक २५ वर्ष पुरानी एक अन्य सवाद-समिति अक्तूबर १९५८ मे बन्द हो गई। छोटी सवाद-समितियो मे 'हिन्दुस्तान समाचार' नामक सवाद-समिति प्रमुख है। कुछ भारतीय समाचारपत्रो ने अमेरिकी तथा ब्रिटिश समाचारपत्रों के साथ उन समाचारपत्रो मे से समाचार, लेखादि उद्धृत करके छापने की व्यवस्था कर रखी है। इस वर्ष भारत मे भारतीय तथा विदेशी सवाददाताओ की सख्या १७४ थी।

समाचारपत्रों का इतिहास

भारतीय समाचारपत्रो की अल्प ग्राहक-सख्या को देख कर ही यह अनुमान लगाना गलत होगा कि भारतीय समाचारपत्र प्रभावशाली नही है। भारत के स्वाधीनता-सग्राम मे भारतीय समाचारपत्रो ने बडा महत्व-पूर्ण भाग लिया था। अब भी उनकी शक्ति और प्रभाव मे कोई ह्रास नही हुआ। एक लोकतान्त्रिक देश मे स्वतन्त्र समाचारपत्रो का जो कर्तव्य होना चाहिए, उन्हे भारतीय समाचारपत्र पूरी तरह निभा रहे है।

यद्यपि मुगलो के शासन-काल से शासन-सम्बन्धी मामलो के बारे मे स्वतन्त्र रिपोर्टे, आदि भेजने के लिए प्रत्येक प्रमुख नगर मे 'वाकया-नवीस' अर्थात् सवाददाता नियुक्त किए जाते थे, तथापि आधुनिक अर्थों मे सर्वप्रथम भारतीय समाचारपत्र 'बगाल गजट' था, जो २९ जनवरी, १७८० मे प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक तथा प्रकाशक जेम्स आगस्टिन हिकी नामक एक अग्रेज थे। परन्तु सर्वप्रथम समाचारपत्र के प्रकाशित होने से भी दो सौ साल पूर्व भारत मे छापाखाना विद्यमान था। भारत के रगमच पर ब्रिटिश स्वामित्व के समाचारो की वृद्धि के साथ-साथ भारतीयो

ने भी अंग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषाओं में पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करनी आरम्भ की। आंग्ल-भारतीय समाचारपत्रों की अपेक्षा भारतीयों-द्वारा संचालित समाचारपत्र अनिवार्यतः अधिकाधिक राष्ट्रीय रूप ग्रहण करने लगे। भारत के पुनरुत्थान में जिन महानुभावों ने योग दिया, उनमें से कुछ व्यक्ति समाचारपत्रों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे। राजा राममोहन राय ने सन् १८२१ में बंगला में 'संवाद-कौमुदी' दादाभाई नौरोजी ने सन् १८५१ में 'रास्त-गुफ्तार' तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सन् १८५८ में 'सोम-प्रकाश' का प्रकाशन आरम्भ किया। घोष-बन्धुओं ने सन् १८६८ में 'अमृत बाजार पत्रिका' की स्थापना की। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 'बंगाली' के सम्पादक थे। बाल गंगाधर तिलक के 'केसरी' तथा 'मराठा' नामक दो अपने समाचारपत्र थे। सर फीरोजशाह मेहता ने सन् १९१५ में 'बाम्बे क्रानिकल' प्रकाशित करना आरम्भ किया। अरविन्द घोष, श्रीमती एनी बेसेंट, मदनमोहन मालवीय, लाजपतराय, मौलाना आजाद, चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सी० वाई० चिन्तामणि, टी० प्रकाशम् तथा रामानन्द चाटुर्ज्या इन सब महानुभावों ने अपनी पत्र-पत्रिकाएं निकालीं। इनमें सम्पादक के रूप में सबसे अधिक ख्याति अर्जित की महात्मा गांधी ने, जिन्होंने 'इंडियन ओपीनियन', 'यंग इंडिया', 'हरिजन', 'हरिजनबंधु' तथा 'हरिजनसेवक' की स्थापना की। महात्मा गांधी ने जो लेख लिखे, वे किसी भी सम्पादकीय-लेखक के लिए आज भी आदर्श हैं। पचास वर्ष से भी पुराने तथा महत्वपूर्ण दैनिक पत्रों में 'टाइम्स आफ इंडिया', 'स्टेट्समैन', 'बम्बई समाचार' (गुजराती), 'हिन्दू', 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा 'स्वदेशमित्रन' (तमिल) प्रमुख हैं।

प्रेस-आयोग

ब्रिटेन के प्रेस रायल कमीशन के अनुकरण पर सन् १९५२ में प्रेस-आयोग की नियुक्ति की गई और उससे समाचारपत्रों के वित्तीय ढांचे, पत्रकारिता के मानदंड, काम की दशाओं तथा विकास के स्वरूप के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए कहा गया। प्रेस-आयोग ने यह मत प्रकट

किया कि समाचारपत्र (जिन्होने स्वाधीनता-प्राप्ति मे अथक कार्य किया है) अपने कर्तव्यो का पालन पूर्ववत् कर रहे है।

प्रेस-आयोग ने प्रकट किया कि समाचारपत्रो की लगभग ५० प्रतिशत से भी अधिक ग्राहक-सख्या राजधानियो तथा बडे नगरो मे ही केन्द्रित है। आयोग ने यह भी कहा कि जब तक देश मे जिलो मे छपनेवाले समाचार-पत्रो मे वृद्धि नही होगी, तब तक देश मे प्रतिनिधित्वपूर्ण लोकतन्त्र की समुन्नति नही हो सकती। शृखला-समाचारपत्रो के निर्माण की प्रवृत्ति को सीमित रखने तथा प्रादेशिक नगरो मे मध्यम पैमाने के समृद्ध समाचार-पत्रो की स्थापना को सुदृढ बनाने के लिए आयोग ने अनेक सिफारिशे की। आयोग के अनुमानो के अनुमार, उन दिनो भारत मे दैनिक पत्रो मे लगी पूजी लगभग ७ करोड तथा ऋणो के रूप मे उपलब्ध पूजी लगभग ५ करोड रु० थी। दैनिक समाचारपत्रो की वार्षिक आय अनुमानत ११ करोड रु० थी, जिसमे से लगभग ५ करोड रु० विज्ञापनो मे प्राप्त होते थे। समाचारपत्र-उद्योग मे वेतन, आदि के रूप मे लगभग ४ करोड से भी अधिक रुपये दिए गए थे। इस रकम का लगभग पाचवा हिस्सा पत्रकारो को मिला था।

पत्रकारो की कार्यकुशलता मे वृद्धि करने के उद्देश्य से प्रेस-आयोग ने पत्रकारो के वेतन, छुट्टी तथा सेवानिवृत्ति-सम्बन्धी बातो मे सुधार करने की सिफारिश की थी। आयोग ने इस बात की भी सिफारिश की थी कि समाचारपत्रो की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने, सार्वजनिक हित एव महत्व के समाचारो की सुलभता तथा प्रचार को मर्यमित करनेवाली सम्भावनाओ की समीक्षा करने तथा पत्रकारो मे कर्तव्य तथा जन-सेवा की भावना का विकास करने के उद्देश्य से एक 'प्रेस-परिषद्' बनाई जाए।

आयोग ने और भी बहुत-सी सिफारिशे की थी, जिनमे समाचारपत्रो के रजिस्ट्रार की नियुक्ति तथा पृष्ठानुसार मूल्य निश्चित करने की सिफारिशे उल्लेखनीय है। समाचारपत्रो के रजिस्ट्रार की नियुक्ति की जा चुकी है। हर पत्र-पत्रिका के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह समाचारपत्रो के रजिस्ट्रार को पूजी-विनियोग तथा स्वामित्व, प्रबन्ध और ग्राहक-सख्या मे परिवर्तनो के बारे में सूचित करता रहे।

आयोग की मुख्य सिफारिशो को सरकार ने स्वीकार कर लिया है। सन् १९५५ में ससद् ने श्रमजीवी पत्रकार (सेवा की शर्तें) तथा विविध अनुबन्ध अधिनियम स्वीकार किया, जिसके अन्तर्गत पत्रकारो के लिए काम के घटे और वेतन-क्रम निश्चित करने तथा अन्य सुविधाओ की व्यवस्था है। पत्रकारो के पारिश्रमिक के सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए भारत-सरकार ने एक वेतन-बोर्ड की स्थापना की थी। वेतन-बोर्ड की रिपोर्ट सन् १९५८ में प्रकाशित हुई, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय-द्वारा उसके विरुद्ध निर्णय दिए जाने के फलस्वरूप पुन जाच आरम्भ की गई और एक वेतन-समिति नियुक्त की गई। इस समिति की सिफारिशें सरकार ने स्वीकार कर ली हैं।

भारत मे पत्र-पत्रिकाओ से सम्बद्ध प्रमुख सघटनो मे इडियन ऐंड ईस्टर्न न्यूज़पेपर्स सोसाइटी (प्रकाशको की सस्था), भारतीय श्रमजीवी पत्रकार-सघ, अखिल भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-सम्मेलन, तथा ग्राहक-सख्या लेखा-परीक्षा कार्यालय (आडिट ब्यूरो आफ सर्क्युलेशन्स) उल्लेखनीय है। आडिट ब्यूरो आफ सर्क्युलेशन्स विज्ञापनदाताओ, प्रकाशको तथा विज्ञापन-एजेसियो की एक सस्था है, जो सदस्य पत्र-पत्रिकाओ की ग्राहक-सख्या की लेखा-परीक्षा करके रिपोर्टे प्रकाशित करती है।

भारत-सरकार के विभिन्न मन्त्रालय तथा राज्य-सरकारे भी अपनी-अपनी पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित करती है। सन् १९५९ मे केन्द्रीय सरकार १८६ तथा राज्य-सरकारें १७० पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित कर रही थी।

पत्रकारिता का प्रशिक्षण

सामान्यत पत्रकार समाचारपत्र, आदि में काम करके ही पत्र-कारिता का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। तो भी, कलकत्ता, मद्रास, मैसूर, नागपुर, उस्मानिया तथा पजाब-विश्वविद्यालय मे पत्रकारिता का प्रशिक्षण दिया जाता है।

अनुमान है कि भारत को प्रतिवर्ष लगभग ७०,००० टन अखबारी कागज की आवश्यकता पडती है। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भारत अखबारी कागज के आयात पर ही निर्भर करता था। भारत में केवल एक ही अखबारी कागज बनाने का कारखाना है, जो मध्यप्रदेश में है। इस कारखाने ने

सन् १९५५ में काम आरम्भ किया। इसकी क्षमता प्रतिवर्ष ३०,००० टन तक कागज बनाने की है। अनुमान है कि सन् १९५९ में (अक्तूबर तक) ४,८१,१६,०९६ रु० मूल्य के अखबारी कागज का आयात किया गया।

भारत-सरकार का पत्र-सूचना-कार्यालय (प्रेस इन्फार्मेशन ब्यूरो) पत्र-पत्रिकाओं को अंग्रेजी तथा १२ भारतीय भाषाओं में भारत-सरकार की नीतियों, योजनाओं, सफलताओं तथा अन्य गतिविधियों के सम्बन्ध में जानकारी सुलभ करता है।

पत्र-पत्रिकाओं-सम्बन्धी कानून

भारत में पत्र-पत्रिकाओं-सम्बन्धी पांच मुख्य केन्द्रीय कानून हैं

(१) पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की रजिस्ट्री अधिनियम, १८६७ (१९५५ में संशोधित) के अन्तर्गत छापेखानों के नियमन, समाचारपत्रों की रजिस्ट्री तथा पुस्तकों और समाचारपत्रों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था है। सरकार-द्वारा नियुक्त 'समाचारपत्रों का रजिस्ट्रार' पत्र-पत्रिकाओं-सम्बन्धी आंकड़े, आदि एकत्र करता है।

(२) श्रमजीवी पत्रकार (सेवा की शर्तें) तथा विविध उपबन्ध अधिनियम, १९५५, २० दिसम्बर, १९५५ को लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत वेतन-बोर्डों की नियुक्ति करने की व्यवस्था है तथा पत्रकारों पर भी कुछ श्रम-कानून लागू कर दिए गए हैं।

(३) समाचार (मूल्य और पृष्ठ) अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत अनुचित प्रतियोगिता रोकने के उद्देश्य से पृष्ठों के अनुसार समाचारपत्र का मूल्य निर्धारित करने की व्यवस्था है। इस कानून को लागू करने की व्यवस्था की जा रही है।

(४) पुस्तकों तथा समाचारपत्रों की डिलीवरी (सार्वजनिक-पुस्तकालय) अधिनियम, १९५४ के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकाशक-द्वारा प्रकाशित सामग्री की प्रतियां चार केन्द्रीय

पुस्तकालयो को भेजने की व्यवस्था है, जिनमें कलकत्ते का राष्ट्रीय पुस्तकालय भी शामिल है।

(५) ससदीय कार्यवाही (प्रकाशन की सुरक्षा) अधिनियम, १९५६ के अतर्गत ऐसी व्यवस्था है कि समाचारपत्र मे किसी भी सदन की किसी भी कार्यवाही की बिल्कुल सत्य रिपोर्ट छापने के लिए किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध तब तक दीवानी या फौजदारी कोई कार्रवाई नही की जाएगी, जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि ऐसा द्वेषभाव से किया गया है।

सविधान (प्रथम सशोधन) अधिनियम, १९५१ के अन्तर्गत, ससद् राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यो के साथ मैत्री-सम्बन्धो, शिष्टता अथवा नैतिकता के हित मे अथवा न्यायालय की मानहानि, निन्दा अथवा अपराधवृत्ति भडकाने की स्थिति मे पत्र-पत्रिकाओ, आदि की स्वतन्त्रता पर समुचित अकुश रखने के लिए कानून बना सकती है। इस प्रकार का कानून निर्णय होगा।

प्रमुख समाचारपत्र

भारत मे प्रकाशित होनेवाले कुछ प्रमुख दैनिक समाचारपत्रो तथा उनके प्रकाशन-स्थान का विवरण नीचे दिया गया है

अंग्रेजी अमृत बाजार पत्रिका (कलकत्ता), आसाम ट्रिब्यून (शिलाग) बाम्बे क्रानिकल (बम्बई), दक्कन क्रानिकल (सिकन्दराबाद), दक्कन हेरल्ड (बगलोर), ईस्टर्न टाइम्स (कटक), फ्री प्रेस जर्नल (बम्बई), हिन्दू (मद्रास), हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड (कलकत्ता), हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली), हितवाद (नागपुर और भोपाल), इडियन एक्सप्रेस (मद्रास, बम्बई, दिल्ली और मदुरइ), इडियन नेशन (पटना), लीडर (इलाहाबाद), मेल (मद्रास), मध्यप्रदेश हेरल्ड (भोपाल), नागपुर टाइम्स (नागपुर,) नेशनल हेरल्ड (लखनऊ), पायोनियर (लखनऊ), सर्चलाइट (पटना), स्टेट्समैन (कलकत्ता और दिल्ली), टाइम्स आफ इडिया (बम्बई और दिल्ली), ट्रिब्यून (अम्बाला)।

असमिया शान्तिदूत (पाड़ू)

उड़िया गणतन्त्र, मातृभूमि, प्रजातन्त्र, समाज (सब कटक से)।

उर्दू अजमल (बम्बई,) अल जमीयत (दिल्ली), आजाद हिन्द (कलकत्ता), असरे जदीद (कलकत्ता), हिन्द समाचार (जालधर), इन्किलाब (बम्बई), खिदमत (श्रीनगर), मदीना (बिजनौर), मार्तंड (श्रीनगर), प्रभात (जालधर), प्रताप (दिल्ली और जालधर), पयाम (हैदराबाद), कौमी आवाज (लखनऊ), रोजाना हिन्द (कलकत्ता), साथी (पटना), सियासत (हैदराबाद) तथा तेज (दिल्ली)।

कन्नड़ जनवाणी (बगलोर), प्रजावाणी (बगलोर), सयुक्त कर्नाटक (हुबली और बगलोर), तायनाड् (बगलोर)।

गुजराती : बम्बई समाचार (बम्बई), जाम-ए-जमशेद (बम्बई), जनसत्ता (अहमदाबाद), जन्मभूमि (बम्बई), लोकसत्ता (बड़ौदा), फूलछाब (राजकोट), सन्देश (अहमदाबाद)।

तमिल तती (मद्रास, मदुरइ और तिरुच्चिरापल्लि), दिनमणि (मद्रास और मदुरइ), जनशक्ति (मद्रास), नव इंडिया (कोयमुत्तूर), स्वदेशमित्रन् (मद्रास), तमिलनाडु (मदुरइ)।

तेलुगु आध्रपत्रिका (मद्रास), आध्रप्रभा (मद्रास), विशालाध्र (विजयवाड़ा)।

पजाबी अकाली पत्रिका (जालधर) खालसा सेवक (अमृतसर और पटियाला), नवा जमाना (जालधर), रजीत (पटियाला)।

बंगला आनन्द बाजार पत्रिका, बसुमती, जनसेवक, युगान्तर, लोकसेवक तथा स्वाधीनता (सब कलकत्ते से)।

मराठी लोकमत (बम्बई), लोकसत्ता (बम्बई), मराठा (बम्बई), नवशक्ति (बम्बई), केसरी (पूना), सकाल (पूना), तरुण भारत (नागपुर)।

मलयालम देशाभिमानी (कोज़ीकोड), दीनबन्धु (एरणाकुलम),

करल कौमुदी (त्रिवेन्द्रम), मलयाल मनोरमा (कोट्टायम), मलयाल राज्यम् (क्विलोन) मातृभूमि (कोजीकोड)।

हिन्दी आज (वाराणसी), भारत (इलाहाबाद), हिन्दुस्तान (दिल्ली), जागरण (कानपुर भोपाल झासी और रीवा), नवभारत टाइम्स (दिल्ली और बम्बई), नवजीवन (लखनऊ), प्रदीप (पटना), स्वतन्त्र भारत (लखनऊ) वीर अर्जुन (दिल्ली और जालधर), विश्वमित्र (बम्बई पटना, कानपुर और कलकत्ता), आर्यावर्त (पटना)।

अध्याय ११

खेल-कूद

भारतीय खेल-कूद का इतिहास बडा गौरवपूर्ण है। प्राचीन काल मे खुले मैदान के खेलो मे चौगान (पोलो) तथा घर के खेलो मे शतरंज यहा विशेष लोकप्रिय रहे है। मल्लयुद्ध अर्थात् कुश्ती का उल्लेख तो हमारी प्राचीन दन्तकथाओ मे भी मिलता है। विनोद और व्यायाम का यह साधन आज भी बडा लोकप्रिय है तथा इसमे बडे विशद् नियमो का पालन करना पडता है। प्राचीन भारत मे व्यायाम तथा धनुर्विद्या मे प्रवीणता प्राप्त करना शिक्षा का अभिन्न अग समझा जाता था। यद्यपि भारत के वर्तमान खेलो मे से अधिकाश का आगमन पश्चिमी जगत् से हुआ है, तथापि कबड्डी और गिल्ली-डडा-जैसे देशी खेल आज भी बडे चाव से खेले जाते है, विशेषकर गावो मे तो इनकी लोकप्रियता मे जरा भी कमी नही आई।

हाकी मे तो भारत अत्यधिक प्रवीण है। सन् १९२८ मे एक भारतीय टीम पहली बार ओलिम्पिक खेल-प्रतियोगिता मे शामिल हुई थी और तब से पिछले वर्ष तक ओलिम्पिक टाइटिल भारत के पास ही था। हाकी के क्षेत्र मे जिन अनेक भारतीयो ने ख्याति अर्जित की है, उनमे विश्वविख्यात खिलाडी ध्यानचन्द अद्वितीय है। भारत मे होनेवाली हाकी-प्रतियोगिताओ मे बीटन कप, आगा खा कप तथा अन्तर्राज्यीय प्रतियोगिताए प्रमुख है।

फुटबाल भारत-भर मे बडा लोकप्रिय है, विशेषकर बगाल तथा दक्षिण-भारत मे इसके प्रति विलक्षण उत्साह देखने को मिलता है। इडियन फुटबाल शील्ड, डूरड कप, रोवर्स कप तथा अन्य प्रतियोगिताओ के अवसर पर दर्शको की भीड और उत्साह दर्शनीय होता है।

परन्तु बाहर मे आए सब खेलो मे क्रिकेट ही ऐसा है, जो मध्यम-वर्ग मे अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। सन् १९३२ मे एक भारतीय टीम इग्लैंड गई थी तथा भारत ने उस समय प्रथम टेस्ट मैच खेला था।

तब से न केवल भारत तथा इग्लैंड की टीमे एक-दूसरे देश में आकर खेलती रही है, बल्कि भारत तथा आस्ट्रेलिया, वेस्ट इडीज, पाकिस्तान तथा श्रीलका के बीच भी मैच खेले जाते रहे है। अनेक भारतीय क्रिकेट खिलाडी इग्लैंड की ओर से भी खेल चुके है, जिनमे रजी, दलीपसिहजी तथा पटोदी ने विशेष ख्याति अर्जित की है। 'विज़डन' नामक ब्रिटेन की एक वार्षिक पत्रिका में, जिसमे प्रतिवर्ष ५ सर्वोत्तम खिलाडी निर्वाचित किए जाते है, मरचेट, हज़ारे तथा मनकड के नाम आ चुके हैं। प्रत्येक राज्य के अपने-अपने विख्यात क्रिकेट-खिलाडी है। अखिल भारतीय ख्याति-प्राप्त खिलाडियो मे कागा, नायडू, निसार, अमरसिंह, अमरनाथ तथा मुश्ताक उल्लेखनीय है।

लान टेनिस मे गौस मुहम्मद, साहनी, सुमन्त मित्र तथा नरेश कुमार विम्बलडन (अन्तर्राष्ट्रीय टेनिस-प्रतियोगिता, जो ब्रिटेन में होती है) मे खेल चुके है तथा कृष्णन् ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ मे सम्मान प्राप्त किया है। टेबिल टेनिस मे भी भारत ने अच्छी ख्याति अर्जित की है। कम श्रमसाध्य खेलो मे बैडमिटन ने भी भारत मे काफी लोकप्रियता प्राप्त की है। भारतीय बैडमिटन-खिलाडी विश्व के सर्वोत्तम खिलाडियो मे गिने जाते है और उन्होने मलय, स्याम तथा डेन्मार्क के लब्धप्रतिष्ठ खिलाडियो का सफलतापूर्वक मुकाबला किया है।

कबड्डी भारत का अपना खेल है, जिसमे प्रत्येक भारतीय परिचित है। कबड्डी में चौकन्नापन, फुर्ती तथा बल की बडी आवश्यकता होती है और इसमे कसरत भी खूब होती है।

प्रशिक्षण की योजनाए

पिछले कुछ वर्षो से सरकार खेल-कूद का विकास करने में विशेष रुचि ले रही है और इसकी अभिवृद्धि के लिए काफी धन व्यय किया जा रहा है। सन् १९५४ मे एक राष्ट्रीय खेल-कूद-परिषद् स्थापित की गई थी। अनेक प्रमुख नगरो में सरकारी सहायता से क्रीडागनो का भी निर्माण किया गया है।

भारत मे खेल-कूद के नियत्रण के लिए अनेक अखिल भारतीय सघटन है। इनमे इडियन आलिम्पिक एसोसिएशन, अमेच्योर एथलेटिक फेडरेशन आफ इडिया, सर्विसेज स्पोर्ट्‌स कण्ट्रोल बोर्ड, नेशनल स्पोर्ट्‌स क्लब आफ इडिया, बोर्ड आफ कण्ट्रोल फार क्रिकेट, आदि उल्लेखनीय है। फुटबाल, हाकी, टेनिस, टेबल टेनिस, बैडमिंटन, बास्केट-बाल, वालीबाल, कबड्डी, साइकिल-दौड, मुक्केबाजी, वजन उठाने तथा शिकार आदि के भी सघ है।

'राजकुमारी खेल-कूद-प्रशिक्षण-योजना' सितम्बर १९५३ मे आरम्भ की गई थी। इस योजना के अन्तर्गत भारतीय तथा विदेशी विशेषज्ञ भारतीय खिलाडियो को प्रशिक्षित करते है।

सर्वप्रथम एशियाई खेल नई दिल्ली मे सन् १९५१ मे हुए थे, जिनमे ११ देशो ने भाग लिया था। इनमे टीम-खेलो मे भारत सर्वप्रथम तथा व्यक्तिगत खेलो मे दूसरे नम्बर पर रहा। सन् १९५४ मे मनीला मे द्वितीय एशियाई खेलो तथा सन् १९५८ मे टोकियो मे तृतीय खेल-प्रतियोगिताओं मे भारत ने काफी ख्याति पाई। इस वर्ष रोम मे जो आलिम्पिक खेल हुए, उनमे भी भारत ने हिस्सा लिया।

भारत के अन्य खेलो मे गोल्फ, मछली पकडना, नौका-दौड, शिकार तथा शीतकालीन खेल उल्लेखनीय है। यद्यपि पोलो धनी लोगो का ही खेल है, तथापि उसके शौकीनो की यहा कमी नही है और भारतीय पोलो-टीमो की गणना विश्व की सर्वोत्तम टीमो मे की जाती है। प्रत्येक बडे नगर मे आपको गोल्फ के शौकीन मिलेगे। भारत की नदियो और समुद्र मे मछली का शिकार करते हुए लोग आपको सर्वत्र दिखाई देगे। अधिकाश नदियो मे महसीर तथा पहाडी नदियो मे ट्राउट मछली की कमी नही है। गहरे समुद्र मे मछली पकडने के शौकीनो के लिए मलबार-तट अत्युत्तम स्थान है। आखेट के लिए भारत बडा उपयुक्त देश है। भारत मे शीतकालीन खेलो का अभी यथेष्ट प्रचलन नही हुआ, फिर भी अधिकाश पहाडी नगरो मे स्केटिंग की सुविधाए विद्यमान है तथा कश्मीर मे स्काइग की जा सकती है। दार्जिलिंग मे एक पर्वतारोहण-विद्यालय भी खोल दिया गया है, जिसमे एवरेस्ट-विजेता तेनसिह नोरके भी पर्वतारोहियो को प्रशिक्षण देते है।

—



अध्याय १२

हस्तशिल्प

भारतीय हस्तशिल्पो में कताई, बुनाई तथा रगरेजी सबसे प्राचीन और सुपरिचित हस्तशिल्प है। यद्यपि भारत मे एक अत्यन्त सगठित वस्त्र-उद्योग विद्यमान है, तथापि देश मे लगभग पच्चीस-तीस लाख हथकरघे है, जो देश की कपडे की एक-तिहाई जरूरतो को पूरा करते है तथा उनसे लगभग डेढ करोड लोगो को रोजी-रोटी मिलती है। इन करघो से बडी अनूठी डिजाइनो का रग-बिरगा सामान तैयार किया जाता है। अति प्राचीन काल में भी भारत की कमखाब तथा तजेब एशिया और यूरोप की मण्डियो में बिकने जाती थी। मोहेनजोदडो की खुदाई से भी कुछ सूती वस्त्र प्राप्त हुए है तथा अजन्ता के भित्तिचित्रो में भी रेशम तथा तजेब पहने हुए लोगो का चित्रण किया गया है। रेशमी कपडे पर सोने और चादी का काम करके कमखाब बनाई जाती है। आम तौर पर कमखाब पर चांद, सितारे तथा मोर का सिर बनाया जाता है। यद्यपि

तार खीचने के लिए मामूली औजारो आदि का सहारा लिया जाता है, तथापि भारत के कुशल कारीगर इतना बारीक तार खीच लेते है, जो बाल से भी बारीक होता है। बनारस, मुर्शिदाबाद अहमदाबाद, सूरत तथा तिरुच्चिरापल्लि कमखाब के प्रसिद्ध केन्द्र हैं।

जारजेट, शिफोन तथा कपड़े पर सोने-चादी के उच्च कोटि के काम के लिए मैसूर विख्यात है। कश्मीर मे भी तरह-तरह का रेशमी कपडा तैयार होता है। मुर्शिदाबाद तरह-तरह के आकर्षक नमूनोवाली साडिया बनाने के लिए प्रसिद्ध है। सूरत रेशमी कपडे और साटिन के रेशमी कपडे के लिए मशहूर है तथा राजस्थान मे दुपट्टो के लिए बहुत बढिया महीन जालीदार कपडा बनता है।

मध्य-युग मे ढाका, मछलीपट्टम तथा पाटन बढिया कपडा बनाने के विख्यात केन्द्र थे। ढाका तजेब के लिए, मछलीपट्टम छीट के लिए तथा पाटन पीताम्बर के लिए विश्वविख्यात था। ढाका के जुलाहो की

एक बनारसी साडी का जरी का पल्लू



कला अनुपम थी और वहा की बनी तजेब की उपमा मकडी के जाले से दी जाती थी ।

हथकरघे मे बुनाई करने का काम अब भी अनेक राज्यो मे एक फूलता-फलता उद्योग है । पजाब मे सुन्दर खेस और लुगिया बनती है तथा जामदानी बगाल की एक विशेषता है । असम और मणिपुर मे सूती शाल बनते है । बनारस का मूगा सिल्क, पजाब की फुलकारी तथा बगाल का कथा, कपडे पर सुन्दर कसीदाकारी के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण है ।



सुन्दर कढ़ाई से युक्त एक कश्मीरी शाल

भारतीय रगरेज को रगाई मे कमाल हासिल है । क्या राजस्थान के केसरिया चुन्नटदार लहगे और क्या दक्षिण की कुम्बी महिलाओ के चम-चम करते वस्त्र—सर्वत्र रगरेज की कला का कमाल दृष्टिगोचर होता है । पटोला बनाने की विधि जितनी जटिल है, उतनी ही आकर्षक भी । इसमे बधनी तकनीक मे काम लिया जाता है और बुनाई से पहले ताना-बाना अलग-अलग नमूने के अनुसार रग लिया जाता है । हल्का, गहरा लाल, सुनहरा, पीला, काला तथा कभी-कभी गहरा हरा रग अधिक पसन्द किया जाता है । इनमें एकसार डिजाइन और रगो का विशिष्ट मिश्रण देखते ही बनता है । बधनी की यह तकनीक तजेब के लिए मुख्य रूप से जोधपुर और जयपुर में प्रयुक्त की जाती है ।

कपडे पर छपाई का काम भारत के नगर-नगर और गाव-गांव म होता है । लखनऊ, कन्नौज तथा फर्रुखाबाद के बिछावन और शाल तथा

अमृतसर की छपी हुई साड़िया इस कला के अच्छे उदाहरण हैं। जम्मू के साम्बर नामक स्थान के सूती मोटे कपडे ईरानी डिजाइन मे बनाए जाते है तथा उनका उपयोग अधिकतर दीवारो पर तथा दरियो और छोलदारियो के रूप में किया जाता है। जयपुर मे कपडे के दोनो ओर इस होशियारी मे छपाई की जाती है कि उनकी उलट-सीध दिखाई ही नही देती। जोधपुर मे छपे कपडे की पट्टिया काट कर और उन्हे जोड कर बडे सुन्दर लहगे बनाए जाते है, जो राजस्थान मे विशेष लोकप्रिय है।

कलात्मक सौन्दर्य के ऊनी कपडों मे पशमीना विशेष प्रसिद्ध है, जो पश्म मे बनाया जाता है। कश्मीरी शाल सुन्दर और बारीक कढाई के लिए प्रसिद्ध है। वास्तव मे, 'कश्मीर' नाम ही सर्वोत्तम ऊनी कपडे का द्योतक है।

गलीचे

गलीचे बनाने का उद्योग भी भारत का एक प्राचीन उद्योग है। कश्मीर के अतिरिक्त, अमृतसर, जयपुर, बीकानेर, आगरा तथा वारगल (हैदराबाद) मे बडे सुन्दर गलीचे बनते हैं। मिर्जापुर के गलीचों के पीछे कला-कौशल की एक प्राचीन परम्परा है, जो अकबर के काल से आरम्भ होती है। यह बढिया ऊन को धोकर, उसके रेशे निकाल कर तथा धुन कर हाथ से काता जाता है। ऊन के लच्छे आम तौर पर सब्ज रगो में रगे जाते है। बहुत बढिया किस्म के गलीचे पर काफी मेहनत और समय खर्च करना पडता है और कभी-कभी तो एक वर्ग गज गलीचा तैयार करने मे एक सप्ताह मे भी अधिक समय लग जाता है।

धातु का काम

दक्षिण में आज से बारह-तेरह शताब्दी पूर्व ताबा और कासा ढालने की कला चरम उत्कर्ष पर थी। दक्षिण-भारत की कासे की मूर्तिया शैवमत से प्रभावित थी और आरम्भ में सोने, चादी, ताबे, सीसे और टीन की मिश्रधातु से ये मूर्तिया बनाई जाती थी। बिदरी के बर्तनो में हैदराबाद अपना सानी नही रखता। डिजाइन की विविधता के अतिरिक्त, बिदरी के बर्तनो मे काली पृष्ठभूमि पर धातु की पच्चीकारी का अद्भुत मेल

देखते ही बनता है। बर्तनों पर मीनाकारी का काम बनारस, दिल्ली, लखनऊ, रामपुर, अलवर तथा कश्मीर मे होता है। आभूषणो पर मीनाकारी के लिए जयपुर विशेष प्रसिद्ध है।

पीतल के बर्तनों पर नक्काशी से फूल, प्राकृतिक दृश्य तथा वन-सुषमा अकित करने के लिए जयपुर, मुरादाबाद तथा बनारस विख्यात है। सुनार की उत्कृष्ट कला का दिग्दर्शन सोने-चादी के महीन तार खीचने के काम में होता है, जिसके लिए कटक प्रसिद्ध है।

पत्थर पर नक्काशी का काम भी किसी समय भारत मे उन्नति के शिखर पर था। पच्चीकारी तथा जाली का काम इस कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। रोज़ा ताजमहल (आगरा), सगमरमर मे बहुमूल्य पत्थर—जैसे, सुलेमान पत्थर तथा सूर्यकात मणि (जेस्पर)— जडने की मुगलकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। सगमरमर तथा बलुवा पत्थर मे बारीक जाली के नमूने देश के अनेक भागो मे देखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त, बलुआ पत्थर, सगमरमर, सफेद पत्थर सेलखडी तथा ककडो मे कार्निस, फूलदान, दीवट (शमादान), जजीरे, लैम्प के खम्भे, आदि बनाए जाते है। जयपुर मे स्फटिक की कृपाण की मूठे, मनके, बक्सुए, गले के हार, आदि बनाए जाते है। कश्मीर मे फीरोज़ा के आभूषण भी बनते है। हरे जेड पत्थर से बिसात, सुराहिया तथा गिलास, वगैरह बनाए जाते है।

मिट्टी के बर्तन

ग्वालियर तथा खुर्जा के रग-बिरगे बर्तन देखने मे बडे आकर्षक तथा मूल्य में सस्ते होते है। अलवर में बननेवाले बर्तन इतने पतले होते है कि उनका नाम ही 'कागज़ी' पड गया है। अलीगढ़ के बर्तनो को पकाने से पहले उनके ऊपर अगुलियो से डिज़ाइन बनाए जाते है। आज़मगढ, रत्नगिरि तथा मदुरा काली मिट्टी के बर्तनो के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। रग-बिरगे बर्तन अधिकतर कोटा, लखनऊ, जालधर तथा सलेम मे बनते है। खुर्जा और रामपुर मे गहरे नीले रग के काचित गुलदान, तश्तरिया, घड़े आदि बनते है।

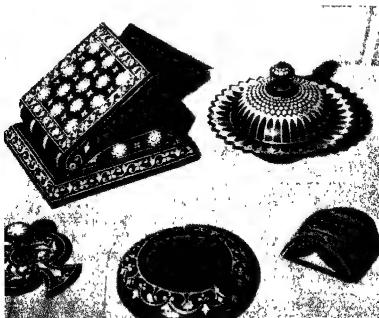
रंग-बिरंगे बर्तनों की दो किस्में है। एक किस्म के बर्तन ऐसे हैं, जिन पर पकाने से पहले चित्रकारी की जाती है और दूसरी किस्म वह है, जिस पर पकाने के बाद वार्निश या चित्रकारी की जाती है।

शान्तिनिकेतन में भूरे काचित बर्तनों पर गहरे रंगों से चित्र बनाने के प्रयोग किए जा रहे हैं। शान्तिनिकेतन कुछ प्राचीन मोटिफों – जैसे, मछली, स्वस्तिक तथा केकड़ा—को पुन: प्रचलित करने का प्रयास कर रहा है।

लकड़ी का काम

उत्तर में कश्मीर, दक्षिण में मैसूर और केरल तथा पश्चिम में राजस्थान और गुजरात में होनेवाली लकड़ी पर नक्काशी देखते ही बनती है।

हैदराबाद में बने बिदरी के बर्तन



कश्मीरी कारीगर अखरोट की लकडी पर बडी महीन नक्काशी करते है। कश्मीर के फोल्डिग पर्दे, आलमारिया तथा तसवीरो के फ्रेम बडे कलात्मक होते है। मैसूर मे चन्दन की लकडी से गेजमर्रा के इस्तेमाल की सुन्दर चीजे बनती है। आम तौर पर, फूलो, पशुओ तथा देवी-देवताओ के मोटिफ बनाए जाते है तथा छोटी-मे-छोटी मूर्ति से लेकर आदमकद मूर्ति तक, सबमे तीखापन तथा सजीवता दृष्टिगोचर होती है। जालधर मे लकडी मे हाथीदात की तथा शीशम की लकडी मे पीतल की नक्काशी की जाती है। मणिपुर मे ताबे और पीतल के तारो मे नक्काशी की जाती है।

मैसूर में चन्दन की लकड़ी से निर्मित 'सघर्षरतहाथी'





त्रिवेन्द्रम के हाथीदात के काम का एक नमूना

हाथीदात का काम

लकड़ी की अपेक्षा शतराश की उत्कृष्ट कला हाथीदात पर अधिक निखरती है। केरल तथा मैसूर की हाथीदात की बनी चीजे महीन तथा कोमल कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है। वास्तव में, देवी-देवताओ की भाव-भगिमाओ को मूर्त रूप देने के लिए हाथीदात बडा उपयोगी माध्यम है। मुर्शिदाबाद और कटक मे भी हाथीदात का सुन्दर काम होता है। दक्षिण-भारत मे बना हाथीदात का एक अद्भुत चौखटा (पैनल) फ्लोरेन्स के राष्ट्रीय सग्रहालय मे सुरक्षित है। हाथीदात से आम इस्तेमाल की चीजे--जैसे, कघिया, मजूषाए (टोकरिया), सिगरेट-केस तथा शतरज के मोहरे और गोटिया--बनाई जाती है। हाथीदात मे नक्काशी का उत्कृष्ट नमूना अमृतसर के दरबारसाहब (स्वर्ण-मन्दिर) मे उपलब्ध है।

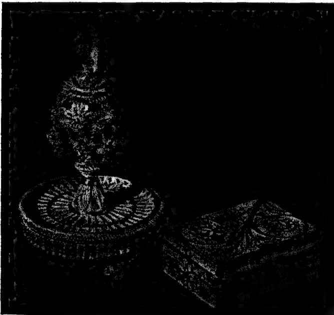
हस्तशिल्प की अन्य चीजे

मिट्टी, लकडी, धातु या कपडे के बने खिलौने लोककला के उत्कृष्ट उदाहरण है। गाव का कुशल कुम्हार गाव के मेले मे बेचने के लिए बडे विचित्र-विचित्र खिलौने बनाता है। गावो मे कठपुतली के तमाशो मे स्त्रियो-द्वारा बनाई गई सजी-धजी गुडियो का प्रदर्शन भारत के ग्रामीण जीवन का एक अग है। पकाई हुई मिट्टी के रग-बिरगे सुन्दर खिलौने

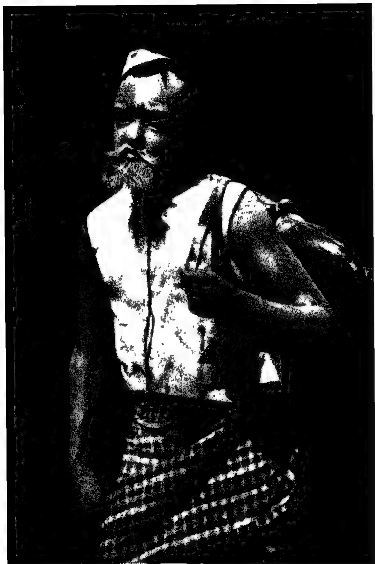
मद्रास, बगाल तथा उत्तर प्रदेश में बनते हैं। लकडी तथा धातु के खिलौने तो भारत-भर मे बनते है। खिलौने बनाने के केन्द्रो मे कृष्णनगर (पश्चिम-बगाल) तथा कोडापल्ली (आंध्र प्रदेश) विशेष प्रसिद्ध है।

सोने-चादी के सुन्दर नमूनोवाले आभूषण तथा हीरे, माणिक और अन्य कीमती पत्थरो के जडाऊ गहने बनाने की कला भारत की एक प्राचीन कला है। प्रत्येक राज्य मे अपने रिवाजो के अनुसार सुन्दर गहने गढे जाते है।

पेपियर माशे (कागज़ की लुगदी) की चीज़ें—जैसे, कटोरे-प्याले, पाउडर के डिब्बे, ट्रे, कलश और लैम्प-शेड—कश्मीर मे बनती है।



उड़ीसा में निर्मित हाथीदांत की दो वस्तुएं, जिन पर तारकशी की गई है



कृष्णनगर मे निर्मित मिट्टी का खिलौना—'भिश्ती'

विकास-योजनाए

इन वस्तुओ के अलावा, भारत मे अनेक प्रकार के हस्तशिल्प के सामान बनते है। हस्तशिल्प का विकास करने के लिए हाल मे जो प्रयत्न किए गए है, उनके बडे उत्साहवर्द्धक परिणाम निकले है। पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे भारत-सरकार ने प्राचीन कला-कौशलो का सरक्षण करने तथा उनका और अधिक विकास करने के निमित्त एक हस्तशिल्प-बोर्ड की स्थापना की थी। हस्तशिल्प-बोर्ड ने कई प्रशिक्षण-योजनाए तथा बिक्री-आन्दोलन चलाए है। हस्तशिल्प की चीजो की दुकाने भी अनेक नगरो मे खोल दी गई है और इन चीजो ने देश-विदेश के ग्राहको को आकर्षित किया है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे हस्तशिल्प-उद्योग के लिए लगभग ९ करोड रु० की व्यवस्था है। अनुमान है कि सन् १९५८-५९ मे हस्तशिल्प की चीजो के निर्यात मे भारत को लगभग ६ करोड रु० की आय हुई।

अध्याय १३

पर्व-त्योहार

भारत-भूमि के निवासियो की भाति यहा के पर्व भी बडे वैविध्यपूर्ण एव हर्षोल्लासमय है। एक ओर, कठोर और सयमशील व्रत और रोजे है, तो दूसरी ओर अत्यन्त आह्लादकारी त्योहार और मेले है। भारत मे हिन्दुओ, ईसाइयो तथा मुसलमानो की सख्या सबसे अधिक है। प्रत्येक मत के अपने-अपने विशिष्ट आचार-व्यवहार एव अनुष्ठान है, इसलिए भारत मे मनाए जानेवाले पर्वो की सख्या भी बहुत बडी है—केवल हिन्दुओ के ही लगभग ७० पर्व हैं। परन्तु इनमे से कुछ ही ऐसे है, जो देश-भर मे मनाए जाते है।

हिन्दुओ के पर्व चार प्रकार के है विशेष त्योहार, व्रत, जयन्तिया तथा मेले। विशेष त्योहारो मे दीपावली, दशहरा अथवा विजयादशमी, होली, वसन्त-पचमी तथा रक्षाबन्धन प्रमुख हैं।

होली का पर्व सामान्यत मार्च के महीने मे आता है। आनन्द और उल्लास तथा पारस्परिक स्नेह के प्रतीक इस पर्व को धनी और निर्धन, सभी स्वच्छद होकर मनाते है। रग-अबीर और गुलाल की वर्षा के साथ-साथ होली के अवसर पर सगीत और नृत्य-कला की छटा देखते ही बनती है। यह कहने मे अत्युक्ति नही कि यह त्योहार प्राचीन काल से ही समाजवादी व्यवस्था का पोषक रहा है, जिसमे बडे-छोटे, धनी-निर्धन सवर्ण-अवर्ण, एक साथ मिल कर आनन्द मनाते है। वर्ष-भर मे उत्पन्न पारस्परिक द्वेष-भाव और कटुता को मिटानेवाला, उदारता का परिचायक यह आबालवृद्धवनिता के लिए हर्षोल्लास का एक अपूर्व पर्व है।

दशहरा (अथवा विजयादशमी) देश के विभिन्न भागो मे भिन्न-भिन्न तरीके से मनाया जाता है। उत्तर-भारत मे दशहरे से पूर्व, नगर-नगर, गाव-गाव मे रामलीला का आयोजन होता है, जिसमे रामायण की कथा को आद्योपान्त अभिनीत किया जाता है। रामायण के पात्र जनता के आदर्श



मैसूर में दशहरे का जुलूस

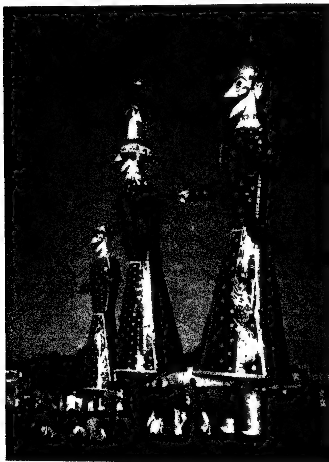
हैं। राम तथा रावण के युद्ध के रूप मे सत् और असत् का युद्ध होता है और अन्त मे सत् की विजय होती है। सीता के रूप मे शील और सतीत्व का आदर्श वर्णित है। भरत और लक्ष्मण औदार्य और शौर्य के प्रतीक हैं। इसी प्रकार, हनुमान भक्ति और श्रद्धा के प्रतीक हैं।

दक्षिण मे इस पवित्र अवसर को नवरात्रि के रूप मे मनाया जाता है, विभिन्न दिन लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गा की पूजा होती है । नौवे दिन उपकरणो, आदि की पूजा की जाती है । दसवे दिन विजयादशमी मनाई जाती है ।

मैसूर में तो दशहरा बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है। बगाल मे इस पर्व पर चार दिन दुर्गापूजा होती है और उसके उपरान्त दुर्गा की मूर्ति का प्रवाह किया जाता है । कुल्लू-घाटी मे दशहरे के अवसर पर लोक-नृत्यो की छटा देखते ही बनती है ।

विजयादशमी हमारी पुनीत सास्कृतिक परम्पराओ का उज्ज्वल प्रतीक है, जिसकी तन्मयता और पावनता मे युगो की दूरी ने लेशमात्र

अन्तर नही आने दिया । मर्यादा पुरुषोत्तम राम और मदाध रावण के युद्ध और दानवी प्रवृतियो के उन्मूलन मे हर्षविभोर होते हुए कितने युग



रावण कुम्भकरण और मेघनाथ के पुतले

बीत गए, भगवती दुर्गा-द्वारा महिषासुर और शुड-मुशुड के सहार की कहानी कितनी पुरानी पड गई, परन्तु अब भी जन-मानस मे इस पर्व के प्रति असीम श्रद्धा दर्शनीय है।

समस्त जन-जीवन मे उल्लास का महामत्र फूकनेवाले पर्वो मे दीपावली हमारा सबसे बडा आनन्दोत्सव है। सनातन काल से भारतीय जनता इस सास्कृतिक पर्व को धूमधाम से मनाती आई है। इस उत्सव पर महल से लेकर झोपडी तक मे दीपमालिका का एक अनिर्वचनीय प्रकाश व्याप्त हो उठता है। दीपावली का आध्यात्मिक तथा भौतिक, दोनो दृष्टियो से महत्व है। यह उत्सव प्राय अक्तूबर मास मे मनाया जाता है। उत्तर-भारत के निवासी भगवान् राम के वनवास से लौटने के मगलमय पर्व के उपलक्ष्य मे इसे मनाते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र प्राचीन काल से भारतीय जन-मानस मे रमा हुआ है। शताब्दियो से यह जनता के लिए सत्पथ तथा सदाचार पर दृढ रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहा है। सती-साध्वी सीता नारी-समाज के लिए आदर्श महिला के रूप मे पूज्या है। सस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थो मे इस दम्पति का मुक्तकठ से यशोगान किया गया है। न केवल भारत मे, अपितु अन्य देशो में भी रामायण के पात्रो के आदर्श चरित्र अत्यन्त लोकप्रिय हुए है और सभी लोग किसी-न-किसी रूप मे प्रतिवर्ष इनका स्मरण करते हैं।

इस पर्व के पीछे लक्ष्मी-पूजन की भी परम्परा है। भौतिक अभावो की पूर्ति के लिए लक्ष्मी-पूजन पर जो बल दिया गया है, उसने इस पर्व को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। बगाल मे इस दिन कालीपूजा होती है।

रक्षा-बधन का पर्व प्रतिवर्ष श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। आख्यान है कि असुरो से पराजित इन्द्र की कलाई मे शची ने राखी बाधी थी। इससे इन्द्र को शक्ति और बल मिला और रणक्षेत्र मे वह विजयी हुए।

राखी रक्षा और प्रेम की प्रतीक है। बहन से राखी बधवा कर भाई उसकी रक्षा करने को वचनबद्ध होता है। ब्राह्मण इस दिन नए यज्ञोपवीत धारण करते है।

वसन्त-पचमी वसन्त-ऋतु के प्रथम दिवस के उपलक्ष्य मे मनाई जाती है। वसन्त को हमारे यहा ऋतुराज कहा जाता है। बगाल में इस दिन सरस्वती-पूजा होती है।

अन्य महत्वपूर्ण पर्वो मे शिवरात्रि, वैशाखी, नागपचमी, गणेश-चतुर्थी तथा जन्नाष्टमी अथवा गोकुलाष्टमी उल्लेखनीय है। मकर-सक्रान्ति (१४ जनवरी) को मद्रास में पोगल. आध्र और मैसूर में सक्रान्ति तथा महाराष्ट्र में भोगी मनाई जाती है। असम मे भोगली बिहू फसल का पर्व है। प्रादेशिक पर्वो में केरल का ओणम् त्योहार उल्लेखनीय है, जिसमे चार दिन तक आनन्द-मगल मनाया जाता है।

मेले

व्रत-त्योहारो के अलावा, धार्मिक पर्वों में महाकुम्भ-मेला सर्वप्रमुख है, जो हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक मे १२ वर्ष पश्चात् लगता है।

उत्तर-भारत के महाकुम्भ-मेले की भाति, दक्षिण में महामहम मनाया जाता है, जो कुम्भकोणम् मे लगता है।

रथ-यात्राओ मे पुरी के जगन्नाथ-मन्दिर की रथ-यात्रा तथा तिरुपति, श्रीरगम्, काचिपुरम् और अन्य दाक्षिणात्य तीर्थो के ब्रह्मोत्सवो के प्रति जनता मे अगाध श्रद्धा है।

इतर मतो के पर्व

यद्यपि मुसलमानो के पर्वो की सख्या इतनी नही है, तथापि वे बडे जोश-खरोश से मनाए जाते है। इनमे अधिक महत्वपूर्ण पर्व है ईद-मिलाद, ईदुलफित्र, ईदुज्जुहा तथा मुहर्रम।

ईद-मिलाद हजरत मुहम्मद का जन्म-दिन होने के साथ-साथ उनकी निर्वाण-तिथि भी है। रोजो की समाप्ति पर ईदुल-फित्र आती है। ईदुज्जुहा (जिसे ईद-उल-अज़ तथा बकरीद भी कहते है) हजरत इब्राहीम की विजय के उपलक्ष्य मे मनाई जाती है, जो अल्लाह के आदेश पर अपने पुत्र इस्माइल की बलि देने को प्रस्तुत हो गए थे। ईद प्रेम का, बिछुडे दिलो को जोडने का, परस्पर बगलगीर होने का, पर्व है।

ग्रीष्म-ऋतु में दिन-भर रोजा रखने की साधना इसीलिए की जाती है कि मन मे द्वेष-भाव न रहे, हृदय मे सबके लिए प्रेम-भाव जाग्रत हो।

मुहर्रम हजरत हुसैन (जो मुहम्मद साहब के पोते थे) की शहादत के उपलक्ष्य मे केवल शिया-सम्प्रदाय मनाता है। शिया लोग १० दिन तक मातम मनाते हैं, जिसके अन्त मे ताजिये निकाले जाते है।

ईसाई त्योहारो मे क्रिसमस, गुड फ्राइडे तथा ईस्टर प्रमुख है। प्रतिवर्ष २५ दिसम्बर को ईसामसीह के जन्म के उपलक्ष्य मे क्रिसमस मनाया जाता है। ईसाइयो का यह सबसे बडा त्योहार है और देश-भर में ईसाई-जन इसे धूमधाम से मनाते है। गुड फ्राइडे मार्च-अप्रैल मे पडता है। इस दिन ईसामसीह को सलीब दी गई थी। गुड फ्राइडे के तीसरे दिन ईसामसीह के पुनर्जन्म के उपलक्ष्य में ईस्टर मनाया जाता है।

वैशाखी पूर्णिमा बौद्ध धर्मावलम्बियो का पवित्र पर्व है। जैन-मतावलम्बियो के पवित्र पर्वों मे दशलक्षण पर्व (भाद्र मास में) तथा महावीर-जयन्ती (चैत्र मास मे) बडी धूमधाम से मनाई जाती है। मैसूर राज्य में श्रवणबेलगोला मे गोमतेश्वर की वृहदाकार मूर्ति के अभिषेक-पर्व पर (जो बारह वर्षों मे एक बार मनाया जाता है) जैन तथा अन्य मतावलम्बी भारी सख्या मे एकत्र होते है। सिखो के भी अनेक पर्व है, जिनमे गुरुपरब (गुरुपर्व) प्रमुख है। पारसियो के महत्वपूर्ण पर्व तीन है—जमशेद नवरोज़, पतेती और खुदाद साल (पैगम्बर जरथुस्त्र का जन्मदिन)।

राष्ट्रीय पर्व

हर्षोल्लासपूर्ण धार्मिक पर्वों के अतिरिक्त, स्वतन्त्रता-दिवस (१५ अगस्त), गाधी-जयन्ती (२ अक्तूबर) तथा गणतन्त्र-दिवस (२६ जनवरी) भी बडी धूमधाम से देश-भर मे मनाए जाते है। दिल्ली मे गणतन्त्र-दिवस के उपलक्ष्य मे प्रात सैनिक परेड होती है तथा सास्कृतिक झाकिया निकाली जाती हैं, जिनमे भारत के कोने-कोने के लोक-नर्तक भी भाग लेते है। सायकाल को राष्ट्रपति महोदय भोज देते हैं और रात को आतिशबाजी और दीपावली की जाती है।

अध्याय १४

सरकार के पदाधिकारी*

केन्द्र

राष्ट्रपति :	राजेन्द्र प्रसाद
उप-राष्ट्रपति :	सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

मन्त्रिमंडल के सदस्य	विभाग
१ जवाहरलाल नेहरू	प्रधान मन्त्री, विदेश मन्त्रालय तथा परमाणु-शक्ति
२. लाल बहादुर शास्त्री	गृह, वाणिज्य और उद्योग
३ मोरारजी रणछोडजी देसाई	वित्त
४ जगजीवनराम	रेल
५ गुलजारीलाल नन्दा	श्रम, नियोजन तथा आयोजन
६ स्वर्ण सिह	इस्पात, खान और ईधन
७ के० सी० रेड्डी	निर्माण, आवास और सभरण
८ सदाशिव कान्होजी पाटिल	खाद्य और कृषि
९ वी० के० कृष्णमेनन	प्रतिरक्षा
१०. हाफिज मुहम्मद इब्राहीम	सिंचाई और बिजली
११ अशोक कुमार सेन	विधि
१२. पी० सुब्बारायण	परिवहन और सचार
राज्य मंत्री	
१३ सत्यनारायण सिन्हा	ससदीय कार्य
१४. बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर	सूचना और प्रसारण
१५ दत्तात्रय परशराम करमरकर	स्वास्थ्य

*२० मार्च, १९६१ की स्थिति ।

१६	पंजाबराव एस० देशमुख	कृषि
१७	केशवदेव मालवीय	खान और तेल
१८	मेहरचन्द खन्ना	पुनर्वास और अल्पसंख्यक कार्य
१६	नित्यानन्द कानूनगो	वाणिज्य
२०	राजबहादुर	परिवहन और संचार
२१	बलवन्त नागेश दातार	गृह
२२	मनहरलाल मनसुखलाल शाह	उद्योग
२३	सुरेन्द्रकुमार दे	सामुदायिक विकास और सहकारिता
२४	कालूलाल श्रीमाली	शिक्षा
२५	हुमायूं कबीर	वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य
२६	बी० गोपाल रेड्डी	राजस्व और असैनिक व्यय

उपमन्त्री

२७	सुर्जीतसिंह मजीठिया	प्रतिरक्षा
२८	आबिद अली	श्रम
२६	अनिलकुमार चन्द	निर्माण, आवास और संभरण
३०	एम० वी० कृष्णप्प	कृषि
३१	जयसुखलाल हाथी	सिंचाई और बिजली
३२	सतीशचन्द्र	वाणिज्य और उद्योग
३३	श्यामनन्दन मिश्र	आयोजन
३४	बलिराम भगत	वित्त
३५	मनमोहनदास	वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य
३६	शाहनवाज खां	रेल
३७	लक्ष्मी एन० मेनन (श्रीमती)	विदेश
३८	वायलेट अल्वा (श्रीमती)	गृह

३९	के० रघुरामय्य	प्रतिरक्षा
४०	ए० एम० टामस	खाद्य और कृषि
४१	आर० एम० हाजरनवीस	विधि
४२	एस० वी० रामस्वामी	रेल
४३	अहमद मुहीउद्दीन	असैनिक उड्डयन
४४	तारकेश्वरी सिन्हा (श्रीमती)	वित्त
४५	पूर्णेन्दु शेखर नस्कर	पुनर्वास
४६	बी० एस० मूर्ति	सामुदायिक विकास और सह-कारिता
४७	ललितनारायण मिश्र	श्रम, नियोजन तथा आयोजन

संसदीय सचिव

१	सादत अली खा	विदेश
२	जोगेन्द्रनाथ हजारिका	विदेश
३	फतेहसिंह राव प्रतापसिंह राव गायकवाड	प्रतिरक्षा
४	आनन्दचन्द्र जोशी	सूचना और प्रसारण
५.	गजेन्द्र प्रसाद सिन्हा	इस्पात, खान और ईंधन
६.	श्यामधर मिश्र	सामुदायिक विकास और सह-कारिता

कुछ अन्य पदाधिकारी*

१	भारत के मुख्य न्यायाधिपति	बी० पी० सिन्हा
२	महान्यायवादी (एटर्नी-जनरल)	मोतीलाल सी० सीतलवाद
३	महावादेक्षक (सालिसिटर-जनरल)	सी० के० दफ्तरी
४	अतिरिक्त महावादेक्षक	एच० एन० सान्याल
५	नियत्रक महालेखा-परीक्षक	अशोक कुमार चन्द
६	रिज़र्व बैंक के गवर्नर	एच० वी० आर० आयगार

*१० अप्रैल, १९६१ की स्थिति।

७	स्थल-सेनाध्यक्ष	जनरल पी० एन० थापर
८	जल-सेनाध्यक्ष	ऐडमिरल रामदास कटारी
९	वायु-सेनाध्यक्ष	एयर-मार्शल ए० एम० इन्जीनियर

राज्य

असम	राज्यपाल	एस० एम० श्रीनागेश
	मुख्य मन्त्री	विमलाप्रसाद चालिहा
आंध्र प्रदेश	राज्यपाल	भीमसेन सच्चर
	मुख्य मन्त्री	डी० सजीवय्या
उडीसा	राज्यपाल	वाई० एन० सुक्थकर
	राष्ट्रपति का शासन	
उत्तर प्रदेश	राज्यपाल	बी० रामकृष्ण राव
	मुख्य मन्त्री	सी० बी० गुप्त
केरल	राज्यपाल	वी० बी० गिरि
	मुख्य मन्त्री	पी० थानु पिल्ले
गुजरात	राज्यपाल	मेहदी नवाज़ जग
	मुख्य मन्त्री	जीवराज मेहता
जम्मू-कश्मीर	सदरे-रियासत	युवराज कर्णसिंह
	मुख्य मन्त्री	बख्शी गुलाम मुहम्मद
पंजाब	राज्यपाल	नरहरि विष्णु गाडगिल
	मुख्य मन्त्री	प्रतापसिंह कैरों
पश्चिम-बंगाल	राज्यपाल	पद्मजा नायडू (कुमारी)
	मुख्य मन्त्री	विधानचन्द्र राय
बिहार	राज्यपाल	जाकिर हुसेन
	मुख्य मन्त्री	विनोदानन्द झा
मद्रास	राज्यपाल	विष्णुराम मेधी
	मुख्य मन्त्री	कामराज नादर

मध्य प्रदेश	राज्यपाल	एच० वी० पाटस्कर
	मुख्य मन्त्री	कैलाशनाथ काटजू
महाराष्ट्र	राज्यपाल	श्रीप्रकाश
	मुख्य मन्त्री	वाई० बी० चह्वाण
मैसूर	राज्यपाल	जय चामराज वाडियार
	मुख्य मन्त्री	बी० डी० जत्ती
राजस्थान	राज्यपाल	गुरमुख निहालसिंह
	मुख्य मन्त्री	मोहनलाल सुखाडिया

केन्द्र-शासित क्षेत्र

अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह	मुख्य आयुक्त	एम० वी० राजवाडे
दिल्ली	मुख्य आयुक्त	भगवान सहाय
मणिपुर	मुख्य आयुक्त	जे० एम० रैना
हिमाचल प्रदेश	उप-राज्यपाल	बजरंग बहादुर सिंह
त्रिपुरा	मुख्य आयुक्त	एन० एम० पटनायक
लक्षद्वीप, मिनिकाय और अमीनदीवी द्वीपसमूह	प्रशासक	सी० के० बालकृष्ण नायर
पांडिचेरी	मुख्य आयुक्त	एल० आर० एस० सिंह

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ २५८ पर दूसरे पैराग्राफ की आठवी पक्ति में आरम्भ होने वाले वाक्य "ईसा-पूर्व ६०० तथा १००० ईसवी के मध्य आर्यों ने अपना क्षेत्र-विस्तार किया और ये बोलिया धीरे-धीरे उत्तर-भारत मे फैली" के स्थान पर कृपया पढे—"ये बोलिया धीरे-धीरे उत्तर भारत मे फैली ।"